प्रिय छात्राध्यापक,

डिप्लोमा इन एज्युकेशन (डी.एड.) की पत्राचार पाठ्यक्रम परीक्षा में आपका स्वागत है। इस द्विवर्षीय परीक्षा में प्रथम वर्ष में 5 विषय एवं द्वितीय वर्ष में 5 विषय कुल 10 विषयों का आप अध्ययन करेंगे। प्रत्येक विषय के पाठ्यक्रम को आपकी अध्ययन की सुविधा के लिए 10–10 इकाईयों में विभाजित किया गया है। प्रत्येक विषय की प्रथम 05 इकाईयां (1 से 5) आपको एक पुस्तक के रूप में भेजी जायेगी। उसके पश्चात् द्वितीय (6 से 10) इकाईयां एवं अध्यापन अभ्यास हेतु प्रदर्श पाठ एवं निर्देश पुस्तिका भी भेजी जा रही है। अध्ययन की दृष्टि से प्रत्येक इकाई के विषयांश को उप इकाईयों में बांटा गया है, जिसमें प्रत्येक उप इकाई के उपरांत पाठगत प्रश्न दिये जा रहे हैं। इकाई के अन्त में आत्म परीक्षण के प्रश्न आपके अभ्यासार्थ दिए जा रहे हैं जिन्हें आपको अपने अध्ययन के आधार पर स्वयं हल करना है।

आपके सुचारू रूप से अध्ययन एवं जानकारी के लिए प्रत्येक विषय का पाठ्यक्रम एवं अंक विभाजन प्रथम अध्याय में संलग्न कर भेजा जा रहा है। परीक्षा में आपकी सफलता के लिए शुभकामनाएँ।

विषय : बाल विकास (पोषक, स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा, योग एवं नैतिक शिक्षा) 75 अंक

इकाईवार अंक विभाजन

इकाई क्र.	**इकाई का नाम**	**अंक**	**कालखण्ड**
1.	बाल विकास	10	20
2.	विकास एवं उनको प्रभावित करने वाले कारक	10	20
3.	बालकों का मानसिक स्वास्थ्य एवं उनकी व्यवहार संबंधी समस्याएं	10	20
4.	पोषण एवं आहार	04	10
5.	भोज्य पदार्थ का संग्रहीकरण एवं संक्षरण	04	10
6.	व्यक्तिगत एवं शालेय स्वच्छता	05	10
7.	सामुदायिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य	08	15
8.	मानव शरीर के विभिन्न अंग/तंत्र एवं कार्यिकी	08	15
9.	शारीरिक शिक्षा	08	15
10.	योग शिक्षा	08	15
	सैद्धांतिक –	**75**	**150**
	सत्रगत कार्य –	**25**	**–**
	कुल योग –	**100**	

डी.एड. प्रथम वर्ष

''द्वितीय प्रश्न पत्र''

विषय शीर्षक : बाल विकास

(पोषण, स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा, योग एवं नैतिक विकास)

उद्देश्य : इस पाठ्यक्रम को पूरा कर लेने पर भावी शिक्षकों में निम्न क्षमता/दक्षताएं विकसित होगी।

1. बाल विकास की अवधारणा को विकसित करना।
2. विकास की विभिन्न आवश्यकताओं, रूचियों एवं विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त कर प्रभावी शिक्षा देने में सक्षम बनाना।
3. विकास की विभिन्न अवस्थाओं एवं उनको प्रभावित करने वाले कारकों का ज्ञान प्राप्त करना।
4. बालकों की व्यवहार संबंधी समस्याओं का निदान एवं उपचार कर सकने की क्षमता विकसित करना।
5. बाल विकास की नवीन अवधारणाओं से शिक्षक का अवगत कराना और इनका शिक्षण कार्य में प्रयोग कर सकने की योग्यता का विकास करना।
6. विकास के विभिन्न पहलुओं एवं उनको प्रभावित करने वाले कारकों का ज्ञान प्राप्त करना।
7. पोषण के महत्व को समझाना।
8. भोज्य पदार्थों के संग्रहीकरण एवं संरक्षण समझ विकसित करना।
9. मानव शरीर के विभिन्न अंगों/तंत्रों की जानकारी विकसित करना।
10. व्यक्तिगत, शालेय तथा पारिवारिक एवं सामाजिक स्वच्छता की समझ विकसित करना।
11. सामुदायिक स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता विकसित करना।
12. शारीरिक शिक्षा के महत्व को स्थापित करना।
13. खेल भावना की समझ विकसित करना।
14. योग शिक्षण की आवश्यकता पर प्रकाश डालना।
15. योग के प्रकार एवं योग क्रियाओं का अभ्यास।

डी.एड. प्रथम वर्ष

''द्वितीय प्रश्न – पत्र''

बाल विकास

विषयांश इकाईवार :

इकाई 1. बाल विकास और मनोविज्ञान

1.1 बाल विकास का अर्थ, परिभाषा, उपयोगिता व महत्व
विकास की अवस्थाएं, विशेषताएं, महत्व एवं शिक्षा

1.2 शैशवावस्था
1.2 बाल्यावस्था
1.2 किशोरावस्था

इकाई 2. विकास एवं उसको प्रभावित करने वाले कारक

2.1 शारीरिक एवं गामक विकास
2.2 मानसिक विकास
2.3 सामाजिक विकास
2.4 संवेगात्मक विकास
2.5 भाषायी विकास
2.6 मूल्य परक विकास

इकाई 3. बालकों का मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यवहार संबंधी समस्याएं

3.1 अर्थ, स्वरूप एवं बाधक तत्व
3.2 घर विद्यालय और समाज का सुधार में योगदान
3.3 व्यवहार संबंधी समस्याओं के प्रकार
3.4 व्यवहार संबंधी समस्याओं के कारण : सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक
3.5 व्यवहार संबंधी समस्याओं के सुधार के उपाय व उपचार

इकाई 4. पोषण एवं आहार

4.1 पोषण का अर्थ एवं महत्व
4.2 विभिन्न आयु वर्ग व कार्य के अनुरूप सन्तुलित आहार
4.3 विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता एवं कार्य
4.4 कुपोषण जनित बीमारियां एवं इनको दूर करने का उपाय
4.5 भोजन पकाने की विधियां एवं उनका पोषक तत्वों पर पड़ने वाला प्रभाव

इकाई 5. भोज्य पदार्थों का संग्रहीकरण एवं संरक्षण

5.1 स्थानीय उपलब्ध भोज्य पदार्थों एवं उनके पोषक तत्वों का ज्ञान
5.2 भोज्य पदार्थों के संग्रहीकरण एवं संरक्षण की आवश्यकता एवं उनकी विधियां
5.3 भोज्य पदार्थ संरक्षण संबंधी भ्रांतियां तथा उनका निराकरण
5.4 भोज्य पदार्थों में मिलावट एवं पहचान के तरीके

इकाई 6. व्यक्तिगत एवं शालेय स्वच्छता

6.1 अर्थ एवं क्षेत्र
6.2 स्वच्छता संबंधी अच्छी आदतें
6.3 पीने के पानी की व्यवस्था एवं स्वच्छता
6.4 शाला परिसर एवं कक्षाओं की स्वच्छता
6.5 शालेय एवं पारिवारिक स्वच्छता का शिक्षा पर प्रभाव
6.6 स्वास्थ्य एवं पर्यावरण का संबंध
6.7 बालकों के स्वास्थ्य का परीक्षण एवं उनका अभिलेख संधारण
6.8 शालेय मध्यान्ह भोजन में स्वच्छता एवं सावधानियॉ

इकाई 7. सामुदायिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य

7.1 अर्थ एवं क्षेत्र
7.2 धूम्रपान, मदिरापान, पान मसाला एवं अन्य पदार्थों के सेवन से हानियॉ
7.3 प्राथमिक उपचार
7.4 टीकाकरण
7.5 संक्रामक रोग, उनके फैलने के कारण एवं रोकथाम के उपाय

7.6 यौन संक्रमित रोग, कारण एवं बचाव के उपाय
7.7 शिक्षा का योगदान

इकाई 8. मानव शरीर के विभिन्न अंग/तंत्र एवं कार्यिकी

8.1 अध्यावर्णीय तंत्र
8.2 पेशीय तंत्र
8.3 कंकाल तंत्र
8.4 पाचन तंत्र
8.5 परिसंचरण तंत्र
8.6 श्वसन तंत्र
8.7 उत्सर्जन तंत्र
8.8 तंत्रिका तंत्र
8.9 अन्तः स्रावी तंत्र
8.10 जनन तंत्र

इकाई 9. शारीरिक शिक्षा

9.1 शारीरिक शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व
9.2 शारीरिक कार्यकलापों एवं खेलों का आयु, लिंग व रूचि के अनुसार चयन
9.3 शारीरिक कार्यकलापों के प्रकार एवं नैतिक आचरण
9.4 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शारीरिक क्रियाएं
9.5 म.प्र. में शारीरिक शिक्षा के प्रमुख केन्द्रों की जानकारी जैसे सांई (SAI) भोपाल, महारानी लक्ष्मी बाई खेल महाविद्यालय ग्वालियर, आवासीय खेल विद्यालय सीहोर आदि।

इकाई 10. योग शिक्षा

10.1 योग शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, आवश्यकता एवं महत्व
10.2 भारतीय संस्कृति में योग की परम्परा
10.3 योग और व्यायाम में अंतर
10.4 योग में सूक्ष्म व्यायाम
10.5 योग के बहिरंग – यम, नियम, शासन, प्राणायाम, प्रत्याहार
10.6 योग के अन्तरंग – ध्यान, धारणा, समाधि
10.7 सूर्य नमस्कार
10.8 योग के समय आवश्यक सावधानियां
(व्यावहारिक परीक्षा योजना के अन्तर्गत नियमित योग अभ्यास प्रदर्शन के आधार पर मूल्यांकन किया जायेगा)

सत्रगत कार्य (कोई 5, प्रत्येक के पॉच अंक)

1. विभिन्न भोज्य पदार्थ ओर उनसे प्राप्त होने वाले विटामिन, प्रोटीन एवं खनिज लवणों की सारिणी तैयार करना।
2. भोज्य पदार्थों के संरक्षण की किन्हीं 3 विधियों का वर्णन।
3. दूषित जल एवं दूषित भोजन से होने वाली बीमारियों एवं उनके रोकथाम के उपायों की सूची।
4. संक्रामक रोग, उनके फैलने के कारण एवं रोकथाम के उपाय को चार्ट रूप में तैयार करना।
5. शरीर के विभिन्न तंत्र संबंधी चार्ट बनाना।
6. 6 से 14 आयु वर्ग के लिए उपयुक्त किन्हीं चार खेलों के नियमों का उल्लेख करना।
7. किन्हीं चार योगासनों का चित्र सहित वर्णन।
8. अभ्यास शिक्षण शाला की किसी एक कक्षा के बालकों का स्वास्थ्य परीक्षण कर प्रतिवेदन देना।
9. स्थानीय उपलब्ध भोज्य पदार्थों एवं उनके पोषक तत्वों की सारिणी तैयार करना।
10. निकटस्थ शाला में मध्यान्ह भोजन योजना के तहत स्वास्थ्य एवं शालेय स्वच्छता का सर्वेक्षण कर प्रतिवेदन प्रस्तुत करना।
11. प्राथमिक उपचार के लिए 'फर्स्ट एड बॉक्स' तैयार कर निकटस्थ शाला में आवश्यकता आधारित उपयोग करना।
12. 'योग भगाए रोग' शीर्षक के अन्तर्गत किन्हीं दो रोगों को दूर करने पर आधारित उचित आसनों एवं प्राणायामों के चित्र बनाना।
13. विकास की विभिन्न अवस्थाओं पर आधारित स्क्रेप बुक तैयार करना।

संदर्भ ग्रन्थ –

1. बाल मनोविज्ञान – डॉ. प्रीति बाला वर्मा
2. बाल मनोविज्ञान – भाई योगेन्द्रजीत
3. बाल मनोविज्ञान – आभा रानी चौहान
4. विकासात्मक मनोविज्ञान – अरूण सिंग
5. Developmental Psychology - H.E. Hurlock
6. राज्य शिक्षा केन्द्र, भोपाल द्वारा कक्षागत प्रक्रियाओं पर विकसित सामग्री।

7.	राज्य शिक्षा केन्द्र की वेबसाइट www.ssa.mp.gov.in		
8.	एज्युकेशन पोर्टल www.mp.gov.in/education portal		
9.	स्वास्थ्य शिक्षा	–	जी.पी.शैरी
10.	पोषण व स्वास्थ्य शिक्षा	–	भट्टाचार्य
11.	योग साधन	–	श्री देवकी नंदन विभव
12.	आहार एवं पोषण विज्ञान	–	उषा मिश्रा/सरिता सिंघल
13.	जीव विज्ञान	–	ओ.पी.सक्सेना
14.	योगासन एवं प्राणायाम	–	बाबा रामदेव
15.	स्थूल एवं सूक्ष्म व्यायाम	–	धीरेन्द्र ब्रह्मचारी
16.	बच्चों के लिए योगासन	–	धीरेन्द्र ब्रह्मचारी

पत्राचार पाठ्यक्रम

माध्यमिक शिक्षा मण्डल म.प्र., भोपाल

(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)

डिप्लोमा इन एज्युकेशन (प्रथम वर्ष)

प्रश्न पत्र – द्वितीय

विषय : बाल विकास और मनोविज्ञान **ईकाई : 1**

विषयांश – **प्रस्तावना, उद्देश्य, बाल विकास का अर्थ, बाल विकास के अध्ययन की उपयोगिता एवं महत्व। शैशवास्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था का महत्व एवं विशेषताएं।**

प्रिय छात्र,

इस पाठ में हम बाल विकास और मनोविज्ञान विषयक अध्ययन करेंगे।

प्रस्तावना

बालक का विकास भ्रूणावस्था से ही प्रारम्भ होता है। विकास की प्रकिया जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रकिया है। बालक के जन्म से पूर्व तथा पश्चात् जो भी परिवर्तन दिखाई देते हैं, वे सब बालक विकास के ही अंग हैं। मानव विकास की सर्वप्रथम अवस्था शैशवावस्था है। इसकी अवधि जन्म से 5 वर्ष मानी जाती है इसे मानव जीवन का आधार भी कहा जाता है। 6 वर्ष से 12 वर्ष की अवस्था बाल अवस्था कही जाती है इसे व्यक्ति के जीवन की निर्माणकारी अवस्था भी कहते हैं। इस समय जो आदतें व ढंग विकसित हो जाते हैं उसे आगे चलकर बदलना मुश्किल हो जाता है। इसे जीवन का अनोखा काल भी कहा जाता है। किशोरावस्था 12–18 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में बालक में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक विकास में क्रॉतिकारी परिवर्तन होते हैं। इसे विकास की प्रकिया का सबसे कठिन काल कहा जाता है।

उद्देश्य :

इस इकाई का उद्देश्य बालक के विकास और उसके मनोविज्ञान के संदर्भ में गहन अध्ययन करना है इस इकाई में आप –

- बाल विकास के अर्थ को परिभाषाओं और विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के मतानुसार विस्तृत रूप से समझ सकेंगे।
- बाल विकास के अध्ययन और महत्व को समझ सकेंगे।
- विकास की विभिन्न अवस्थाओं के बारे में विस्तृत रूप से अध्ययन कर सकेंगे।
- विकास की विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं एवं उसके महत्व को समझ सकेंगे।

- विकास की विभिन्न अवस्थाओं में शिक्षा के स्वरूप को भलीभॉति समझ सकेंगे।

बाल विकास का अर्थ परिभाषा, उपयोगिता एवं महत्व

बाल विकास का अर्थ :

आज के युग में ज्ञान–विज्ञान के विकसित होने के कारण मानव विकास को लिपिबद्ध कर लिया जाता है। मानव विकास के इतिहास में ज्ञान–विज्ञान की अनेक नई शाखाओं का विकास हुआ है। व्यक्ति के गर्भ में आने से लेकर मृत्यु तक के विकास के अनेक नवीन पहलुओं को मनोविज्ञान प्रस्तुत करता है।

गर्भाधान से लेकर जन्म तक व्यक्ति में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं जिन्हें भ्रूणावस्था का शारीरिक विकास माना जाता है। जन्म के बाद यह कुछ विशिष्ट परिवर्तनों की ओर संकेत करता है, जैसे–गति, भाषा, संवेग और सामाजिकता के लक्षण उसमें प्रकट होने लगते हैं। विकास का यह क्रम वातावरण से प्रभावित होता है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह सफलता प्राप्त करने के लिए बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करे। इन अवस्थाओं के कारण बालक में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार वह अपनी कार्य–प्रणाली को विकसित कर सकता है।

विकास का अर्थ केवल बड़े होने या कद भार बढ़ने से नहीं है, विकास में परिपक्वता की ओर बढ़ने का निश्चित क्रम होता है। यह एक प्रगतिशील श्रृंखला होती है। प्रगति का अर्थ भी दिशा बोध युक्त होता है। यह दिशा बोध आगे भी होता है पीछे भी।

विकास का अर्थ परिवर्तन है परिवर्तन एक प्रक्रिया है, जो हर समय चलती रहती है। इसमें केवल शरीर के अंगों का विकास ही नहीं होता वरन् सामाजिक, सांवेगिक अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों को भी सम्मलित किया जाता है। यह परिवर्तन दो प्रकार के होते हैं। मात्रत्मक परिवर्तन और गुणात्मक परिवर्तन।

परिभाषा :

विभिन्न मनोविज्ञानिकों ने विकास की परिभाषा अपने मतानुसार भिन्न–भिन्न दी है।

मुनेरो के अनुसार ''परिवर्तन श्रृंखला की वह अवस्था, जिसमें बच्चा भ्रूण अवस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक गुजरता है, विकास कहलाता है''

गैलन के अनुसार ''विकास सामान्य प्रयत्न से अधिक महत्व की चीज है विकास का अवलोकन किया जा सकता है एवं किसी सीमा तक इसका मूल्यांकन एवं मापन भी किया जा सकता है। इसका मापन तथा मूल्यांकन तीन रूपों में किया जा सकता है– (अ) शरीर निर्माण (ब) शरीर शास्त्रीय (स) व्यवहारिक व्यवहार चिन्ह विकास के स्तर एवं शक्तियों के विस्तृत रचना करते हैं''।

हरलॉक के अनुसार ''विकास बड़े होने तक ही सीमित नहीं है वस्तुतः यह तो व्यवस्थित एवं समानुपात प्रगतिशील क्रम है तो परिवक्वता की प्राप्ति में सहायक होता है''।

जेम्स ड्रेवर के अनुसार ''विकास वह दशा है तो प्रगतिशील परिवर्तन के रूप में प्राणी में सतत् रूप से व्यक्त होती है। यह प्रगतिशील परिवर्तन किसी भी प्राणी में भ्रूण अवस्था से लेकर प्रौढ़ अवस्था तक होता है। यह विकास तंत्र को सामान्य रूप से नियंत्रित करता है यह प्रगति का मापदण्ड़ है और इसका आरम्भ शून्य से होता है''।

विकास के अध्ययन की उपयोगिता :

(1) बाल पोषण का ज्ञान :

बाल विकास के अध्ययन ने समाज के समक्ष दो पहलू प्रस्तुत किये हैं पहला व्यवहारिक दूसरा सैद्धांतिक। समाज में प्रत्येक शिक्षक व अभिभावक के लिए दोनों पक्षों का ज्ञान होना अति आवश्यक है। बाल विकास का क्रमिक ज्ञान भावी,

माता–पिता तथा उसके संरक्षकों को होगा तो वह उसकी उचित देखभाल कर सकेंगे। मातृत्व, पितृत्व, दायित्व जैसे आधारभूत प्रश्नों का उत्तर बाल विकास के गंभीर अध्ययन से ही प्राप्त होता है।

(2) बालक का सामान्य व्यवहार :

बाल विकास का प्रमुख लक्ष्य है, कि बालक का विकास इस तरह हो कि उसमें सामान्य व्यवहार ही दिखाई दें। बालक का मानसिक तथा शारीरिक विकास सामान्य हो। बाल विकास का यह अध्ययन अभिभावकों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि उनके बालकों का व्यवहार एवं विकास सामान्य होगा तभी वे समाज के लिए उपयोगी हो सकते हैं।

(3) बालकों का विश्वास :

प्रायः देखा जाता है कि बालक माता–पिता से झूठ बोलते हैं ऐसी स्थिति में बालक अपने माता–पिता का विश्वास खो बैठता है। बाल विकास का अध्ययन माता–पिता को सामाजिक निर्देशन देता है, और उन परिस्थितियों तथा उपायों की ओर ध्यान दिलाता है, जिसके फलस्वरूप माता–पिता तथा बालक के बीच सद्भाव विकसित होता है।

(4) विकास की अवस्थाओं का ज्ञान :

बाल विकास के अध्ययन से माता–पिता को यह ज्ञात होता है कि विभिन्न अवस्थाओं में बालकों में कौन–कौन से शारीरिक, संवेगात्मक, सामाजिक, नैतिक तथा भाषा सम्बंधित परिवर्तन होते हैं और किस प्रकार बालक शैशव से प्रौढ़ अवस्था तक विकसित होता है।

(5) सामाजीकरण का ज्ञान :

बालक का सामाजीकरण उसके जीवन की महत्वपूर्ण घटना है अन्य व्यक्तियों के साथ उसका व्यवहार तथा समायोजन जैसे गतिविधियों को समझने के लिए बाल विकास का अध्ययन आवश्यक है। तभी वह समाज के लिए उपयोगी बनता है।

(6) बालक का व्यक्तित्व :

बाल विकास के अध्ययन से बालक के व्यक्तित्व का विकास सरलता से किया जा सकता है। बालक में अनेक क्षमताएं एवं शक्तियां पाई जाती हैं तभी उचित दिशा में विकसित होती है। जब बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान अभिभावक को होता है।

(7) खेल और बालक :

अभिभावक को बाल विकास का अध्ययन यह बताता है कि खेलों को बालक के विकास की प्रक्रिया में किस प्रकार रखा जाए कि उसका संतुलित विकास हो।

(8) स्वास्थ्य :

बालक का शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य उसके विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण है जिन बालकों का शारीरिक स्वास्थ्य खराब होता है वह मानसिक रूप से भी अस्वस्थ्य पाए जाते हैं इसकी जानकारी भी बाल विकास के अध्ययन से ही मिलती है।

(9) शैक्षिक प्रक्रिया :

माता–पिता भी बालक के शैक्षिक विकास के लिए उतने ही जिम्मेदार हैं जितना कि शिक्षक। बालक की शिक्षा की प्रक्रिया में रूचि, अभिरूचि, योग्यता, क्षमता आदि का विशेष महत्व है। इसीलिए पाठ्यक्रम बालक की आयु, बुद्धि तथा परिवेश के अनुसार बनने लगे हैं।

(10) वैयक्तिक भेदों पर बल :

एक माता–पिता के दो बालकों में समानता नहीं पाई जाती है अतः बालकों को व्यक्तिगत शिक्षण की आवश्यकता होती है। बाल विकास के अध्ययन से विभिन्न प्रकार के शिक्षण पद्धतियों को आवश्यकतानुसार अपनाया जा सकता है।

बाल विकास अध्ययन का महत्व :

व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया नैसर्गिक, स्वाभाविक और प्राकृतिक है। गर्भावस्था में बालक का विकास क्रम प्रारंभ हो जाता है। जन्म से लेकर किशोरावस्था तक विकास की गति अत्यधिक तीव्र होती है, यद्यपि किशोरावस्था के पश्चात् विकास की गति में उतनी तीव्रता नहीं रहती। व्यक्ति के विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसकी विकास–प्रक्रिया पर समुचित ध्यान दिया जाये। विकास की विभिन्न अवस्थाओं में उसे इस प्रकार का शान्त, स्वस्थ और सुरक्षित वातावरण प्रदान किया जाये, जिसमें बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक आदि विकास ठीक प्रकार से हो सके।

विकास के विभिन्न सिद्धांतों और अवस्थाओं का ज्ञान माता–पिता और शिक्षक के लिए बड़ा उपयोगी है। उनके बालक को उचित वातावरण प्राप्त हो, उसे सन्तुलित भोजन मिले, अच्छी संगति मिले, उसे खेलने की स्वतंत्रता हो, उसे उचित मात्रा में स्नेह प्राप्त हो, उसे सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार मिले, उसकी जिज्ञासा की सन्तुष्टि हो, उसे आत्म–प्रदर्शन के अवसर मिलें, उसके संवेगों का दमन न हो और उसमें पराजय की भावना, अन्र्द्वन्द और हीनता की भावना का विकास न हो। अतः माता–पिता के लिए बालक की विकास–प्रक्रिया का ज्ञान अत्यंत आवश्यकता है, जिससे वह यह ध्यान रख सके कि उनका बालक विकास की किसी अवस्था में पिछड़ तो नहीं रहा है।

शिक्षा का मुख्य कार्य बालक के विकास में सहायता देना है। अतः शिक्षक को बालक के विकास की अवस्थाओं का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। शिक्षक बालक में होने वाले परिवर्तनों के अनुसार अपने पाठ्यक्रम की व्यवस्था कर सकता है, सहगामी क्रियाओं का आयोजन कर सकता है और अपनी शिक्षण पद्धति को विकसित कर सकता है। बारह वर्ष की आयु वाले बालक का पाठ्यक्रम पांच वर्ष की आयु वाले बालक के पाठ्यक्रम से भिन्न होगा। इसलिए विकास के सिद्धांतों से परिचित शिक्षक ही उनके अनुकूल पाठ्यक्रम का अध्ययन करा सकता है। अतः स्पष्ट है कि विकास के विभिन्न सिद्धांतों और अवस्थाओं के ज्ञान से ही शिक्षक का दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक और गत्यात्मक हो सकता है।

पाठगत प्रश्न :

प्र.1 विकास की प्रक्रिया से क्या तात्पर्य है?

प्र.2 मुनरो ने विकास की क्या परिभाषा दी है?

प्र.3 बाल विकास की मुख्य अवस्थाओं पर प्रकाश डालिए?

विकास की अवस्थाएं, विशेषताएं, महत्व एवं शिक्षा :

(अ) शैशवावस्था :– बालक के जन्म के पश्चात् से पांच वर्ष की अवस्था शैशवावस्था कहलाती है। यह अवस्था बालक का निर्माण काल है। इसी में बालक के भावी जीवन का निर्माण किया जा सकता है। इस अवस्था में बालक का जितना अधिक निरीक्षण और निर्देशन किया जाता है उतना ही अधिक उत्तम उसका विकास और जीवन होता है। जन्म के उपरांत नवजात शिशु के भार, अंगों और गतिविधियों में पांच वर्ष की अवस्था तक परिवर्तन दिखाई देते है। विकास के साथ–साथ इनमें स्थायित्व आने लगता है।

शैशवावस्था की मुख्य विशेषताएँ :

शैशवावस्था की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

(1) **शारीरिक विकास में तीव्रता** – शैशवावस्था के प्रथम तीन वर्षों में शिशु का शारीरिक विकास अति तीव्र गति से होता है। तीन वर्ष के बाद विकास की गति धीमी हो जाती है। उसकी इन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, आन्तरिक अंगों, मांसपेशियों आदि का क्रमिक विकास होता है।

(2) **मानसिक क्रियाओं की तीव्रता** – शिशु की मानसिक क्रियाओं जैसे–ध्यान, स्मृति, कल्पना, संवेदना और प्रत्यक्षीकरण आदि के विकास में पर्याप्त तीव्रता होती है। तीन वर्ष की आयु तक शिशु की लगभग सब मानसिक शक्तियां कार्य करने लगती है।

(3) **सीखने की प्रक्रिया में तीव्रता** – शिशु के सीखने की प्रक्रिया में बहुत तीव्रता होती है और वह अनेक आवश्यक बातों को सीख लेता है।

(4) **कल्पना की सजीवता –** चार वर्ष के बालक के सम्बंध में एक अति महत्वपूर्ण बात है उसकी कल्पना की सजीवता। वह सत्य और असत्य में अन्तर नहीं कर पाता है। फलस्वरूप, वह असत्यभाषी जान पड़ता है। वह अपने शोध, प्रबंधन, कल्पनाएं करने लगता है।

(5) **दूसरों पर निर्भरता –** जन्म के बाद शिशु कुछ समय तक बहुत असहाय स्थिति में रहता है। उसे भोजन और अन्य शारीरिक आवश्यकताओं के अलावा प्रेम और सहानुभूति पाने के लिए भी दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है।

(6) **आत्म प्रेम की भावना –** शिशु अपने माता–पिता, भाई–बहन आदि का प्रेम प्राप्त करना चाहता है। पर साथ ही वह यह भी चाहता है कि प्रेम उसके अलावा और किसी को न मिले यदि और किसी के प्रति प्रेम व्यक्त किया जाता है तो उसे उससे ईर्ष्या हो जाती है।

(7) **नैतिकता का विकास –** शिशु में अच्छी और बुरी, उचित और अनुचित बातों का ज्ञान नहीं होता है। वह उन्हीं कार्यों को करना चाहता है जिनमें उसको आनन्द आता है।

(8) **मूल प्रवृत्तियों पर आधारित व्यवहार** – शिशु के अधिकांश व्यवहार का आधार उसकी मूल प्रवृत्तियां होती हैं। यदि उसे भूख लगती है, तो उसे जो भी वस्तु मिलती है, उसी को अपने मुंह में रख लेता है।

(9) **सामाजिक भावना का विकास** – इस अवस्था के अन्तिम वर्षों में शिशु में सामाजिक भावना का विकास हो जाता है। छोटे भाईयों, बहिनों या साथियों की रक्षा करने की प्रवृत्ति होती है। वह 2 से 6 वर्ष तक के बच्चों के साथ खेलना पसन्द करता है। वह अपनी वस्तुओं में दूसरों को साझीदार बनाता है।

(10) **दूसरे बालकों में रूचि या अरूचि** – शिशु में दूसरे बालकों के प्रति रूचि या अरूचि उत्पन्न हो जाती है। बालक एक वर्ष का होने से पूर्व ही अपने साथियों में रूचि व्यक्त करने लगता है। आरंभ में इस रूचि का स्वरूप अनिश्चित होता है, पर शीघ्र ही यह अधिक निश्चित रूप धारण कर लेती है और रूचि एवं अरूचि के रूप में प्रकट होने लगती है।

(11) **संवेगों का प्रदर्शन** – दो वर्ष की आयु तक बालक में लगभग सभी संवेगों का विकास हो जाता है। बाल–मनोवैज्ञानिकों ने शिशु के मुख्य रूप से चार संवेग माने हैं– भय, क्रोध, प्रेम और पीड़ा।

(12) **काम–प्रवृत्ति – बाल–**मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि शिशु में काम–प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है, पर वयस्कों के समान वह उसको व्यक्त नहीं कर पाता है। अपनी माता का स्तनपान करना और यौनागों पर हाथ रखना बालक की काम–प्रवृत्ति के सूचक हैं।

(13) **दोहराने की प्रवृत्ति –** शिशु में दोहराने की प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है। उसमें शब्दों और गतियों को दोहराने की प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है।

(14) **जिज्ञासा की प्रवृत्ति –** शिशु में जिज्ञासा की प्रवृत्ति का बाहुल्य होता है। वह अपने खिलौने का विभिन्न प्रकार से प्रयोग करता है। वह उसको फर्श पर फेंक सकता है। वह उसके भागों को अलग–अलग कर सकता है। इसके अतिरिक्त वह विभिन्न बातों और वस्तुओं के बारे में ''क्यों'' और ''कैसे'' के प्रश्न पूछता है।

(15) **अनुकरण द्वारा सीखने की प्रवृत्ति –** शिशु में अनुकरण द्वारा सीखने की प्रवृत्ति होती है। वह अपने माता–पिता, भाई–बहिन आदि के कार्यों और व्यवहार का अनुकरण करता है।

(16) **अकेले व साथ खेलने की प्रवृत्ति** – शिशु में पहले अकेले और फिर दूसरों के साथ खेलने की प्रवृत्ति होती है ''बहुत ही छोटा शिशु खेलता है। अन्त में वह अपनी आयु के बालकों के साथ खेलने में महान् आनन्द का अनुभव करता है''।

शैशवावस्था का महत्व :

इस अवस्था में शिशु पूर्ण रूप से माता–पिता पर निर्भर रहता है उसका व्यवहार मूल प्रवृत्तियों पर आधारित होता है, जीवन के प्रथम दो वर्षों में बालक अपने भविष्य के जीवन की आधारशिला रखता है। व्यक्ति को जो कुछ बनना होता है वह

आरंभ के चार–पांच वर्षों में ही बन जाता है। व्यक्ति का जितना मानसिक विकास होता है। उसका आधा तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है। शैशवावस्था में सीखने की सीमा और तीव्रता विकास की अन्य किसी अवस्था की तुलना में बहुत अधिक होती है यह अवस्था ही वह आधार है, जिस पर बालक के भावी जीवन का निर्माण किया जा सकता है। अतः इस अवस्था में शिशु को जितना उत्तम निर्देशन दिया जायेगा उसका उतना ही उत्तम विकास होगा। कई मनोवैज्ञानिकों ने विकास की अवस्थाओं के संदर्भ में अनेकों विस्तृत अध्ययन किये और निष्कर्ष निकाला कि सब अवस्थाओं में शैशवावस्था सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। शैशवावस्था के महत्व के सम्बंध में कुछ विद्वानों ने अपने विचार निम्नवत प्रस्तुत किये।

ऐडलर के अनुसार ''बालक के जन्म के कुछ माह बाद ही यह निश्चित किया जा सकता है कि जीवन में इसका क्या स्थान है''।

गुडएनफ ''व्यक्ति का जितना भी मानसिक विकास होता है उसका आधा तीन वर्ष की आयु तक हो जाता है''।

शैशवावस्था में शिक्षा का स्वस्प :

(1) शिशु अपने विकास के लिए शान्त, स्वस्थ और सुरक्षित वातावरण चाहता है। अतः घर और विद्यालय में उसे इस प्रकार का वातावरण प्रदान किया जाना चाहिए।

(2) शिशु अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर निर्भर रहता है। माता–पिता और शिक्षक को उसे डांटना या पीटना नहीं चाहिए। इसके विपरीत, उन्हें उसके प्रति सदैव प्रेम, शिष्टता और सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिए।

(3) बालक सबके विषय में अनेक प्रकार के प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासा को शान्त करना चाहता है। माता–पिता और शिक्षक को उसके प्रश्नों के उत्तर देकर, उसकी जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(4) शिशु कल्पना के जगत में विचरण करता है। अतः उसे ऐसे बालक को ऐसे विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए जो उसे वास्तविकता के निकट लाये।

(5) आत्म–निर्भरता से शिशु को स्वयं सीखने, काम करने और विकास करने की प्रेरणा मिलती है। अतः उसको स्वतंत्रता प्रदान करके, आत्म–निर्भर बनने का अवसर दिया जाना चाहिए।

(6) शिशु में अनेक निहित गुण होते हैं। अतः उसे इस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे उसमें इन गुणों का विकास हो।

(7) शैशवावस्था के अन्तिम भाग में शिशु दूसरे बालकों के साथ मिलना–जुलना और खेलना पसन्द करता है। उसे इन बातों का अवसर दिया जाना चाहिए, ताकि उसमें सामाजिक भावना का विकास हो।

(8) शिशु में आत्म–प्रदर्शन की भावना होती है। अतः उसे ऐसे कार्य करने के अवसर दिये जाने चाहिए, जिसके द्वारा वह अपनी इस भावना को व्यक्त कर सके।

(9) शिशु में मानसिक क्रियाओं की तीव्रता होती है अतः उसे सोचने–विचारने के अधिक से अधिक अवसर दिये जाने चाहिए।

(10) शिशु के माता–पिता और शिक्षक को इस सारगर्भित वाक्य को सदैव स्मरण रखना चाहिए। अतः उसे उसमें सत्य बोलने, बड़ों का आदर करने, समय पर काम करने और इसी प्रकार की अन्य अच्छी आदतों का निर्माण करना चाहिए।

(11) शिशु के व्यवहार का आधार उसकी मूल प्रवृत्तियां होती हैं। अतः उनका दमन न करके सम्भव विधियों से प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

(12) बालक कुछ मूल प्रवृत्तियों के साथ जन्म लेता है, जो उसे कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं। अतः उसे उनके अनुसार कार्य करके शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।

(13) शिशु को खेल द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। इसका कारण बताते हुए स्ट्रेंग का कहना है कि ''शिशु अपने और अपने संसार के बारे में अधिकांश बातें खेल द्वारा सीखता है''।

(14) शिशु की शिक्षा में कहानियों और सचित्र पुस्तकों का विशिष्ट स्थान होना चाहिए। ''पांच वर्ष का शिशु कहानी सुनते समय उससे संबंधित चित्रों को पुस्तक में देखना पसन्द करता है''।

(15) शिशु की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। ''बालक के हाथ, पैर और नेत्र उसके प्रारंभिक शिक्षक हैं। इन्हीं के द्वारा वह पांच वर्ष में ही पहचान सकता है, सोच सकता है और याद कर सकता है।

पाठगत् प्रश्न :

प्र.4 शैशवावस्था बालक का कौन सा काल कहलाती है?

(अ) अनोखा काल (ब) निर्माण काल (स) सन्धि काल

प्र.5 शैशवावस्था कब से कब तक मानी गयी है?

(अ) जन्म से पॉच वर्ष (ब) 13 से 18 वर्ष (स) 6 से 12 वर्ष

प्र.6 ''मनुष्य को जो कुछ बनाना होता है वह चार–पांच वर्षों में बन जाता है'' किसने कहा?

(अ) स्ट्रेग (ब) फ्रायड (स) न्यूमैन

(ब) **बाल्यावस्था** :

बाल्यावस्था, वास्तव में मानव जीवन का वह स्वर्णिम समय है जिसमें उसका सर्वांगीण विकास होता है। फ्रायड यद्यपि यह मानते हैं कि बालक का विकास पांच वर्ष की आयु तक हो जाता है, लेकिन बाल्यावस्था विकास की प्रक्रिया को गति प्राप्त करती है और एक परिपक्व व्यक्ति के निर्माण की ओर अग्रसर होती है।

शैशवावस्था के बाद बाल्यावास्था का आरम्भ होता है। यह अवस्था बालक के व्यक्तित्व के निर्माण की होती है। बालक में इस अवस्था में विभिन्न आदतों, व्यवहार, रूचि एवं इच्छाओं के प्रतिरूपों का निर्माण होता है। इस अवस्था में बालक में अनेक अनोखे परिवर्तन होते हैं। 6 वर्ष की आयु में बालक का स्वभाव बहुत उग्र होता है। 7 वर्ष की आयु में वह उदासीन होता है और अकेले रहना पसन्द करता है। 8 वर्ष की आयु में उसमें अन्य बालकों में सामाजिक सम्बंध स्थापित करने की भावना बहुत प्रबल होती है। 0 से 12 वर्ष तक की आयु में विद्यालय का उसके लिए कोई आकर्षण नहीं रहता है। वह कोई नियमित कार्य करके, कोई महान और रोमांचकारी कार्य करना चाहता है।

बाल्यावस्था की विशेषताऐ :

(1) **विकास में स्थिरता :–** 6 से 7 वर्ष की आयु के बाद बालक के शारीरिक और मानसिक विकास में स्थिरता आ जाती है। वह स्थिरता उसकी शारीरिक व मानसिक शक्तियों को दृढ़ता प्रदान करती हैं। फलस्वरूप उसका मस्तिष्क परिपक्व और वह स्वयं वयस्क–सा जान पड़ता है।

(2) **मानसिक योग्यताओं में वृद्धि :–** बाल्यावस्था में बालक की मानसिक योग्यताओं में निरन्तर वृद्धि होती है। उसकी संवेदना और प्रत्यक्षीकरण की शक्तियों में वृद्धि होती है। वह विभिन्न बातों के बारे में तर्क और विचार करने लगता है।

(3) **जिज्ञासा की प्रबलता :–** बालक की जिज्ञासा विशेष रूप से प्रबल होती है। वह जिन वस्तुओं के सम्पर्क में आता है, उनके बारे में प्रश्न पूछ कर हर तरह की जानकारी प्राप्त करना चाहता है।

(4) **वास्तविक ज्ञान का विकास :–** इस अवस्था में बालक, शैशवावस्था के काल्पनिक जगत का परित्याग करके वास्तविक जगत में प्रवेश करता है। वह उसकी प्रत्येक वस्तु से आकर्षित होकर उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहता है।

(5) **रचनात्मक कार्यों में रूचि :–** बालक को रचनात्मक कार्यों में विशेष आनन्द आता है। वह साधारणतः घर से बाहर किसी प्रकार का कार्य करना चाहता है, जैसे–बगीचे में काम करना या औजारों से लकड़ी की वस्तुऍ बनाना।

(6) **सहयोग की भावना :–** बालक विद्यालय के छात्रों और अपने समूह के सदस्यों के साथ पर्याप्त समय व्यतीत करता है। अतः उसमें अनेक सामाजिक गुणों का विकास होता है, जैसे–सहयोग, सद्भावना, सहनशीलता, आज्ञाकारिता आदि।

(7) **नैतिक गुणों का विकास** :– इस अवस्था के आरम्भ में ही बालक में नैतिक गुणों का विकास होने लगता है। न्यायपूर्ण व्यवहार, ईमानदारी और सामाजिक मूल्यों की भावना का विकास होने लगता है।

(8) **बर्हिमुखी व्यक्तित्व** :– शैशवावस्था में बालक का व्यक्तित्व अन्तर्मुखी होता है। बाल्यावस्था में उसका व्यक्तित्व बर्हिमुखी हो जाता है, क्योंकि बाह्य जगत में उसकी रूचि उत्पन्न हो जाती है।

(9) **संवेगों पर नियंत्रण** :– बालक अपने संवेगों पर अधिकार रखना एवं अच्छी और बुरी भावनाओं में अन्तर करना जान जाता है। वह उन भावनाओं का दमन करता है, जिनको उसके माता–पिता और बड़े लोग पसन्द नहीं करते हैं।

(10) **संग्रहीकरण की प्रवृत्ति** :– बाल्यावस्था में बालकों और बालिकाओं में संग्रह करने की प्रवृत्ति बहुत ज्यादा पाई जाती है। बालक विशेष रूप से कांच की गोलियों, टिकटों, मशीनों के भागों और पत्थरों के टुकड़ों का संचय करते हैं। बालिकाओं में चित्रों, खिलौनों, गुड़ियों और कपड़ों के टुकड़ों का संग्रह करने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

(11) बालकों में बिना किसी उद्देश्य के इधर–उधर घूमने की प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। विद्यालय से भागने और आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करने की आदतें सामान्य रूप से पाई जाती हैं।

(12) **काम प्रवृत्ति** :– बालक में काम प्रवृत्ति की न्यूनता होती है। वह अपना समय मिलने–जुलने, खेलने–कूदने और पढ़ने–लिखने में व्यतीत करता है।

(13) **सामूहिक प्रवृत्ति** :– बालक की सामूहिक प्रवृत्ति बहुत प्रबल होती है। वह अपना अधिक से अधिक समय दूसरे बालकों के साथ व्यतीत करने का प्रयास करता है। बालक की सामूहिक खेलों में अत्याधिक रूचि होती है। वह 6 या 7 वर्ष की आयु में छोटे समूहों में खेलता है।

(14) **रूचियों में परिवर्तन** :– बालक की रूचियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। वे स्थायी रूप धारण न करके वातावरण के साथ परिवर्तित होती रहती हैं।

बाल्यावस्था का महत्व :

बाल्यावस्था का काल 6 से 12 वर्ष माना जाता है। इस अवस्था में बालकों तथा बालिकाओं के कद, भार में, उतार–चढ़ाव होते रहते हैं। इस अवस्था में हड्डियों में मजबूती तथा दृढ़ता आती है, दॉतों में स्थायीत्व आने लगता है। बाल्यावस्था में मानसिक विकास भी तीव्र होती है। वह अपनी जिज्ञासा को शांत करने के लिए अनेकों प्रश्न करता है उसकी रूचि विस्तार पाने लगती है। सूक्ष्म चिंतन का आरम्भ हो जाता है। बाल्यावस्था में बालक विद्यालय में प्रवेश ले चुका होता है। परिवार के अलावा अन्य लोगों के साथ उसकी सामाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। इस अवस्था में विषमलिंगीय आकर्षण दिखाई देने लगता है। धीरे–धीरे बालकों का शब्दकोश भी विस्तृत हो सकता है। इस अवस्था में बालकों में आत्मनिर्भरता की भावना विकसित होने लगती है। उनकी आदतों, रूचियों, मनोवृत्ति तथा रहन–सहन आदि में पर्याप्त भिन्नता स्पष्ट होने लगती है।

बाल्यावस्था में शिक्षा का स्वरूप :

बाल्यावस्था शैक्षिक दृष्टि से बालक के निर्माण की अवस्था है। **ब्लेयर, जोन्स व सिम्पसन** ले लिखा है ''बाल्यावस्था वह समय है, जब व्यक्ति के आधारभूत दृष्टिकोणों, मूल्यों और आदर्शों का बहुत सीमा तक निर्माण होता है।''

उसका दायित्व बालक के शिक्षक, माता–पिता और समाज पर है। अतः उसकी शिक्षा का स्वरूप निश्चित करते समय, उन्हें निम्नांकित बातों को ध्यान में रखना चाहिए –

(1) **स्ट्रैंग** ने अपने अध्ययन के आधार पर कहा कि ''इस अवस्था में बालकों की भाषा में बहुत रूचि होती है।'' अतः इस बात पर बल दिया जाना आवश्यक है कि बालक, भाषा का अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करें।

(2) बालक के लिए कुछ ऐसे विषयों का अध्ययन आवश्यक है, जो उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके और उसके लिए लाभप्रद भी हो। जैसे–अंकगणित, विज्ञान, सामाजिक अध्ययन, चित्रकला, सुलेख, पत्र लेखन और निबन्ध रचना आदि।

(3) बालकों की रूचियों में विभिन्नता और परिवर्तनशीलता होती है। अतः उसकी पुस्तकों की विषय–सामग्री में रोचकता और विभिन्नता होनी चाहिए।

(4) इस अवस्था में बालक की रूचियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। अतः पाठ्य–विषय और शिक्षण विधि में उसकी रूचियों के अनुसार परिवर्तन किया जाना चाहिए।

(5) बालक में जिज्ञासा की प्रवृत्ति होती है। अतः उसे दी जाने वाली शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए, जिससे उसकी इस प्रवृत्ति की तुष्टि हो।

(6) बालक में समूह में रहने की प्रबल प्रवृत्ति होती है। वह अन्य बालकों से मिलना–जुलना और उनके साथ कार्य करना या खेलना चाहता है। उसे इन बातों का अवसर देने के लिए विद्यालय में सामूहिक कार्यों और सामूहिक खेलों का उचित आयोजन किया जाना चाहिए।

(7) बालक की रचनात्मक कार्यों में विशेष रूचि होती है। अतः विद्यालय में विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्यों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(8) बालक की विभिन्न मानसिक रूचियों को सन्तुष्ट करके उसकी सुप्त शक्तियों का अधिकतम विकास किया जा सकता है। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए विद्यालय में अधिक से अधिक पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं का संचालन किया जाना चाहिए।

(9) लगभग 9 वर्ष की आयु में बालक में निरूद्देश्य इधर–उधर घूमने की प्रवृत्ति होती है। उसकी इस प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए पर्यटन और स्काउटिंग को उसकी शिक्षा का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।

पाठगत प्रश्न :

प्र.7 बाल विकास की किस अवस्था में अनोखे परिवर्तन होते हैं?

(अ) किशोरावस्था (ब) बाल्यावस्था (स) शैशवावस्था

प्र.8 बाल्यावस्था को कौन सा काल कहा गया है?

प्र.9 बालक के सर्वांगीण विकास का दायित्व किन पर होता है?

(स) किशारोवस्था :

मानव जीवन के विकास की प्रक्रिया में किशोरावस्था का महत्वपूर्ण स्थान है। बाल्यावस्था समाप्त होती है और किशोरावस्था प्रारम्भ होती है। यह अवस्था युवावस्था अथवा परिपक्वावस्था तक रहती है। यह सतत् प्रक्रिया है। इसे बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य का सन्धि काल कहते हैं।

बाल्यावस्था के समापन अर्थात् 13 वर्ष की आयु से किशोरावस्था आरंभ होती है। इस अवस्था को तूफान एवं संवेगों की अवस्था कहा गया है। 11–12 वर्ष की आयु से बालक की नसों में ज्वार उठना आरम्भ होता है, इसे किशोरावस्था के नाम से पुकारा जाता है।

किशोरावस्था की मुख्य विशेषताएं :

(1) विकासात्मक विशेषता –: किशोरावस्था को शारीरिक विकास का सर्वश्रेष्ठ काल माना जाता है। इस काल में किशोर के शरीर में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं, जैसे–भार और लम्बाई में तीव्र वृद्धि, मांसपेशियों और शारीरिक ढ़ॉचे में दृढ़ता, किशोर में दाढ़ी और मूंछ की रोमावलियों एवं किशोरियों में प्रथम मासिक स्राव के दर्शन आदि।

(2) **कल्पना की बाहुल्यता** –: किशोर के मस्तिष्क का लगभग सभी दिशाओं में विकास होता है। उसमें विशेष रूप से अग्रलिखित मानसिक गुण पाये जाते हैं– कल्पना और दिवास्वप्नों की बहुलता, बुद्धि का अधिकतम विकास, सोचने–समझने और तर्क करने की शक्ति में वृद्धि, विरोधी मानसिक दशायें। किसी समूह का सदस्य होते हुए भी किशोर केवल एक या दो बालकों से घनिष्ठ सम्बंध रखता है, जो उसके परम मित्र होते हैं।

(3) **संवेगों में अस्थिरता** –: किशोर में आवेगों और संवेगों की बहुत प्रबलता होती है। यही कारण है कि वह विभिन्न अवसरों पर विभिन्न प्रकार का व्यवहार करता है।

किशोरावस्था को शैशवावस्था का पुनरावर्तन कहा है, क्योंकि किशोर बहुत कुछ शिशु के समान होता है। उसके व्यवहार में इतनी उद्विग्नता आ जाती है कि वह शिशु के समान अन्य व्यक्तियों और वातावरणसे समायोजन नहीं कर पाता है।

(4) **स्वतंत्रता की भावना** –: किशोर में शारीरिक और मानसिक स्वतंत्रता की प्रबल भावना होती है। वह बड़ों के आदेशों अन्धविश्वासों के बन्धनों में न बंधकर स्वतंत्र जीवन व्यतीत करना चाहता है। अतः यदि उस पर किसी प्रकार का प्रतिबंध लगाया जाता है, तो उसमें विद्रोह की भावना विकसित होती है।

(5) **काम भावना में परिपक्वता** –: कामेन्द्रियों की परिपक्वता और कामशक्ति का विकास किशोरावस्था की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक है। इस अवस्था के पूर्व काल में बालकों और बालिकाओं में विषम लिंगों के प्रति आकर्षण होता है।

(6) **समूह का महत्व** :– किशोर जिस समूह का सदस्य होता है उसको वह अपने परिवार और विद्यालय से अधिक महत्वपूर्ण समझता है।

(7) **रूचियों में परिवर्तन एवं स्थायीत्व** –: 15 वर्ष की आयु तक किशोरों की रूचियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है पर उसके बाद उनकी रूचियों में स्थिरता आ जाती है। बालकों को खेलकूद और व्यायाम में विशेष रूचि होती है। उनके विपरीत बालिकाओं में बढ़ाई–बुनाई, नृत्य और संगीत के प्रति विशेष आकर्षण होता है।

(8) **समाजसेवा की भावना** –: किशोर में समाज सेवा की अति तीव्र भावना होती है। किशोरावस्था के आरंभ में बालकों को धर्म और ईश्वर में आस्था नहीं होती है पर धीरे–धीरे उनमें धर्म में विश्वास उत्पन्न हो जाता है और वे ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने लगते हैं।

(9) **जीवन दर्शन का निर्माण** –: किशोरावस्था से पूर्व बालक अच्छी और बुरी, सत्य और असत्य, नैतिक और अनैतिक बातों के बारे में नाना प्रकार के प्रश्न पूंछता है। किशोर होने पर वह स्वयं इन बातों पर विचार करने लगता है और फलस्वरूप अपने जीवन दर्शन का निर्माण करता है। किशोरावस्था में बालक में अपने जीवन–दर्शन नये अनुभवों की इच्छा, निराशा, असफलता, प्रेम के अभाव आदि के कारण अपराध प्रवृत्ति का विकास होता है।

(10) **व्यवसाय के प्रति चिन्तित** –: किशोर में महत्वपूर्ण व्यक्ति बनने और प्रौढ़ों के समान निश्चित स्थिति प्राप्त करने की अत्यधिक अभिलाषा होती है। किशोरावस्था में बालक अपने भावी व्यवसाय को चुनने के लिए चिन्तित रहता है।

किशोरावस्था का महत्व :

किशोरावस्था जीवन का वह समय है, जहां से एक अपरिपक्व व्यक्ति का शारीरिक व मानसिक विकास एक चरम सीमा की ओर अग्रसर होता है। शारीरिक रूप से एक बालक किशोर बनता है जब उसमें वय सन्धि अवस्था प्रारंभ होती है और उसमें सन्तान उत्पन्न करने की क्षमता प्रारंभ हो जाती है। यह अवस्था 12–13 से 18 वर्ष की आयु तक मानी जाती है। इस अवस्था के आरंभ होने की आयु लिंग, प्रजाति, जलवायु, संस्कृति एवं स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। भारत में यह अवस्था 12 वर्ष से ही आरम्भ मानी जाती है। किशोरावस्था का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि इस समय किशोर के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक

विकास में क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं। **स्टेनले** हॉल ने कहा है कि ''किशोरावस्था बड़े संघर्ष, तनाव, तूफान एवं विरोध की अवस्था है।''

किशोरावस्था में शिक्षा का स्वरूप :

किशोरावस्था आरम्भ होने के समय से ही शिक्षा को एक निश्चित स्वरूप प्रदान किया जाना अनिवार्य है। इस शिक्षा का स्वरूप क्या होना चाहिए, इस पर हम प्रकाश डाल रहे हैं, यथा–

(1) किशोरावस्था में शरीर में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन होते हैं, जिनको उचित शिक्षा प्रदान करके शरीर को सबल और सुड़ौल बनाने का उत्तरदायित्व विद्यालय पर है। अतः उसे निम्नलिखित का आयोजन करना चाहिए– (1) शारीरिक और स्वास्थ्य– शिक्षा, (2) विभिन्न प्रकार के शारीरिक व्यायाम, (3) सभी प्रकार के खेलकूद आदि।

(2) किशोर की मानसिक शक्तियों का सर्वोत्तम और अधिकतम विकास करने के लिए शिक्षा का स्वरूप उसकी रूचियों, रूझानों, दृष्टिकोणों और योग्यताओं के अनुरूप होना चाहिए। (1) कला, विज्ञान, साहित्य, भूगोल, इतिहास आदि सामान्य विद्यालयीन विषय (2) प्राकृतिक, ऐतिहासिक आदि स्थानों का भ्रमण (3) उसकी रूचियों, कल्पनाओं और दिवास्वप्नों को साकार बनाने के लिए प्रहसन, भाषण, वाद–विवाद, कविता लेखन, साहित्यिक गोष्ठी, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ आदि।

(3) किशोर अनेक प्रकार के संवेगों से संघर्ष करता है। अतः शिक्षा में इस प्रकार के विषयों और पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए, जो निकृष्ट संवेगों का दमन या मार्गान्तरीकरण और उत्तम संवेगों का विकास कर सकें। इस उद्देश्य से कला, विज्ञान, साहित्य, संगीत, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि की सुन्दर व्यवस्था की जानी चाहिए।

(4) विद्यालय में ऐसे समूहों का संगठन किया जाना चाहिए, जिनकी सदस्यता ग्रहण करके किशोर उत्तम सामाजिक व्यवहार और सम्बंधों के पाठ सीख सकें। सामूहिक क्रियाएं, सामूहिक खेल और स्काउटिंग अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं।

(5) विद्यालयों में विभिन्न पाठ्यक्रमों की अयवस्था की जानी चाहिए जिससे किशोरों की व्यक्तिगत मांगों को पूर्ण किया जा सके।

(6) किशोर अपने भावी जीवन में किसी न किसी व्यवसाय में प्रवेश करने की योजना बनाता है, पर वह यह नहीं जानता है कि कौन सा व्यवसाय उसके लिए सबसे अधिक उपयुक्त होगा। विद्यालय में कुछ व्यवसायों की प्रारंभिक शिक्षा दी जानी चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखकर हमारे देश के बहुउद्देशीय विद्यालयों में व्यावसायिक विषयों की शिक्षा की व्यवस्था की गई है।

(7) किशोर अपने जीवन–दर्शन का निर्माण करना चाहता है, पर उचित पथ–प्रदर्शन के अभाव में वह ऐसा करने में असमर्थ रहता है। इस कार्य का उत्तरदायित्व विद्यालय पर है।

(8) किशोर के मस्तिष्क में विरोधी विचारों में निरन्तर द्वन्द्व होता रहता है। अतः उसे उदार, धार्मिक और नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए ताकि वह उचित और अनुचित में अन्तर करके अपने व्यवहार को समाज के नैतिक मूल्यों के अनुकूल बना सके।

(9) किशोर बालकों और बालिकाओं की अधिकांश समस्याओं का सम्बंध उनकी काम–प्रवृत्ति से होता है। यौन शिक्षा की व्यवस्था होना अति आवश्यक है।

(10) बालकों और बालिकाओं के पाठ्यक्रमों में विभिन्नता होनी अति आवश्यक है। ''लिंग भेद के कारण और इस विचार से कि बालकों और बालिकाओं को भावी जीवन में समाज में विभिन्न कार्य करने हैं, दोनों के पाठ्यक्रमों में विभिन्नता होनी चाहिए।''

(11) किशोर में स्वयं परीक्षण, निरीक्षण, विचार और तर्क करने की प्रवृत्ति होनी चाहिए। अतः उसे शिक्षा देने के लिए परम्परागत विधियों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

(12) किशोर को न तो बालक समझना चाहिए और न उसके प्रति बालक का सा व्यवहार किया जाना चाहिए। इसके विपरीत, उसके प्रति वयस्क का सा व्यवहार किया जाना चाहिए।

(13) किशोर में उचित महत्व और उचित स्थिति प्राप्त करने की प्रबल इच्छा होती है। उसकी इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उसे उत्तरदायित्व के कार्य दिये जाने चाहिए। किशोर में अपराध करने की प्रवृत्ति का मुख्य कारण है – निराशा। विद्यालय, उसको अपने उपयोगिता का अनुभव कराके उसकी निराशा को कम कर सकता है और इस प्रकार उसकी अपराध प्रवृत्ति को कम कर सकता है।

(14) बालक स्वयं किसी बात का निर्णय नहीं कर पाता है और चाहता है कि कोई उसे इस कार्य में निर्देशन और परामर्श दे। यह उत्तरदायित्व उसके अध्यापकों और अभिभावकों को लेना चाहिए।

पाठगत प्रश्न :

प्र.10 बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के मध्य के काल को क्या कहते हैं?

प्र.11 किशोरावस्था काल कब से कब तक माना जाता है?

प्र.12 ''किशोरावस्था बड़े संघर्ष, तनाव, तूफान एवं विरोध की अवस्था है'' कथन किस विद्वान का है?

इकाई सारांश :

- विकास का जीवन में अत्यंत महत्व है, विकास की प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।
- बालक के जन्म से पूर्व एवं पश्चात् जो भी परिवर्तन दिखाई देते हैं वे सभी विकास की प्रक्रिया का ही अंग है।
- विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत बालक के विकास की मुख्य तीन अवस्थाएं मानी जाती हैं। शैशवावस्था, बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था।
- बालक के विकास की प्रक्रिया का ज्ञान शिक्षक माता–पिता एवं समाज के लिए अत्यंत आवश्यक है। ताकि वे बालक समुचित विकास में अपना योगदान दे सकें।
- शैशवावस्था–बालक के विकास का निर्माण काल भी कहा जाता है। यह जन्म से पांच वर्ष तक मानी जाती है। इसी अवस्था में बालक के भावी जीवन का निर्माण किया जा सकता है।
- शैशवावस्था के पश्चात् बालक की बाल्यावस्था प्रारंभ हो जाती है। इसे विकास की अवस्था का अनोखा काल भी कहते हैं। इसको 6 से 12 वर्ष तक माना गया है।
- किशोरावस्था 12 वर्ष से 18 वर्ष मानी जाती है। इसे विकास की अवस्थाएं में सबसे कठिन काल के नाम से जाना जाता है। इसमें बालक में शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन बहुत तेजी से होते हैं।
- किशोरावस्था को वय सन्धि काल से भी जाना जाता है। इसमें बालक में सन्तानोत्पत्ति की क्षमता का विकास होता है।
- बालक के जन्म के पश्चात् से विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न अवस्थाओं में शिक्षा का स्वरूप सुनिश्चित किया जाना अत्यंत आवश्यक है। बालक की भिन्नाओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा की व्यवस्था उपलब्ध कराना शिक्षक, अभिभावक एवं समाज का दायित्व होता है।

आत्म परीक्षण प्रश्न :

प्र.1 बाल विकास का क्या अर्थ है। कोई उपयुक्त परिभाषा द्वारा स्पष्ट कीजिए?

प्र.2 बाल विकास की उपयोगिता को स्पष्ट करें?

प्र.3 बाल विकास के अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डालें?

प्र.4 विकास की मुख्य कौन–कौन सी अवस्थाएं हैं?

प्र.5 शैशवस्था की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए?

प्र.6 बाल्यावस्था को ''अनोखा काल'' क्यों कहा जाता है इसके महत्व को स्पष्ट कीजिए?

प्र.7 किशोरावस्था की विशेषताएं कौन–कौन सी हैं?

प्र.8 किशोरावस्था में बालक के लिए शिक्षा का स्वरूप किस प्रकार का होना चाहिए?

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, म.प्र., भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन (प्रथम वर्ष)
प्रश्न पत्र – द्वितीय

विषय : विकास एवं उसको प्रभावित करने वाले कारक **इकाई – 2**

विषयांश : प्रस्तावना – उद्देश्य, विकास का अर्थ, परिभाषा, शारीरिक विकास, मानसिक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, भाषा विकास, मूल्य परक विकास।

प्रिय छात्र,

पूर्व इकाई में आपने बाल विकास का अर्थ, उपयोगिता एवं महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत इकाई में विकास को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

प्रस्तावना –

प्रस्तुत इकाई में आप बालक के विकास तथा उसको प्रभावित करने वाले कारक के विषय में पढ़ेगें।

मनुष्य सजीव प्राणी है। सजीव या जीवित प्राणी अपने जीवन प्रसार में सक्रिय बने रहने के लिए निरन्तर गतिशील रहता है। जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में नये–नये गुणों का अविर्भाव और पुरानी विशेषताओं का लोप होता रहता है। इस प्रक्रिया में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है जिसके अन्तर्गत शारीरिक एवं मानसिक गुणों तथा विशेषतओं की नियमित उत्पत्ति देखी जाती है, इसे ही विकास कहा जाता है। विकास के कई पक्ष होते हैं जैसे – शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, सामाजिक, नैतिक व सौन्दर्यात्मक इत्यादि।

बालक का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेदनात्मक, भाषीय एवं मूल्य परक विकास अलग–अलग रूप में प्रस्तुत किया है। बालक की शारीरिक विकास की प्रक्रिया में अनेक आन्तरिक या बाहय अंगों तथा मांस पेशियों का विकास होता है। मानसिक विकास की प्रक्रिया को जटिल प्रक्रिया माना जाता है। जिसको अलग से सुनिश्चित कर पाना सम्भव नही है। अनुसंधानों पर आधारित मानदण्डों के आधार पर मानसिक विकास का पता चलता है। संवेगों का बालक के जीवन महत्वपूर्ण स्थान है। जो व्यक्ति के अस्तित्व को सन्तुलित बनाते हैं। संवेगात्मक असन्तुलन से बालक में अनेक मानसिक विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं।

सामाजिक विकास वह प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति बदलती परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करता है और अन्य व्यक्तियों के साथ संबंध बनाता है। भाषा बुद्धि के उपयोग और तर्क का एक माध्यम है। मूल्यपरक विकास बालक के सामाजिक नैतिक मूल्यों की विवेचना करता है।

उद्देश्य –

इस इकाई का उद्देश्य बालक के विकास की प्रक्रिया के सन्दर्भ में विभिन्न विकासों एवं उसको प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन करना है इसमें आप –

- विकास का अर्थ, परिभाषा एवं उसके पक्ष बता सकेंगे।
- शारीरिक विकास का क्रम एवं विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन कर सकेंगें।
- बालक के मानसिक विकास की प्रक्रिया उसकी क्षमता योग्यता के साथ मानसिक विकास को प्रभावित करन वाले तत्वों को समझ सकेंगे।
- सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास के आधार पर बालकों के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन कर सकेंगे।
- भाषा एवं मूल्यपरक विकास जो बालक के व्यक्तित्व को महत्वपूर्ण स्थान देते हैं और समाज में उसकी स्थिति को बताते है को समझ सकेंगे।

विकास का अर्थ परिभाषा एवं उसके पक्ष –

विकास एक सार्वभौतिक प्रक्रिया है जो जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त तक अविराम गति से चलती रहती है। विकास केवल शारीरिक वृद्धि की ओर ही संकेत नहीं करता वरन् इसके अन्तर्गत वे सभी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और संवेदनात्मक परिवर्तन सम्मिलित रहते हैं जो गर्भावस्था से मृत्यु पर्यन्त तक निरन्तर चलते रहते हैं।

हरलॉक (Hurlock) ने विकास को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''विकास केवल अभिवृद्धि तक ही सीमित नहीं है वरन् वह 'व्यवस्थित' तथा 'समनुगत' परिवर्तन है जिसमें कि प्रौढावस्था के लक्ष्य की ओर परिवर्तनों का प्रगतिशील क्रम निहित रहता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में नवीन विशेषतायें व योग्यतायें प्रकट होती है।''

हरलॉक की परिभाषा के अनुसार विकास व्यवस्थित तथा समनुगत परिवर्तन है अर्थात एक पक्ष में न होकर सभी पक्षों में समान व व्यवस्थित परिवर्तन विकास की सही रूप में व्याख्या करते हैं। यह परिवर्तन मृत्यु पर्यन्त तक लगातार या निरन्तर चलते रहते हैं। विकास के अन्तर्गत कई पक्ष सम्मिलित है जो इस प्रकार हैं–

1. शारीरिक विकास
2. क्रियात्मक विकास
3. मानसिक विकास
4. संवेगात्मक विकास
5. सामाजिक विकास
6. नैतिक विकास
7. सृजनात्मक विकास
8. सौदर्य विकास

शारीरिक विकास एवं गामक विकास –

शारीरिक विकास से अभिप्राय बालक की शारीरिक संरचना एवं गठन में होने वाला परिवर्तन है। जिसके अन्तर्गत शारीरिक भार, लम्बाई, हड्डियों, दॉत इत्यादि में होने वाले विकास सम्मिलित है। गामक विकास शारीरिक विकास से जुड़ा प्रत्यय है जिसके अन्तर्गत मॉसपेशियों एवं हड्डियों की सक्षमता के साथ उन पर नियंत्रण सम्मिलित है। इसी के साथ विभिन्न क्रियाओं को करने के कौशलों का विकास भी इसी के अन्तर्गत माना है जैसे चलना, कूदना, सीढ़ी चढ़ना, भोजन करना, कपड़े पहनना इत्यादि। गामक कौशलों के विकास के लिए शारीरिक विकास सही रूप में होना आवश्यक है। शारीरिक विकास के प्रमुख पक्ष इस प्रकार हैं –

(1) शरीर–रचना :–

शारीरिक विकास की प्रक्रिया में अनेक अन्तरिक या बाहय अंगों तथा मॉसपेशियों का विकास होता है। परिपक्वता की विभिन्न अवस्थाओं में अभिवृद्धि की गति में अंतर होता है। शरीर की रचना स्नायु प्रणाली, श्वसन प्रणाली, पाचन संस्थान आदि की अभिवृद्धि तथा परिपक्वता एक दूसरे से सम्बन्धित है।

सामान्य शरीरिक विकास – शारीरिक विकास सामान्यतः एक सा होना चाहिए। मानसिक विकास से इसका निकट का सम्बन्ध है। यह मूख्यतः चार क्षेत्रों में पाया जाता है –
(अ) स्नायु प्रणाली (ब) मॉस पेशियों (स) इन्ड्रोसन ग्रन्थियॉ (द) शरीर का आकार।

भिन्न शारीरिक विकास – शारीरिक विकास प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न–भिन्न रूप से होता है। यह भिन्नता शरीर के कद रूप में पाई जाती है। इन्ड्रोसीन ग्रन्थियों के ठीक से कार्य न करने का सीधा प्रभाव शरीर की रचना, कद, आदि पर पड़ता है।

अभिवृद्धि चक्र – अभिवृद्धि का चक्र सदैव किसी एक नियम से नहीं चलता। किसी वर्ष विकास की गति तेज होती है और किसी वर्ष कम।

(2) शरीर का कद :–

शरीर के आकार से हमारा अभिप्राय ऊंचाई तथा भार से है। ये दोनों मिलकर विकास को निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं।

कद – जन्म के समय बालक की लंबाई लगभग 20 इंच होती है। लड़कों की लम्बाई लड़कियों की अपेक्षा, जन्म के समय आधा इंच अधिक होती है। परिपक्वता आने तक बालक की ऊंचाई की गति में

धीमापन आ जाता है। 12 वर्ष की अवस्था में सामान्य बालक 55 इंच लंबा हो जाता है। 10–14 वर्ष की आयु में लड़कियों का शारीरिक विकास तेजी से होता है। 21 वर्ष में लड़कों की ऊचाई अधिकतम सीमा तक बढ़ जाती है। बालकों की ऊंचाई के निर्धारित में वंशक्रम, प्रजाति, सामाजिक–आर्थिक स्थिति तथा रहन–सहन का प्रभाव पड़ता है।

(3) भार :–

जन्म के समय बालक का भार 5 से 8 पौंड तक होता है। पहले वर्ष के अन्त में बालक का भार जन्म के भार से पांच गुना अधिक होता है। परिपक्ता आने पर बालक का भार सामान्यतः 70 से 90 पौण्ड तक होता है। बालक का भार उसके शरीर की प्रकृति पर निर्भर करता है। तीन प्रकार के आकार होते हैं – (अ) मोटे (ब) लंबे (स) सामान्य, शरीर का भार तीनों की प्रकृति पर निर्भर करता है।

(4) शरीर के आकार में भिन्नता :–

बालक जन्म से ही शरीर के आकार की भिन्नता लिये होता है। जैसे–जैसे वह बड़ा होता है, उसमें यह भिन्नता अधिक प्रकट होने लगती है। जन्म का भार विकास के वर्षो में आनुपातिक रूप धारण करता है।

(5) शारीरिक अनुपात :–

जन्म के समय शरीर, प्रौढ़ शरीर के अनुपात में बहुत अंशों में भिन्न होता है। भुजाओं तथा टांगों में सर्वाधिक परिवर्तन तथा अनुपात पाया जाता है। शरीर का यह अनुपात इस प्रकार प्रकट कर सकते हैं।

(i) सिर – जन्म के बाद सिर आनुपातिक रूप से बढ़ता है। जन्म से परिपक्वता तक बालक के सिर की लम्बाई दुगुनी हो जाती है। सिर का क्षेत्र पांच वर्ष की अवस्था में 21 प्रतिशत से कम हो जाता है। 10 वर्ष में सिर, प्रौढ़ सिर का 95 प्रतिशत हो जाता है। सिर की लंबाई तथा चौड़ाई का अनुपात लड़के–लड़कियों के समान पाया जाता है।

(ii) चेहरा – आठ वर्ष की आयु तक चेहरे का ढॉचा जन्म की तुलना में बहुत बड़ा हो जाता है। परिपक्वता तथा स्थायी दांत निकलते रहते हैं और इसी प्रक्रिया में ठोढ़ी जबड़ा, मुंह, नाक तथा इसके आन्तरिक अंग तुलनात्मक रूप से विकसित होते हैं। मस्तिक का विकास द्रुतगति से होता है। आयु के विकास के साथ – साथ माथा चौड़ा होता जाता है, होंठ भर जाते हैं।

(iii) धड़ – हाथों तथा अंगों के विकास से ही उसके धड़ का अनुपात व्यक्त होता है। धड़ के विकसित होते समय छाती तथा गुर्दो की हड्डियों का भी समय होता है।

(iv) भुजायें तथा टांगे – नवजात के हाथ पैर, अंगुलियॉ छोटी होती है, 14–16 वर्षों तक इनका विकास पूर्ण हो जाता है। 14–16 वर्ष की आयु तक भुजाओं का विकास होता रहता है बालक की लम्बाई तथा पैरों के आकार में अनुपात रहता है।

(v) हड्डियॉ – बालक की हड्डियॉ, प्रौढ़ से छोटी एवं कोमल होती हैं। धीरे–धीरे उनके आकार में परिवर्तन होता है और अनेक नई हड्डियों का विकास होता है। जन्म के समय शिशु में 270 हड्डियॉ होती है। पूर्णता आने पर उसमें 350 हड्डियॉ हो जाती हैं। फिर कुछ हड्डियॉ समाप्त हो जाती हैं और पूर्ण परिपक्व अवस्था में इनकी संख्या 206 रह जाती है।

(vi) मॉसपेशियॉ तथा वसा – आरंभ से वसा तन्तुओं की वृद्धि मांसपेशियों के तन्तुओं से अधिक तीव्र होती है। शरीर का भार मांसपेशियों द्वारा विकसित होता है। बाल्यावस्था में मांसपेशियों में जल अधिक होता है। धीरे–धीरे जल की मात्रा कम होने लगती है और ठोस तन्तुओं का विकास होने लगता है, उसमें दृढता आने लगती है। वसा–युक्त पदार्थों का अधिक सेवन करने से चर्बी बढ़ने लगती है।

(vii) दांत – बच्चों में अस्थायी तथा स्थायी दांत पाये जाते हैं। अस्थायी दांतों की संख्या 30 तथा स्थायी दोतों की संख्या 32 होती है। अस्थायी दांत तीसरे मास से लेकर छठे मास तक अवश्य आ जाते हैं। पांच–छः वर्ष तक ये दांत आ जाते हैं। अस्थायी दांत के गिर जाने पर स्थायी दांत उनका स्थान ले लेते हैं। 25 वर्ष की अवस्था तक स्थायी दांत निकलते रहते है।

(6) आन्तरिक अवयव –

शरीर के आन्तरिक अवयवों का विकास भी अनेक रूपों में होता है। यह विकास (अ) रक्त संचार, (ब) पाचन संस्थान, तथा (स) श्वसन प्रणाली में होता है। बचपन में पाचन अंग कोमल होते हैं। प्रोढावस्था में वे कठोर हो जाते हैं। स्नायु संस्थान का आकार भी आयु के विकास के साथ–साथ होता है। आन्तरिक विकास के अंतर्गत स्नायु मण्डल का संगठन, कार्य, चेतना तथा गामक क्रियाओं का संतुलन, श्वांस प्रणाली, गुदा तथा मूत्राशय का विकास भी होता है। मस्तिष्क का विकास भी आन्तरिक अवयवों के विकास के अंतर्गत ही होता है।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक –

स्वास्थ विकास का निवास की उत्तम दशाओं से घनिष्ठ संबंध है। उचित या अनुचित प्रकाश से आयोजित मनोरंजन और विश्राम, अपौष्टिक भोजन, कम हवादार निवास–स्थान एवं दोषपूर्ण वंशानुक्रम के समान तत्व स्वस्थ विकास में बाधक होते हैं। कारकों में से अधिक महत्वपूर्ण निम्नवत है :

i) **वंशानुक्रम** – माता पिता के स्वास्थ और शारीरिक रचना का प्रभाव उनके बच्चों पर भी पड़ता है। यदि वे रोगी और निर्बल हैं तो उनके बच्चे भी वैसे ही होते हैं। स्वस्थ माता–पिता की संतान का ही स्वस्थ शारीरिक विकास होता है।

ii) **वातावरण** – बालक के स्वभाविक विकास में वातावरण के तत्व सहायक या बाधक होते हैं। इस प्रकार के कुछ मुख्य तत्व हैं – शुद्ध वायु, पर्याप्त धूप और स्वच्छता। तंग गलियों और बन्द मकानों में रहने वाले बालक किसी ने किसी रोग के शिकार बनकर अपने स्वास्थ्य को खो देते हैं। यदि बालक का शरीर, पहनने के वस्त्र, रहने का स्थान, खाने का भोजन आदि स्वच्छ है तो, उसका शारीरिक विकास द्रुत गति से होता चला जाता है।

iii) **पौष्टिक भोजन** – पौष्टिक भोजन, थकान का सबल शत्रु और शारीरिक विकास का परम मित्र है। अतः बालक के उत्तम शारीरिक विकास के लिए उसे पौष्टिक भोजन दिया जाना आवश्यक है।

iv) **नियमित दिनचर्या** – नियमित दिनचर्या, उत्तम स्वास्थ्य की आधारशिला है। बालक के खाने, सोने, खेलने, पढ़ाने आदि का समय निश्चित होना चाहिए। इन सब कार्यों के नियमित समय पर होने से उसके स्वस्थ विकास में बहुत ही कम बाधायें आती हैं।

v) **निद्रा व विश्राम** – शरीर के स्वस्थ विकास के लिए निद्रा और विश्राम अनिवार्य है। शिशु के लिए 12 घण्टे बाल्यावस्था और किशोरावस्था में क्रमशः लगभग 10 और 8 घण्टे की निद्रा पर्याप्त होती है। बालक को इतना विश्राम मिलना आवश्यक है, क्योकि थकान उसके विकास में बाधक सिद्ध होती है।

vi) **प्रेम** – बालक के उचित शारीरिक विकास का आधार प्रेम है। यदि उसे अपने माता–पिता का प्रेम नहीं मिलता है, तो वह दुःखी रहने लगता है यदि उसके माता–पिता की अल्पायु में मृत्यु हो जाती है, तो उसे असहय कष्टों को सामना करना पड़ता है उसके शरीर का विकास हो पाना असम्भव हो जाता है।

vii) **सुरक्षा** – शिशु या बालक के सम्यक् विकास के लिए उसमें सुरक्षा की भावना होना अति आवश्यक है। इस सम्भावना के अभाव में वह भय का अनुभव करने लगता है और आत्म–विश्वास खो बैठता है। ये दोनों बातें उसके विकास को अवरूद्ध कर देती है।

viii) **खेल या व्यायाम** – शारीरिक विकास के लिए खेल और व्यायाम के प्रति विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। छोटा शिशु पलंग पर पड़ा–पड़ा ही अपने हाथें और पैरों को चलाकर पर्याप्त व्यायाम कर लेता है, पर बालकों और किशोरों के लिए खुली हवा में खेल और व्यायाम की उचित व्यवस्था की जाना आवश्यक है।

ix) अन्य कारक – शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले कुछ अन्य कारक है (1) रोग या दुर्घटना के कारण शरीर में उत्पन्न होने वाली विकृति या अयोग्यता (2) अच्छी और खराब

जलवायु (3) दोषपूर्ण सामाजिक परम्पराएँ, जैसे – बाल–विवाह (4) गर्भिणी माता का स्वास्थ्य (5) परिवार का रहन–सहन और आर्थिक स्थिति।

पाठ्गत प्रश्न

प्र.1 उत्तम शारीरिक विकास का आशय स्पष्ट कीजिए?

प्र.2 शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले मुख्य कारकों के नाम बताईए ?

मानसिक विकास –

मानसिक विकास से अभिप्राय मानसिक शक्तियों का विकास या ज्ञान भण्डार में वृद्धि एवं उसके उपयोग से है। मानसिक शक्तियों के उदय तथा वातावरण के प्रति समायोजन की क्षमता का नाम मानसिक विकास है। मानसिक विकास में संवेदना, प्रत्यक्षीकरण, अधिगम, स्मरण, अवधान, निरीक्षण, चिन्तन, तर्क, समस्या, समाधान आदि शक्तियॉ आती हैं।

मानसिक विकास की प्रक्रिया जटिल होती है। इस जटिल प्रक्रियाओं के आधार पर किसी संकल्पना का निर्माण करना संभव नहीं है। अतः ये कुछ मानदण्ड है जिनसे मानसिक विकास पता चलता है। जिनमें मुख्य निम्नवत् है

- **बुद्धि में वृद्धि –** बुद्धि का विकास कितने अंशों तक हुआ है, टर्मन ने अमूर्त चिन्तन की योग्यता को बुद्धि कहा है। बुद्धि के दो रूप होते हैं : (1) आनुवंशिक सम्भाव्य योग्यता (2) अर्जित बुद्धि योग्यता। अ) बच्चों के विकास का ढंग ब) परिवेश तथा परिस्थितियॉ स) परिवेश में मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक परिस्थितियॉ द) मानसिक विकास का मूल्यांकन करने के लिए प्रयुक्त परिणाम का रूप ।
- **मानसिक क्रियाओं में वृद्धि** – मानसिक क्रियाओं में वृद्धि होने से ही मानसिक विकास का अनुमान लगाया जाता है। पन्द्रह वर्ष की आयु को मानसिक परिपक्वता का आधार मानकर बाकी वर्षों में मानसिक स्तर को पहचाना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक वृद्धि की रोक विभिन्न आयु वर्षो में होने लगती है। मानसिक क्रियाओं की वृद्धि के ज्ञान के लिये : (1) शब्द ज्ञान, (2) उपमायें, (3) रिक्त पूर्ति, विपरीत शब्दों के परीक्षणों का उपयोग अधिक किया गया है।
- **भाषा विकास –** मानसिक विकास का पता भाषा विकास से भी चलता है। भाषा के द्वारा ही अर्जित ग्राह्य शक्ति तथा नवीन क्रियाओं को सीखने की क्षमता विकसित होती है। प्रारंभिक वर्षों की अपेक्षा बाद के वर्षों में बालक जटिल वाक्य रचना तथा अधिक शब्दों को सीखता है।
- **संकल्पनात्मक विकास –** संकल्पना के निर्माण का महत्व मानसिक विकास की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण है। बाल्यावस्था तक बालक मांसपेशियों पर नियंत्रण तथा पदार्थों को देखने में स्थिरता को विकसित करता है। बालक जो कुछ भी चिंतन करता है, उसका आधार प्रत्यय है। वह जो देखता है, उसी पर विश्वास करता है। बुद्धि के विकास का आभास इस बात से भी चलता है कि बालक में किस

प्रकार की संकल्पनायें विकसित होती है। इसी प्रकार दैनिक व्यवहार की संकल्पनायें बालक के मानसिक विकास की धोतक है (अ) स्थान तथा दिशा का ज्ञान (ब) समय (स) संख्या एवं (द) संकल्पनाओं से बालक के मानसिक विकास का पता चला है।

मानसिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक –

विभिन्न कारक मानसिक विकास को प्रभावित करते हैं। उनमें से अधिक महत्वपूर्ण कारक निम्नांकित है –

1) **वंशानुक्रम** – बालक, वंशानुक्रम से कुछ मानसिक गुण और योग्यताएँ प्राप्त करता है जिनमें वातावरण किसी प्रकार का अन्तर नहीं कर सकता है। किसी व्यक्ति का उससे अधिक विकास नहीं हो सकता, जितना कि उनका वंशानुक्रम सम्भव बनाता है।

2) **पविार का वातावरण –** परिवार के वातावरण का बालक के मानसिक विकास में घनिष्ठ संबंध है। एक अच्छा परिवार, जिसमें माता–पिता में अच्छे संबंध होते हैं, जिसमें वे अपने बच्चों की रूचियों और आवश्यकताओं को समझते हैं एवं जिसमें आनन्द एवं स्वतंत्रता का वातावरण होता है, प्रत्येक सदस्य के मानसिक विकास में अत्यधिक योग देता है।

3) **परिवार की सामाजिक स्थिति** – उच्च सामाजिक स्थिति के परिवार के बालक का मानसिक विकास अधिक होता है। इसका कारण यह है कि उसको मानसिक विकास के जो साधन उपलब्ध होते हैं वे निम्न सामाजिक स्थिति के परिवार के बालक के लिए दुर्लभ होते हैं।

4) **परिवार की आर्थिक स्थिति –** प्रतिभाशाली बालक दरिद्र क्षेत्रों से आने के बजाय अच्छी आर्थिक स्थिति वाले परिवारों से अधिक आते हैं इनका कारण यह है कि इन बालको को कुछ विशेष सुविधाएँ उपलब्ध रहती है, जैसे – उचित भोजन, उपचार के पर्याप्त साधन, उत्तम शैक्षिक अवसर, आर्थिक कष्ट से सुरक्षा आदि।

5) **माता–पिता की शिक्षा –** अशिक्षित माता–पिता की अपेक्षा शिक्षित माता–पिता का बालक के मानसिक विकास पर कहीं अधिक प्रभाव पड़ता है। माता–पिता की शिक्षा, बच्चों की मानसिक योग्यता से निश्चित रूप से संबंधित है।

6) **उचित प्रकार की शिक्षा –** बालक के मानसिक विकास के लिए उचित प्रकार की शिक्षा अति आवश्यक है। ऐसी शिक्षा ही उसके मानसिक गुणों और शक्तियों का विकास करती है। शिक्षा मनुष्य की शक्ति का विशेष रूप से उसकी मानसिक शक्ति का विकास करती है।

7) **विद्यालय –** अच्छा विद्यालय बालक के मानसिक विकास का वास्तविक और महत्वपूर्ण कारक है। अच्छा विद्यालय ऐसा पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है, जो क्षेत्रों की रूचियों और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विभिन्न क्रियाओं से परिपूर्ण रहता है। ऐसा विद्यालय स्वस्थ मानसिक विकास का एक वास्तविक कारण है।

8) **शिक्षक –** बालक के मानसिक विकास में शिक्षक का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। यदि शिक्षक का मानसिक विकास अच्छा है, यदि वह बालक के प्रति प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करता है और वह शिक्षण विधियों एवं उचित शिक्षण सामग्री का प्रयोग करता है तो बालक का मानसिक विकास होना स्वभावितक है।

9) **शारीरिक स्वास्थ्य –** शारीरिक स्वास्थ्य मानसिक विकास का मुख्य आधार है। निर्बल और अस्वस्थ बालक की अपेक्षा सबल और स्वस्थ बालक अधिक परिश्रम करके अपने मानसिक विकास की गति और सीमा में वृद्धि कर सकता है। इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य पर अति प्राचीनकाल से बल दिया जा रहा है। अरस्तू का कथन है – स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क होता है।

10) **समाज –** प्रत्येक बालक का जन्म किसी न किसी समाज मे होता है। वही समाज उसके मानसिक विकास की गति और सीमा को निर्धारित करता है। यदि समाज में अच्छे विद्यालयों, पुस्तकालयों, वाचनालयों, बालभवनों, मनोरंजन के साधनों आदि की उत्तम व्यवस्था है, तो बालक का मस्तिष्क अविराम गति से विकसित होता चला जाता है।

पाठ्यगत प्रश्न –

प्र. 3 टर्मन ने बुद्धि को कौन सी योग्यता बताया है?

प्र.4 बालक के मानसिक विकास में परिवार के वातावरण की क्या भूमिका है?

सामाजिक विकास :– बालक जन्म के समय समाज निरपेक्ष होता है उम्र बढ़ने के साथ–साथ बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया हो जाती है जिसके फलस्वरूप उसमें सामाजिक गुणों का विकास होता है जो सामाजिक विकास को प्रदर्शित करता है।

(1) **आरम्भिक सामाजिक अनुक्रियायें** – शैशवावस्था में बालक का सामाजिक सम्पर्क माता तथा उसके इर्द–गिर्द का वातावरण होता है। माता के चेहरे को देखकर वह मुस्कराता है और वही उसका सामाजिक संपर्क है। बाल्यावस्था में उसका सामाजिक सम्पर्क बढ़ता रहता है और उसी तरह अनुक्रियाएं भी करता है। वह अपने पराये में अंतर करने लगता है और यहीं अन्तर करना उसके सामाजिक विकास का पहला चरण है।

(2) **अन्य बालकों के साथ अनुक्रिया –** सामाजिक विकास एकाकी तथा अनुक्रिया नहीं है। बालक अन्य बालकों के प्रति अनुक्रिया करता है। इससे उसके सुखद एवं दुखद अनुभव में वृद्धि होती है। नौ मास की आयु तक के बच्चे अनुक्रिया के प्रति प्रतिक्रिया नहीं करते। दो वर्ष की आयु के बच्चे लेन–देन की अनुक्रियायें करने लगते हैं।

(3) **सामाजिक प्रतिबोध –** सामाजिक विकास प्रतिबोध का होना ही सामाजिक विकास की महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इसी प्रक्रिया में बालक स्वाभाविक तथा अर्जित सामाजिक व्यवहारों को सीखता है तथा परिस्थिति उत्पन्न होने पर उसके अनुकूल आचरण करता है। वे मुखांगों द्वारा

अपनी अनुक्रिया व्यक्त करने लगते हैं। उनमें प्रतिद्वन्दिता, सहयोग अनिच्छापूर्वक कार्य करना आदि भाव विकसित होने लगते हैं।

(4) **प्रतिरोधी व्यवहार –** सामाजिक व्यवहार के विकास के साथ–साथ बालकों में प्रतिरोधी अथवा नकारात्मक व्यवहार उत्पन्न होने लगता है। नकारात्मक व्यवहार में होठों को बंद करना, सिर हिलाना, अंगों में सख्ती ले आना आदि है।

(5) **लड़ाई झगड़ा –** जैसे–जैसे बच्चे बड़े होने लगते हैं, उनके व्यवहार में लड़ाई–झगड़ों की संख्या बढ़ने लगती है। इनके कारण जब भी बच्चे के कार्य की गति में अवरोध उत्पन्न किया, बालक लड़ने के लिये तैयार हो जाता है। यदि बड़े सामाजिक मान्यता प्राप्त विषयों से बच्चों को प्रशिक्षण देंगे तो उनमें झगड़े होने की संभावना कम होगी।

(6) **सहानुभूति –** सामाजिक विकास में सहानुभूति की विशेष भूमिका होती है। बालक में यह प्रवृत्ति सहानुभूति की परिस्थितियों में ही विकसित होती है। सहानुभूति पूर्ण व्यवहार में भी आयु तथा परिपक्वता के साथ–साथ भिन्नता पाई जाती है।

(7) **प्रतिस्पर्धा –** बालक में प्रतिस्पर्धा का विकास सामाजिक विकास के कारण होता है। अपने आगे बढ़ने में व्यक्ति सदा ही लगा रहता है। उसे अपने प्रतिद्वन्दियों से स्पर्धा करनी पड़ती है।

(8) **सहयोग –** सहयोग सामाजिक विकास तथा समायोजन का मूल है। सहयोग की भावना के विकास से ही व्यक्ति में मित्र–शत्रु भाव उत्पन्न होता है। दोनों ही बालक के सामाजिक पक्ष को विकसित करने में सहयोग देते है।

सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारक :– सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले कारकों में से अधिक महत्वपूर्ण अधोलिखित है –

1. **वंशानुक्रम –** बालक के सामाजिक विकास पर वंशानुक्रम का कुछ सीमा तक प्रभाव पड़ता है। शिशु की पहली मुस्कान या उनका कोई विशिष्ट व्यवहार वंशानुक्रम से उत्पन्न होने वाला हो सकता है।
2. **शारीरिक व मानसिक विकास** – स्वस्थ और अधिक विकसित मस्तिष्क वाले बालक का सामाजिक विकास अस्वस्थ और कम विकसित मस्तिष्क वाले बालक की अपेक्षा अधिक होता है।
3. **संवेगात्मक विकास** – बालक के सामाजिक विकास का एक महत्वपूर्ण आधार उसका संवेगात्मक विकास है। क्रोध व ईर्ष्या करने वाला बालक दूसरे की घृणा का पात्र बन जाता है। उसके विपरीत प्रेम और विनोद से परिपूर्ण बालक सभी को अपनी ओर आकर्षित करता है। संवेगात्मक और सामाजिक विकास साथ–साथ चलते है।

4. **परिवार** – परिवार ही स्थान है, जहॉ सबसे पहले बालक का समाजीकरण होता है परिवार के बड़े लोगों का जैसा आचरण और व्यवहार होता है, बालक वैसा ही आचरण और व्यवहार करने का प्रयत्न करता है।
5. **पालन पोषण की विधि** – माता–पिता द्वारा बालक के पालन–पोषण की विधि उसके सामाजिक विकास पर बहुत गहरा प्रभाव डालती है, उदाहरणार्थ, समानता के आधार पर पाला जाने वाला बालक कहीं भी अपनी हीनता का अनुभव नहीं करता है और बहुत लाड़ प्यार से पाला जाने वाला बालक दूसरे बालकों से दूर रहना पसंद करता है।
6. **आर्थिक स्थिति** – माता–पिता की आर्थिक स्थिति का बालक के सामाजिक विकास पर उचित या अनुचित प्रभाव पडता है, उदाहराणार्थ धनी माता–पिता का बालक पड़ौस में रहते हैं, अच्छे व्यक्तियों से मिलते जुलते हैं और अच्छे विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं। निर्धन माता–पिता की सन्तान होने के कारण उनकी सन्तानों को इस प्रकार की किसी भी सुविधा के कभी दर्शन नहीं होते हैं।
7. **सामाजिक व्यवस्था –** सामाजिक व्यवस्था, बालक के सामाजिक विकास को एक निश्चित रूप और दिशा प्रदान करती है, समाज कार्य, आदर्श और प्रतिमान बालक के दृष्टिकोणों का निर्माण करते है। यही कारण है कि ग्राम और नगर, जनतंत्र और अधिनायकतंत्र में बालक का सामाजिक विकास विभिन्न प्रकार से होता है।
8. **विद्यालय –** यदि विद्यालय का वातावरण जनतंत्रीय है, तो बालक का सामाजिक विकास अविराम गति से उत्तम रूप ग्रहण करता चला जाता है। इसके विपरीत, यदि विद्यालय का वातावरण एकतन्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार दण्ड और दमन पर आधारित है तो बालक का समाजिक विकास कुण्ठित हो जाता है।
9. **शिक्षक –** बालक के सामाजिक विकास पर शिक्षक का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है यदि शिक्षक शिष्ट शांत और सहयोगी है, तो उसके छात्र भी उसी के समान व्यवहार करते हैं। योग्य शिक्षकों का सम्पर्क बालक के सामाजिक विकास पर निश्चित प्रभाव डालता है। वास्तविक सामाजिक ग्रहणशीलता और योग्यता वाले शिक्षकों से दैनिक सम्पर्क, बालक के सामाजिक विकास में अतिशय योग देता है।
10. **खेल कूद –** बालक के सामाजिक विकास में खेलकूद का विशेष स्थान है। खेल द्वारा ही वह अपनी सामाजिक प्रवृत्तियों और सामाजिक व्यवहार का प्रदर्शन करता है, खेल द्वारा ही उसमें उन सामाजिक गुणों का विकास होता है।
11. **समूह या टोली –** समूह या टोली के सदस्य के रूप में बालक इतना व्यवहार–कुशल हो जाता है कि समाज में प्रवेश करने के बाद उसे किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता है। समूह

के प्रभावों के कारण बालक सामाजिक व्यवहार का ऐसा महत्वपूर्ण प्रशिक्षण प्राप्त करता है जैसा प्रौढ़ समाज द्वारा निर्धारित की गई दशाओं में उतनी सफलता से प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

12. **अन्य कारण –** बालक के सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले अन्य महत्वपूर्ण कारक है – संस्कृति, कैम्प – जीवन, रेडियो, सिनेमा, समाचार पत्र तथा पत्रिकायें।

पाठ्गत प्रश्न –

प्र. 5 बालक का सामाजिक विकास किन बिन्दुओं पर आधारित होता है?

प्र.6 बालक की सामाजिक विकास किन–किन कारकों से प्रमाडित होता है? नाम लिखें।

संवेगात्मक विकास– संवेगात्मक विकास मानव जीवन के विकास तथा उन्नति हेतु अपना विशेष महत्व रखते हैं यह विकास मानव जीवन को प्रभावित करता है। संवेग अंग्रेजी शब्द इमोशन का पर्यायवाची हैं इसका लैटिन स्वरूप इमोवियर है, जिसका अर्थ है हिला देना, उत्तेजित करना। जब भी संवेग की स्थिति आती है, व्यक्ति में बैचेनी आ जाती है। वह कुछ भी असामान्य व्यवहार प्रकट कर सकता है, हृदय की धड़कन बढ़ जाती है, ऑखों से ऑसू बह सकते हैं, चेहरे पर मलीनता छा सकती है, अचेतन में व्याप्त अनेक सुप्त व्यवहार जागृत हो जाते हैं।

बोरिंग लैगफील्ड एवं फील्ड – ''संवेग प्रभावशाली अनुक्रिया के समान होता है। यह शरीर की सामान्य एवं शारीरिक प्रतिक्रियाओं के रूप में व्यक्त होता है।'' संवेग मानव व्यवहार का असामान्य अंग है। ये हर प्राणी में पाये जाते हैं। बाल जीवन के प्रमुख संवेग इस प्रकार है– हर्ष, प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, भय, क्रोध, उत्सुकता इत्यादि। इनमें हर्ष, प्रेम, ईर्ष्या, भय, क्रोध, घृणा अवांछनीय संवेग है। यह अवांछनीय संवेग शरीर पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। संवेग उत्पन्न होने की स्थिति में बाहय व आन्तरिक रूप से शरीर में परिवर्तन होते हैं जो संवेग की दशा प्रदर्शित करते हैं।

संवेग की दो दशायें होती है – आन्तरिक तथा बाह्य। इन दोनो का संबंध शरीर की भिन्न क्रियाओं में परिवर्तन करने से होता है।

(i) **बाह्य शारीरिक परिवर्तन –** इन परिवर्तनों के अंतर्गत (चेहरे की मुद्रा का बदलना, हास्य, रूदन, प्रेम आदि के भाव, स्वर में परिवर्तन, शरीर के आसनों में परिवर्तन जैसे– हाथ पैर फेंकना आदि आते हैं। संवेगों की दशायें व्यक्ति की शारीरिक प्रकृति पर निर्भर करती है।

(ii) **आन्तरिक शारीरिक परिवर्तन –** इन परिवर्तनों के अंतर्गत श्वांस, नाड़ी, हृदय तथा रक्त की गति में परिवर्तन हो जाता है। रक्त की रासायनिक क्रिया बदल जाती है। पाचन–क्रिया गडबड़ा जाती है। ग्रन्थियों तथा त्वचा की प्रतिक्रिया बदल जाती है।

मानव जीवन में संवेगों का अत्याधिक महत्व है। यदि संवेगों का विकास संतुलित रूप में नहीं होता है तो व्यक्ति का सम्पर्ण व्यक्तित्व विघटित हो जाता है। अनेक विसंगतियॉ उत्पन्न हो जाती है। संवेगों से ही व्यक्ति में निर्माण तथा ध्वंस की भावनायें उत्पन्न होती है। किशोर

किशोरियां अपनी आकृति के प्रति चैतन्य रहते हैं। इसके लिए वे समय पर क्रोध ईर्ष्या तथा प्रतिस्पर्धा और उच्च संवेगों का खुलकर प्रयोग करते हैं।

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक–

संवेगात्मक विकास को प्रभावित करने वाले कारक निम्नलिखित है –

i) **थकान –** अधिक थकान बालक के संवेगात्क व्यवहार को प्रभावित करती है। जब बालक थका हुआ होता है, तब उसमें क्रोध या चिड़चिडेपन के समान अवांछनीय संवेगात्क व्यवहार की प्रवृत्ति होती है।

ii) **स्वास्थ्य –** बालक के स्वास्थ्य की दशा का उसकी संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं से घनिष्ठ संबंध होता है। अच्छे स्वास्थ्य वाले बालकों की अपेक्षा बहुत बीमार रहने वाले बालकों के संवेगात्मक व्यवहार में अधिक अस्थिरता रहती है।

iii) **मानसिक योग्यता –** अधिक मानसिक योग्यता वाले बालकों का संवेगात्मक विकास अधिक विस्तृत होता है। वे भविष्य के सुखों और दुःखों, भयों और अपत्तियों को अनुभव कर सकते हैं। साधारणतया निम्नतर मानसिक स्तरों के बालकों में उसी आयु के प्रतिभाशाली बालकों की अपेक्षा संवेगात्मक नियंत्रण कम होता है।

iv) **अभिलाषा –** माता–पिता को अपने बालक से बड़ी आशायें होती है स्वयं बालक में कोई न कोई अभिलाषा होती है। यदि उसकी अभिलाषा पूर्ण नही होती है, तो वह निराशा के सागर में डुबकियॉ लगाने लगता है। साथ ही उसे अपने माता–पिता की कटु आलोचना सुननी पड़ती है। ऐसी स्थिती में उसमें संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाता है। कोई भी बात जो बालक के आत्मविश्वास को कम करती है, उसके द्वारा समझे जाने वाले लक्ष्यों की प्राप्ति में अवरोध उत्पन्न करती है, उसकी चिन्तित और भयभीत रहने की प्रवृत्ति में वृद्धि कर सकती है।

v) **परिवार –** बालक का परिवार उसके संवेगात्मक विकास को तीन प्रकार से प्रभावित करता है :

1) यदि परिवार के सदस्य अत्यधिक संवेगात्मक होते हैं, तो बालक भी उसी प्रकार का हो जाता है। **2)** यदि परिवार मे शांति, सुरक्षा और आनन्द के कारण उत्तेजना उत्पन्न नही करती है, तो बालक के संवेगात्मक विकास का रूप संतुलित होता है। **3)** यदि परिवार में लड़ाई झगड़े होना, मिलने जुलने वालो का बहुत आना और मनोरंजन का कार्यक्रम बनते रहना साधारण घटनाये है तो बालक के संवेगों में उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है।

vi) **माता–पिता का दृष्टिकोण –** बालक के प्रति माता–पिता का दृष्टिकोण उसके संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करता है। बच्चों की उपेक्षा करना, बहुत समय तक घर से बाहर रहना, बच्चों के बारे में आवश्यकता से अधिक चिन्तित रहना, बच्चों को अपनी इच्छा के अनुसार कोई भी कार्य करने की आज्ञा न देना और बच्चों कोघर के सब सदस्यों के प्रेम का पात्र बनाना, माता–पिता की ये सब बातें बच्चों में अवांछनीय संवेगात्मक व्यवहार को बढ़ाती हैं।

vii) **सामाजिक स्थिति –** बालकों की सामाजिक स्थिति उनके संवेगात्मक व्यवहार को प्रभावित करती है। सामाजिक स्थिति और संवेगात्मक स्थिरता में घनिष्ठ संबंध होता है। निम्न सामाजिक स्थिति के बालकों में उच्च सामाजिक स्थिति के बालकों की अपेक्षा असंतुलन और अधिक संवगात्मक अस्थिरता होती है।

viii) **सामाजिक स्वीकृति –** यदि बालक को अपने कार्यो की सामाजिक स्वीकृति नही मिलती है, तो उसके संवेगात्मक व्यवहार में उग्रता या शिथिलता आ जाती है।

ix) **निर्धनता –** निर्धनता बालक के अनेक अशोभनीय संवेगों को स्थायी और शक्तिशाली रूप प्रदान कर देती है। वह विद्यालय में धनी, बालकों की वेश–भूषा देखता है, उनके आनन्दपूर्ण जीवन की कहानियॉ सुनता है, फलस्वरूप, उसमें द्वेष और ईर्ष्या के संवेग सशक्त रूपधारण करके उस पर अपना सतत् अधिकार स्थापित कर सकता है।

x) **विद्यालय –** विद्यालय का बालक के संवेगात्मक विकास पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है। यदि विद्यालय में कार्यक्रम उसके संवेगों के अनुकूल होते हैं, तो उसे उनमें आनन्द का अनुभव होता है। इसके विपरीत, यदि उसे विद्यालय के कार्यक्रमों में असफल होने या अपने दोषों के प्रकटीकरण का भय होता है, उसमें घृणा, क्रोध और चिडचिड़ापन का स्थायी निवास हो जाता है।

xi) **शिक्षक –** शिक्षक का बालक के संवेगात्मक विकास पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। वह उसमें अच्छी आदतों का निर्माण करके और अच्छे आदर्शो का अनुसरण करने की इच्छा उत्पन्न करके, अपने संवेगों पर नियंत्रण रखने की क्षमता का विकास कर सकता है।

xii) **अन्य कारक –** बालक के संवेगात्मक विकास पर अवांछनीय प्रभाव डालने वाले कुछ अन्य महत्वपूर्ण कारक हैं – अत्यधिक कार्य, कार्य में अनावश्यक बाधा और अपमानजनक व्यवहार।

पाठ्गत प्रश्न –

प्र.7 संवेग से आप क्या समझते हैं ?

प्र.8 संवेगात्मक विकास का बालक के विकास में क्या महत्व है?

भाषा विकास –

भाषा का विकास बौद्धिक विकास की सर्वाधिक उत्तम कसौटी मानी जाती है बच्चे को सर्वप्रथम भाषा का ज्ञान परिवार से होता है। तत्पश्चात् विद्यालय तथा समाज के सम्पर्क में आने पर उनका भाषायी ज्ञान बढ़ता है।

जन्म के समय शिशु क्रन्दन करता है। यही उसकी पहली भाषा होती है। 25 सप्ताह का शिशु जिस प्रकार ध्वनियॉ निकालता है, उसमें स्वरों की संख्या अधिक होती है। 10 मास की अवस्था में शिशु पहला शब्द बोलता है, जिसे वह बार–बार दोहराता है। एक वर्ष तक शिशु की भाषा समझना कठिन होता है। छोटे शिशु पानी की लिये 'मम' कहते है। शैशावस्था में भाषा विकास जिस ढंग से होता है, उस पर परिवार की संस्कृति तथा सभ्यता का प्रभाव प्रड़ता है।

जन्म से 8 मास तक शब्दों की संख्या शून्य होती है। 6 वर्ष पूर्ण होते होते उसके शब्दों की संख्या लगभग 2500 के करीब हो जाती है।

शिशु की भाषा पर उसकी बुद्धि तथा विद्यालय का वातावरण भी अपनी भूमिका प्रस्तुत करते हैं। एनास्ट्सी ने कहा कि लड़कों की अपेक्षा लड़कियों का भाषा–विकास शैशवकाल में अधिक होता है।

आयु के साथ–साथ बालकों के सीखने की गति में भी वृद्धि होती है। बाल्यकाल में बालक, शब्द से लेकर वाक्य विन्यास तक की सभी क्रियाएँ सीख लेता है। लड़कियों की भाषा का विकास लड़कों की अपेक्षा अधिक तेजी से होती है। सीशोर ने अपने अध्ययन में बताया कि बालक में भाषा का विकास आयु के अनुसार किस प्रकार विकसित होता है।

सारणी :– सीशोर के अनुसार भाषा विकास

आयु (वर्ष में)	शब्द
4	5,600
5	9,600
6	14,700
7	21,200
8	26,300
10	34,300

भाषा के विकास में समुदाय, घर, विद्यालय, परिवार की आर्थिक, सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव अत्याधिक पड़ता है। वस्तुओं को देखकर उसका प्रत्यय – ज्ञान – स्थूल से सूक्ष्म की ओर विकसित होता है। उसी प्रकार ज्ञान भी मूर्त से अमूर्त की ओर होता है।

किशोरावस्था में अनेक शारीरिक परिवर्तनों से जो संवेग उत्पन्न होते हैं, भाषा का विकास भी उनसे प्रभावित होता है। किशोरों में साहित्य पढ़ने की रूचि उत्पन्न हो जाती है। उनमें कल्पना शक्ति का विकास होने से वे कवि, कहानीकार, चित्रकार बनकर कविता, कहानी तथा चित्र के माध्यम से अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति करते है। किशोरवस्था में लिखे प्रेम–पत्रों की भाषा में भावुकता मिश्रण होने से भाषा–सौन्दर्य प्रस्फुटिक होता है।

किशारों का शब्दकोष भी विस्तृत होता जाता है। किशोर कई बार गुप्त भाषा को भी विकसित करते हैं। यह भाषा कुछ प्रतीकों के माध्यम से लिखी जाती है। भाषा के माध्यम से किशोर की संकल्पनाओं का विकास होता है। ये संकल्पनायें उसके जीवन की तैयारी का प्रतीक होती है।

भाषा के विकास का चिन्तन पर भी प्रभाव पड़ता है। किशोरावस्था तक व्यक्ति जीवन में भाषा का प्रयोग किस प्रकार किया जाये, कैसे किया जावे,, आदि रहस्यों को जान लेता है।

भाषा विकास को प्रभावित करने वाले कारक–

1) **स्वास्थ्य –** लम्बी बीमारी के कारण बालक भाषा विकास में पिछड़ जाता है, इसका कारण है – भाषा की सम्पर्कजन्यता। बीमारी के दौरान बालक समाज के सम्पर्क में कम रहता है, अतः इस स्थिति का प्रभाव बालक के भाषा के विकास पर पड़ना स्वाभाविक है। कम सनुने वाले बालकों का भाषा विकास अवरूद्ध हो जाता है।

ऐसे बालकों का शब्द भण्डार भी कम होता है। इसका कारण है– बालक भाषा को अनुकरण के माध्यम से सीखता है। स्वास्थ्य के ठीक न होने के कारण उसे अनुकरण के अवसर नहीं मिलते।

2) **बुद्धि** – बुद्धि तथा भाषा का गहरा संबंध होता है। भाषा के स्तर से ही बुद्धि के स्तर का पता चलता है। भाषा विकास तथा बुद्धि–लब्धि का घनिष्ठ संबंध होता है। चूंकि आरंभिक अवस्था में भाषा विकास बुद्धि का धोतक है, इसलिए अभिभावकों का दायित्व और भी बढ़ जाता है।

3) **हकलाना** – हकलाना वाणी दोष है। हकलाना मानसिक अवस्था के कारण होता है। बालक जब स्वभाविक रूप से शब्दोच्चारण पर जोर नहीं देता, तब उच्चारण संबंधी तन्त्र को अधिक शक्ति लगानी पडती है। फैफडों में हवा नहीं रहती, ऐसी स्थिति में उच्चारण में दोष उत्पन्न होता है।

4) **सामाजिक आर्थिक स्तर** – व्यापारी वर्ग, श्रमिक वर्ग तथा बुद्धीजीवी वर्ग के बच्चों की भाषा का अध्ययन करके यह परिणाम निकाला गया है कि भिन्न वर्गों के बालकों की शब्दावली वाक्य–विन्यास आदि में भिन्नता पाई जाती है। उच्च वर्ग के बालकों के आपसी संबंध भी उसी प्रकार के लोगों से रहते हैं और वे सुसंस्कृत शब्दावली युक्त लोक–व्यवहार की भाषा बोलते हैं। जहाँ पर परिवारों का सामाजिक आर्थिक स्तर नीचा होता है, वहाँ पर बालकों की भाषा का विकास द्रुत नहीं होता।

5) **यौन** – लड़कियाँ, लड़कों की अपेक्षा शीघ्र ही ध्वनि संकेत ग्रहण करती हैं। लड़कियों का संबंध तथा समाजीकरण माता से अधिक होता है। अतः उसी संपर्क से लड़कियों की भाषा में अन्तर आने लगता है। वाणी दोष लड़कियों की अपेक्षा लड़कों में अधिक पाये जाते हैं। इसका कारण लड़कों में संवेगात्मक असुरक्षा बताया है।

6) **पारिवारिक सम्बन्ध** – अनाथालयों, छात्रावासों तथा परिवारों में पले बच्चों के अध्ययन से पता चला कि भाषा सीखने तथा प्रभावित करने में पारिवारिक सम्बन्धों का विशेष महत्व है। संस्थाओं के बच्चों का संवेगात्मक सम्पर्क परिवार के सदस्यों से नहीं हो पाता, इसलिए वे भाषा सीखने में देरी लगाते हैं।

7) **एकाधिक भाषा** – जब कभी बालक को मातृभाषा के अतिरिक्त अन्य भाषा सीखनी पड़ती है तो वह उसे सरलता से नहीं सीख पाता। विभाषा सीखने के समय उसका सामान्य भाषा विकास विलम्बित हो जाता है। अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों में पढ़ने वाले बालकों की भाषा में अस्पष्टता, चिन्तन में अवरोध और प्रत्ययों में असमानता पाई जाती है।

पाठगत प्रश्न

प्र 1 बालक में भाषा विकास के मुख्य आधार कौन से हैं ?

प्र 2 भाषा विकास के प्रभावक तत्वों की विवेचना करें ?

मूल्य परक विकास

बालक अपने वातावरण में कई व्यक्तियों एवं वस्तुओं से घिरा रहता है। विकास क्रम से वह धीरे–धीरे इनके सम्पर्क में आने लगता है। तथा इनसे संबंध स्थापित करने लगता है। इन संबंधों के कारण वह सुख–दुख का अनुभव करने लगता है। फलस्वरूप वातावरण में उपस्थित शक्तियों तथा विभिन्न वस्तुओं के

प्रति इसके भीतर मनोवृत्तियों का निर्माण होने लगता है। जब बालक कुछ बडा हो जाता है, तब अपने परिवार, समुदाय एवं समाज के द्वारा अपनायी हुई नैतिक भावनाओं, आदर्शों या मूल्यों को भी ग्रहण करने लगता है यह प्रक्रिया एक क्रमिक प्रक्रिया होती है तथा इस दौरान बालक को यह चेतना भी नहीं रहती है कि वह सामाजिक आदर्शों को सीख रहा है। धीरे–धीरे बालक का अधिकांश व्यवहार उसके परिवार, विद्यालय एवं समुदाय द्वारा स्वीकृत नैतिक मूल्यों के नियंत्रण में आ जाता है। सामाजिक नैतिक मूल्यों को अपना कर ही बालक अपने परिवार अथवा समुदाय की वास्तविक सदस्यता प्राप्त कर पाता है।

मूल्य, व्यक्ति की वह नैतिक शक्ति है, जिसकी मदद से वह अच्छे बुरे एवं उचित–अनुचित में अन्तर समझ पाता है।

बालक आपने जीवन प्रसार में जिस परिवार, पाठशाला तथा समाज का सदस्य बनता है उनके कुछ विशेष सामाजिक और नैतिक मूल्य एवं आदर्श होते है। बालक को इन सामाजिक मानों के अनुरूप बनना पडता है तथा उन्हीं के द्वारा निर्देशित आचरण करने पड़ते हैं। अतः सामाजिक तथा नैतिक मूल्य बालक के सम्पूर्ण आचरण के निर्धारक माने जाते हैं एवं उनका उसके व्यवहार पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। भिन्न–भिन्न संस्कृतियों में भिन्न–भिन्न तरह के मूल्य विकसित होते हैं। यही नहीं एक ही बालक के परिवार एवं उसके समुदाय के मूल्यों में भी अन्तर पाया जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने बालक के नैतिक विकास की भिन्न भिन्न अवस्थाऐं निर्धारित की है। फिर भी एक ही आयु के बालकों में नैतिक विकास में भिन्नता देखी जाती है।

नवजात शिशु – नवजात शिशु में नैतिकता संबंधी भावना अविकसित होती है।

प्रथम तीन वर्ष – प्रांरभिक वर्षों में बालक आत्मकेन्द्रित होता है। उसका प्रयोग व्यवहार संवेगजनक होता है। वह नैतिकता को ठीक–ठीक नहीं समझ पाता।

तीन से छः वर्ष की आयु – इस आयु में नैतिकता का पूरा पूरा विकास नहीं होता है। उसका व्यवहार अब भी प्रौढ़ व्यक्तियों की प्रशंसा तथा निन्दा पर निर्भर करता है। बालक अभी 'झूठ' तथा सच की पहचान नहीं कर सकता।

छः वर्ष की आयु में बालक में ध्वंसात्मक प्रवृत्ति जोर पकड़ लेती है। इस अवस्था के बालक प्राथमिक पाठशाला के छात्र होते हैं। उनके व्यवहार में अभी भी संवेगात्मकता का पर्याप्त अंश रहता है।

नौ से बारह वर्ष की आयु में वह अच्छाई तथा बुराई को समझने लगता है। किशोरावस्था से पहले बालक नैतिक विकास की दृष्टि से अभी भी अपरिपक्व होता है। प्रौढ़ों के उपदेशों की बजाय वह उनके व्यावहारिक जीवन से ज्यादा प्रभावित होता है।

मूल्य परक विकास को प्रभावित करने वाले कारक –

व्यक्ति की नैतिकता का आधार ''आध्यात्मिक'' है, यह अविकसित दशा में बालक में विद्यमान रहती हैं। बालक के विकास को प्रभावित करने वाले तत्व –

1. **परिवार** – बालक के नैतिक विकास में परिवार का वातावरण, अपने से बड़ों का उदाहरण तथा माता–पिता के संस्कारों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। चरित्र की कुछ विशेषताएँ बालक में जन्म से ही छिपी रहती हैं। रूप–गुण के अनुरूप अपने माता पिता से चरित्र की विशेषताओं की छाप उस पर अवश्य पड़ती है।

   जिस परिवार में माता पिता में परस्पर सहयोग और प्रेम रहता है, वहॉ अन्य बालक–बालिकाएं भी सहयोग और स्नेह से रहते है। जिस घर में शान्ति और व्यवस्था हे, वहॉ बालक के चरित्र का विकास सहज रूप में होता है।

2. **विद्यालय** – परिवार से बाहर बालक के चरित्र–विकास में जितना प्रभाव विद्यालय का पड़ता है, उतना प्रभाव किसी और संस्था का नहीं पड़ता। बालक 5–6 वर्ष की आयु से ही पाठशाला जाने लगता है। वहाँ वह बड़े समूह में कई घण्टों के लिये निरन्तर कई वर्ष तक रहता है।

   खेल के द्वारा, अनुशासन के द्वारा तथा सामूहिक प्रयोजनाओं के द्वारा बालक में एक आदर्श नागरिक के गुणों का विकास किया जाता है। अध्यापक निरन्तर बालकों के व्यवहार का निरीक्षण करते हैं और उसकी चरित्र सम्बन्धी त्रुटियों को सुधारने का प्रयास करते हैं। अध्यापक प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से ही बालक के चरित्र पर अपना प्रभाव डालता है। बालक में अनुकरण की प्रवृत्ति होती है। अध्यापक उसके सामने एक आदर्श होता है।

3. **मित्रमण्डली** – बालक बहुत समय अपने मित्रों के साथ बिताता हैं उसके चरित्र पर मित्रों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता हैं यदि बालक के मित्र अच्छे होंगे तो वह चरित्रवान बनेगा परन्तु बुरे बालकों की संगति में उसका चरित्र दूषित हो जाता है। अतएव् माता–पिता को चाहिए कि वे बालकों को अच्छे संगी–साथियों के साथ खेलने के लिये प्रोत्साहन दें।

4. **धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएँ** – भारत एक धर्म–प्रधान राष्ट्र है। अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा यहाँ धार्मिक गतिविधियों की संख्या बहुत अधिक है। आर्य समाज, सनातन धर्म, ब्रह्म समाज, राधास्वामी सत्संग, गुरूद्वारा समिति, वेदान्त समिति जैसी कई धार्मिक संस्थाएँ अपने–अपने तरीके से धर्म–प्रचार का कार्य कर रही हैं। परिवार का सम्बन्ध जिस भी धार्मिक संस्था से होगा, उसके बच्चों पर उसका प्रभाव अच्छा पड़ेगा।

5. **साहित्य** – बालक के चारित्रिक विकास में साहित्य बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सकता हैं बालक को कहानियाँ बड़ी अच्छी लगती हैं। अच्छी कहानियॉ बालक में उदारता, दया, त्याग, परोपकार तथा देशभक्ति की भावना भर सकती है। सभी देशों में आज बहुत–सी कहानियॉ उपलब्ध हैं जिसे बालक को सदाचारी बनाया जा सकता है जो बालक के चरित्र को ऊँचा उठा सकती है।

6. **इतिहास** – चरित्र–गठन में इतिहस के अध्ययन का बड़ा महत्व हैं। माता जीजाबाई ने शिवाजी को बाल्यावस्था में रामायण और महाभारत की कहानियाँ सुना–सुनाकर वीर बना दिया। अध्यापकों को चाहिए कि वे भारतीय इतिहास के प्रमुख वीर पुरूषों की गाथाएँ स्मरण रखें और समय–समय

पर बालकों को सुनाया करें। व्यक्ति हमेशा अपने से बड़े का अनुकरण करने को तत्पर रहता है। यदि उसके सम्मुख कोई सुयोग्य आदर्श रखा जायेगा तो वह उस आदर्श को प्राप्त करने की चेष्टा अवश्य करेगा।

7. **चलचित्र** – चलचित्र का सम्बन्ध हमारी नेत्रेन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय – दोनों से है, अतएव् इसका प्रभाव बहुत अधिक है। लड़के प्रधान नायक के रहन–सहन, वेशभूषा तथा खान–पान की नकल करते हैं। इसी प्रकार लड़कियां हर बात में प्रधान नायिका के आचरण का अनुकरण करती हैं। इस दृष्टि से यदि चलचित्र के आदर्श गुणों का चित्रण रहेगा तो दर्शक आदर्श की बातें सीखेंगे।

बाल–चित्रों के निर्माण में अभी उपेक्षा बरती जा रही है। सरकार कोइ इस ओर सचेष्ट होना होगा। जहॉ अश्लील तथा यौन–भावनाओं को उभारने वाले चित्रों पर प्रतिबंध लगाया जाये वहॉ अच्छे चित्रों के निर्माण की ओर भी समुचित ध्यान दे, जिन्हें प्रत्येक बालक देख सकें।

8. **दूरदर्शन** – दूरदर्शन भी चलचित्र के समान हमारी नेत्रेन्द्रिय और कर्णेन्द्रिय दोनों को प्रभावित करता है। चलचित्र को देखने के लिए छविगृह में जाना होता है परन्तु दूरदर्शन तो घर में ही देखा जा सकता है, अतः इसका प्रभाव चलचित्र से कहीं अधिक होता है।

दूरदर्शन शिक्षा तथा सामाजिक चेतना के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। खेलों का दृश्य विवरण, संगीत तथा नृत्य के कार्यक्रम, विज्ञान–सम्बन्धी कार्यक्रम, भारतीय स्वतंत्रता का संग्राम जैसे कार्यक्रम इस दिशा में बड़े उपयोगी हैं।

पाठ्गत प्रश्न :

प्र. 11 मूल्य परक विकास से आप क्या समझते हैं ?

प्र. 12 मूल्य परक विकास किस प्रकार प्रभावित हैं ?

इकाई सारांश –

- किसी भी प्राणी के विकास की प्रक्रिया का आरंभ गर्भाधान के बाद ही प्रांरभ हो जाता है। जो कि जीवन पर्यन्त चलता रहता है। यह एक सार्वभौमिक है।
- विकास केवल शारीरिक वृद्धि को ही नहीं बताता वरन् प्राणी में होने वाले सभी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक संवेगात्मक विकास भी सम्मिलित होते हैं। इसके अतिरिक्त भाषायी एवं मूल्य परक विकास भी इसी प्रक्रिया का अंग है।
- विकास की प्रक्रिया में होने वाले परिवर्तन समान नहीं होते हैं भिन्न–भिन्न अवस्थाओं में यह प्रक्रिया भिन्न–भिन्न होती है।
- प्रारंभिक अवस्था में विकास की गति तेज होती है। बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में और भी तेज हो जाती है, किन्तु किशोरावस्था के बाद मन्द हो जाती है।

- विकास को परिवर्तनों की श्रृंखला कहा जाता है। इन परिवर्तनों में कोई न कोई क्रम अवश्य होता है आगे होने वाला परिवर्तन पूर्व परिवर्तन पर आधारित होता है।
- बालक के शारीरिक विकास के अन्तर्गत भार, लम्बाई, सिर, हड्डियों, दांत आदि का विकास होता है और यह विकास वंशानुक्रम, वातावरण, भोजन, दिनचर्या, विश्राम, प्रेम सुरक्षा एवं खेल जैसे तत्वों से प्रभावित होते हैं।
- शारीरिक विकास के अतिरिक्त मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकास की प्रक्रिया भी साथ साथ चलती है। यह सभी बालकों में भिन्न होती है।
- भाषीय एवं मूल्यपरक विकास विभिन्न अवस्थाओं के साथ बालक में दिखाई देते हैं। प्रत्येक अवस्था में विकास दूसरे से भिन्न होता है।

आत्म परीक्षण प्रश्न –

प्र 1 विकास से आप क्या समझते हैं ?

प्र 2 प्राणी के जीवन में विकास का क्या महत्व है ?

प्र 3 विकास अवस्थानुसार होता है टिप्पणी कीजिए।

प्र 4 शारीरिक विकास में वंशानुक्रम एवं वातावरण किस प्रकार प्रभाव डालता है ? लिखिए।

प्र 5 शैश्वावस्था में हड्डियों का विकास किस प्रकार होता है ?

प्र 6 सामाजिक विकास में विद्यालय तथा शिक्षक का क्या योगदान है ?

प्र 7 विभिन्न अवस्थाओं में भाषीय विकास पर प्रभाव डालिए।

प्र 8 नैतिक या मूल्यपरक विकास को कौन–कौन से तत्व प्रभावित करते हैं ?

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, म.प्र., भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन (प्रथम वर्ष)
प्रश्न पत्र – द्वितीय

विषय : बालकों का मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यवहार संबंधी समस्यायें **इकाई – 3**

विषयांश : उपइकाई–1 – प्रस्तावना – उद्देश्य, मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ तथा बाधक तत्व। मानसिक स्वास्थ्य में सुधार हेतु घर, परिवार एवं समाज का योगदान।

उपइकाई–2 – व्यवहार संबंधी समस्यायें, कारण एवं सुधार के उपाय।

प्रिय छात्र,

पूर्व इकाई में आपने विकास एवं उसको प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में बालकों का मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यवहार संबंधी समस्याओं के विषय में अध्ययन करेंगे।

प्रस्तावना

शिक्षा का उद्देश्य बालक का समविकास है, शिक्षा के द्वारा बालक का शारीरिक तथा मानसिक विकास होता है। शिक्षा बालक को अपने वातावरण से समायोजन करना सिखाती है। कई बालक परिवार में, विद्यालय में, समाज में असमान्य सा व्यवहार करते हैं तो वह निश्चत ही मानसिक रूप से अस्वस्थ होंगे। मानसिक स्वास्थ्य का आशय ऐसे स्वास्थ्य से है जो मानसिक रोगों तथा व्याधियों से ग्रस्त है। वास्तव में वही मन और मस्तिष्क स्वस्थ माना जा सकता है जो मानसिक संघर्षों तथा भावना ग्रंथियों से मुक्त हो। स्वस्थ मन की पहचान आन्तरिक तथा बाह्य समायोजन से है। यदि बालक मानसिक दृष्टि से स्वस्थ नहीं होगे तो उनकी रूचि पढ़ाई में नही हो सकती, वह विद्यालय नहीं आना चाहता, जिसके कारण कक्षा की पढ़ाई में उनका ध्यान केन्द्रित नहीं हो सकता और वे शिक्षण का लाभ नहीं उठा सकेंगे। प्रत्येक अध्यापक तथा अभिभावक को मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञान होना आवश्यक है जिससे वह अपने और बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने में योग दे सकें। जो बच्चे मानसिक रोगों के समायोजन दोषों से पीड़ित हों, उनकी सहायता कर सकें।

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्न बिन्दुओं को समझ सकेंगे।

- मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ तथा स्वरूप
- मानसिक स्वास्थ्य में बाधक तत्व
- मानसिक स्वास्थ्य सुधार में परिवार, विद्यालय और समाज का योगदान
- बालकों की व्यवहार संबंधी समस्याओं के प्रकार
- बालकों के व्यवहार संबंधी समस्याओं के कारण तथा समस्या सुधार के उपाय

मानसिक स्वास्थ्य : अर्थ, स्वरूप तथा बाधक तत्व

मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ

स्वास्थ्य का शाब्दिक अर्थ केवल रोग रहित शरीर होना ही नहीं बल्कि पूर्णतयाः शारीरिक, मानसिक, सामाजिक संतुलन भी है। ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है'' यह कहावत बहुत महत्वपूर्ण है। मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है मानव का अपने व्यवहार में संतुलन है। यह संतुलन प्रत्येक अवस्था में बना रहना चाहिये। चिन्ता व संघर्ष रहित व्यक्ति, पूर्णतः समायोजित, आत्मविश्वासी, आत्मनियंत्रित, सवेंगात्मक रूप में स्थिर, सार्थक जीवन एवं उच्च नैतिकता से पूर्ण प्रत्येक परिस्थति में समायोजन कर लेता है। उसमें मानसिक, तनाव, हताशा, आदि को सहन करने की अदम्य शक्ति होती है। जिस बालक का व्यवहार असामान्य है वह अवश्य ही मानसिक रूप से अस्वस्थ होगा। मानसिक रूपसे अस्वस्थ बालक अपने विद्यालय, साथी तथा शिक्षकों के लिये सिरदर्द बन जाता है। बालक के मानसिक रूप से अस्वस्थ होने के अनेक कारण होते है अतः बालक के मानसिक रूप से अस्वस्थ होने के कारणों का पता लगाकर उनका निदान करना अध्यापक का प्रमुख कार्य होता है। बाल विकास तथा शिक्षा के विकास के लिए शिक्षक तथा बालक का मानसिक रूप से स्वस्थ रहना शिक्षण प्रक्रिया का प्रथम कार्य है। डा. सरयूप्रसाद चौबे के शब्दों में ''मानसिक रूप से स्वस्थ न रहने पर बालक का विकास कुण्ठित हो जाता है। मानसिक अस्वस्थता के कारण अनेक बालक समाज पर बोझ दिखाई देते हैं। इसीलिये हमारे जीवन में मानसिक स्वास्थ्य का महत्व शारीरिक स्वास्थ्य से कहीं कम नहीं है।

मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषाएँ

लैडेन के अनुसार – ''मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ हैं – वास्तविक के धरातल पर वातावरण से सामंजस्य स्थापित करना''

राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य संगठन, न्यूयार्क के अनुसार – ''मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है कि बालक अपने कार्य में, शाला में, परिवार में, सहयोगियों तथा समुदाय के साथ ठीक प्रकार से रहे। इसका अभिप्राय प्रत्येक व्यक्ति के उस तरीके से है, जिसके द्वारा वह अपनी इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं, विचारों, भावनाओं और अन्तरात्मा का समन्वय करता है। जिससे वह जीवन की उन मांगों को पूरा कर सके, जिनका की उन मांगों को पूरा कर सके, जिनका उसे सामना करना है।''

क्रो एवं क्रो के अनुसार – ''मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान वह विज्ञान है जिसका सम्बन्ध मानव कल्याण से है और जो मानव सम्बन्धों के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता है।

मानसिक स्वास्थ्य का स्वरूप

हमारा मुख्य ध्येय बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखना है। अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के बगैर बच्चों की योग्यताओं का उचित विकास सम्भव नहीं है। जिन बच्चों में भय, चिन्ता, निराशा तथा अन्य समायोजन दोषों का विकास हो जाता है उनका मन पढ़ने में नहीं लगता और सीखने में उन्नति नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त समायोजन दोष वाले बालक कई प्रकार की समस्याएँ रखते हैं। जिनको समझने और समाधान के लिए प्रत्येक अध्यापक एवं अभिभावक को मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञान आवश्यक होगा।

एक समय था जबकि बच्चे की बुद्धि, रूचि एवं मानसिक स्थिति की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। उस समय शिक्षा पूर्णतया अध्यापक केन्द्रित थी और शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बच्चों को 'थ्री आर' का ज्ञान देना था। किन्तु अब शिक्षा का केन्द्र बालक बन गया है, उसकी मानसिक स्थिति, रूचि एवं अन्य योग्यताओं को आधार मानकर ही पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है।

बालक के मानसिक स्वास्थ्य में बाधक तत्व

बालक के मानसिक स्वास्थ्य को जो तत्व क्षीण कर देते हैं अथवा प्रभाव डालते हैं, वे निम्नलिखित हैं –

1. **वंशानुक्रम तत्व का प्रभाव** – वंशानुक्रम दोषपूर्ण होने के कारण बालक मानसिक दुर्बलता, अस्वस्थता तथा एक विशेष प्रकार की मानसिक अस्वस्थता प्राप्त करता है। अतः वंशानुक्रम प्रभाव का प्रमुख घटक है। इस प्रकार बालक समायोजन करने में कठिनाई का अनुभव करता है।
2. **शारीरिक अस्वस्थता का प्रभाव** – जो बालक शारीरिक रूप से अस्वस्थ रहते हैं। वे सामान्य जीवन में सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते। अतः शारीरिक अस्वस्थता का घटक मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता। शारीरिक स्वास्थ्य अनुकूल होने की दशा में ही मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है।
3. **शारीरिक दोषो का प्रभाव** – बालक के शारीरिक दोष विकलांगता अथवा किसी प्रकार शारीरिक विकृतियां बालक के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। ऐसे बालक हीनता तथा कुण्ठाओं से ग्रसित होते हैं। इस प्रकार वे समाज से समायोजन नहीं कर पाते।
4. **पारिवारिक परिस्थितियों का प्रभाव** – इसमें पारिवारिक विघटन, परिवार की अनुशासनहीनता, निर्धनता, संघर्ष, माता पिता का परस्पर व्यवहार इत्यादि अनेक घटक आते हैं। इन बाधक तत्वों के कारण बालकों का मानसिक स्वास्थ्य ठीकनहीं रहता। कुछ माता पिता अपने बालकों को बहुत लाड़ दुलार देते है। उन्हें अधिक विलासी साधन उपलब्ध कराते हैं। इससे उनकी मनोवृत्ति असामान्य हो जाती है। कुछ नौकरी तथा व्यवसाय में अधिक व्यस्त रहने के कारण भली प्रकार ध्यान नहीं दे पाते अथवा बालकों को छात्रावासों में भर्ती कर देते है। प्यार के अभाव में भी बालकों का मानसिक स्वास्थ्य बिगड़

जाता है। इन तमाम बाधक तत्वो के कारण बालक असामान्य हो जाते है। इस कारण वे परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाते।

5. **विद्यालयी वातावरण का प्रभाव** – विद्यालयी वातावरण – जैसे, भेद भाव, छुआछूत, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अभाव, इच्छा, दमन, पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का अभाव, भय, आतंक आदि तत्व बालक के मानसिक स्वास्थ को खराब करते हैं। अनुशासन की कठोरता, दोषपूर्ण पाठ्यक्रम, नीरस शिक्षण विधियाँ, अमनोवैज्ञानिक प्रणालियाँ, परीक्षा प्रणाली का दोषपूर्ण होना, पुरस्कार वितरण में भेद भाव, कक्षा का दूषित वातावरण, जलवायु एवं प्रकाश व्यवस्था का अभाव। छोटी – छोटी त्रुटियों पर भारी दण्ड की व्यवस्था, शिक्षक का नीरस एवं कठोर व्यवहार एवं पक्षपातपूर्ण रवैया आदि बाधक तत्व बालक के मानसिक स्वास्थ्य को खराब कर देते है एवं उनकी उन्नति में बाधक होते है। बालक की रूचियो चूँकि प्रमुख होती है। अतः रूचि के अनुसार कार्य न देना भी मानसिक स्वास्थ्य की विकृति का प्रतीक है।

6. **मनोरंजन तथा सांस्कृतिक क्रिया–कलापों के अभाव का प्रभाव** – बालक के लिये मनोरंजन जिज्ञासा युक्त तथा पसंद का होना चाहिए। मनोरजन के साधन उपलब्ध नही कराये जाते तो मानसिक रूप से अस्वस्थता का अनुभव करते है, वे निराश तथा नीरस हो जाते है। उनका वास्तविक सन्तुलन बिगड़ जाता है। अतः यह बिन्दु भी विचारणीय है।

पाठ्गत प्रश्न

प्र.1 मानसिक स्वास्थय का अर्थ है –

अ. वास्तविकता के धरातल पर वातावरण में सामंजस्य स्थापित करना।

ब. स्वस्थ्य मस्तिष्क स. स्मृति का विकास द. वुद्धि का विकास

प्र. 2 ''मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है – वास्तविकता के धरातल पर वातावरण से सामंजस्य स्थापित करना''– उक्त परिभाषा किस विद्धान की है।

अ. ड्रेवर की ब. फ्रायड़ की

स. क्लेन की द. मेंस्लो की

प्र. 3. कौन सा अभिकरण मानसिक स्वास्थ्य विकास में शक्तिशाली है –

अ. परिवार ब. सिनेमा

स. पुस्तकालय द. सुधारालय

प्र. 4 मानसिक स्वास्थय से आप क्या समझते है ?

(अ) घर, विद्यालय, समाज का मानसिक स्वास्थ्य सुधार में योगदान

घर का सुधार में योगदान – घर में सुधार के सुझाव निम्नलिखित है –

1. घर का वातावरण पूर्णतया, शान्तिमय होना चाहिए। बात बात पर माता पिता को लड़ना–झगड़ना नहीं चाहिए।

2. प्रेम, स्नेह, सहयोग, सहानुभूति, प्रेरणा तथा बच्चों की स्वाभाविक आकांक्षाओं की पूर्ति कर परिवार उनके स्वस्थ्य मानसिक विकास की सभी परिस्थितियां उपलब्ध करा सकता है।
3. परिवार स्वतंत्रता, सीमित नियंत्रण, प्रोत्साहन, प्रशंसा तथा स्वाभाविक अभिव्यक्ति के वातावरण का सृजन कर बालकों की मूलप्रवृत्तियों का उन्नयन तथा परिमार्जन कर सकता है।
4. बालकों को उनकी रूचि के अनुसार भोजन, वस्त्र, खेलकूद, मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराकर मानसिक स्वास्थ्य सुधार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
5. माता पिता को लालन पालन करने का प्रशिक्षा होना चाहिये।
6. परिवार के समस्त सदस्यों का आचरण नैतिकतापूर्ण होना चाहिये।
7. परिवार में अच्छी पुस्तके पढने की प्रेरित करना चाहिये।
8. निर्धन परिवार के बालकों को सरकार द्वारा पर्याप्त आर्थिक सहायता प्रदान की जाए।
9. बालकों की विभिन्न शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाय।

(ब) विद्यालय का सुधार में योगदान –

1. विद्यालय का वातावरण स्वास्थ्यप्रद होना चाहिये।
2. विद्यालय में बालकों को विभिन्न सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने का अवसर प्रदान मिलने चाहिये, जिससे उनमें समाजिकता का विकास होता है।
3. यदि कक्षा अध्यापक का व्यवहार कठोर होता है तो बच्चों का मानसिक स्वास्थ बिगड़ जाता है। अध्यापक का व्यवहार नियंत्रित होना चाहिये। विद्यार्थी को हमेंशा प्रोत्साहन देना चाहिये।
4. अध्यापक का व्यक्तित्व सवेगात्मक रूप से स्थिर होना चाहिये, उसे विद्यार्थियों में भेदभाव नहीं करना चाहिये। शिक्षक को निराशावादी नहीं होना चाहिये।
5. कई बार अनूपयुक्त पाठ्यक्रम बालक के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर देते हैं। विद्यार्थी को उसकी रूचि के अनुसार पाठ्यक्रम मिलने पर, वह खुश रहते हैं और उनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहता है।
6. वाद विवाद, कविता प्रतियोगिता तथाअन्य साहित्यिक गतिविधियों में भाग लेकर बालक अपना मानसिक विकास करता है।
7. बालक को अपने विचार अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता प्रदान करनी चाहिए।
8. जो शिक्षण विधियां बालको की रूचियां, स्थायी भावों, चरित्र, बुद्धि, कल्पना स्मृति आदि मानसिक शक्तियों तथा शारीरिक शक्तियों को विकसित करती है, वे बाल–केन्द्रित शिक्षण विधियां कहलाती है। जो अधिक बाल केन्द्रित होगी, वह उतनी ही बालकों के मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगी होंगी।

9. बालक की क्षमताओं तथा योग्यताओं को ध्यान में रखते हुए उसे समुचित निर्देशन प्राप्त करना चाहिए। यह निर्देशन शैक्षिक तथा व्यावसायिक दोनों दृष्टियों से होगा। यदि बालक ऐसे विषयों का अध्ययन करेगा जो उसकी रूचि और क्षमता के अनुरूप हैं तो उसका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा रहेगा।

(स) समाज का मानसिक स्वास्थ्य सुधार में योगदान –

समूह एक प्रकार के समाज की इकाई होती है। बालक किसी न किसी समूह के सदस्य होते हैं और उसके प्रति निष्ठावान होते है। बालकों के खेलने कूदने की विभिन्न क्रियायें समूह में ही होती है। ऐसी दशा में बालक का समूह द्वारा प्रभावित होना स्वाभाविक हो जाता है समूह बालक के विकास को निम्नलिखित ढंग से सुधार सकता है –

1. समूह बालक में अच्छी सामजिकता की भावना का विकास करता है।
2. समूह में रहकर बालक परस्पर सहयोग और सहकारिता की भावना का विकास करता है।
3. समूह बालकों को संगठन व नेतृत्व का प्रशिक्षण देता है।
4. यदि समूह के अधिकांश सदस्य दुराचारी और भ्रष्ट है तो अच्छे बालक भी भ्रष्ट और दुराचारी हो जाते है।
5. समूह में न रहने पर बालक एकान्तीय और असामाजिक हो जाता है।

व्यवहार संबंधी समस्याओं के प्रकार

शिशु जब जन्म लेता है तब वह पूर्णतया दूसरों पर निर्भर रहता है। शैशवावस्था में वह मां के अधीन होता है। इसका प्रथम व्यवहार मां से प्रारंभ होता है। भूख लगने पर रोना, मां के संपर्क का यह प्रथम व्यवहार है। बड़ा होने पर वह परिवार तथा समाज के संपर्क में आता है। धीरे–धीरे उसमें शारीरिक, मानसिक तथा सवेंगात्मक आवश्यकतायें विकसित होने लगती है। उसकी अन्तः क्रिया तथा वातावरण के प्रभाव के फलस्वरूप उसका व्यवहार बनता है। यदि समाज तथा परिवार की परिस्थितियां सामान्य एवं आदर्शपूर्ण होती है तो बालक का व्यवहार सामान्य बना रहता है, लेकिन यदि समाज या परिवार की समाज की परिस्थितियाँ उत्तेजनात्मक एवं असंगत होती है तो फिर बालकों का व्यवहार भी असंगत एवं समाज के लिए समस्यापूर्ण हो जाता है। इसी कारण वह परिस्थितियों से समायोजन नहीं कर पाता है तथा समायोजन की क्षमता के अभाव में बालक की व्यवहार सम्बन्धी विभिन्न समस्याऐं उठ खड़ी होती है।

बालकों की व्यवहार संबंधी समस्याओं के प्रकार – बालकों की व्यवहार सम्बन्धी विभिन्न समस्याऐं शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक तथा सामाजिक समायोजन से सम्बन्धित होती है। यहां उनके व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं को निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं –

1. **शारीरिक अवयवों पर आधारित समस्याएँ –**शारीरिक अवयवों पर आधारित समस्याएँ निम्नलिखित हैं –

1. अंग मटकाना	2. अंगूठा चूसना	3. मुंह से नाखून काटना
4. कन्धे मटकाना	5. हकलाना	6. शारीरिक

2. **मानसिक समस्याओं पर आधारित समस्याएं –** मानसिक समस्याओं पर आधारित समस्याएँ निम्नलिखित हैं –

1. पराश्रित बने रहना 2. निर्णय लेने की अक्षमता की स्थिति 3. व्यवहार में नीरसता होना 4. अदूरदर्शिता 5. अविवेकशीलता 6. कठिनाइयों में विचलित होना 7. मानसिक विकास में अवरोधन उत्पन्न होना 8. विषय में अरूचि होना 9. घमण्ड करना 10. कक्षा से भाग जाना आदि।

3. **सवेंगात्मक समस्याओं पर आधारित –**संवेगात्मक समस्याओं पर आधारित समस्याएँ निम्न लिखित है –

1. घबराहट का अनुभव करना 2. हठ करना 3. काल्पनिक अस्वस्थता
4. बहाना करना 5. दिवास्वप्न देखना 6. नकारात्मक भाव व्यक्त करना
7. शर्मीलापन होना 8. क्रोध करना 9. चिड़चिड़ा एवं झगडालू होना आदि।

4. **सामाजिक समस्याओं पर आधारित –** समाजिक समस्याओं पर आधारित समस्याऐं निम्नलिखित हैं –

1. झगड़ा करना 2. हठ व अवज्ञा करना 3. चोरी करना 4. संगी साथियों के साथ कुसमायोजन करना।

व्यवहार संबंधी समस्याओं के कारण – बालकों में विभिन्न प्रकार के समस्यात्मक व्यवहार पाये जाते हैं जिनके कारण अलग अलग होते है। लेकिन इनके मूल कारण प्रमुख है जो हमारे परिवार व समाज द्वारा उत्पन्न होते हैं और समायोजन में बाधक होते हैं। इन्हें हम सामान्य कारण कह सकते हैं।

1. **पारिवारिक वातावरण –** प्रत्येक बालक को जन्म के बाद सर्वप्रथम पारिवारिक वातावरण ही प्राप्त होता है। पारिवारिक वातावरण उसके चतुर्मुखी विकास का आधार होता है। परिवार और माता पिता यदि चाहे तो बच्चे में अधिकारिक गुणों की भरमार करसकते हैं और यदि उनकी उचित देखभाल नहीं करते है तो बच्चे का भविष्य बिगाड़ देते हैं। परिवार बालक की प्रथम पाठशाला और मातायें आदर्श अध्यापिकाये होती हैं।

परिवार का वातावरण विभिन्न रूपो में बालको के विकास को प्रभावित करता है :–

1. जिन परिवारों का आन्तरिक वातावरण कलहपूर्ण होता है। माता पिता में परस्पर लडाई झगडा होता है वहां बच्चों का स्वस्थ विकास नहीं होता है।
2. यदि माता पिता नौकरी या अन्य किसी कारणों से अधिक समय तक घर से बाहर रहते हैं तो बालक स्वयं को असुरक्षित महसूस करते हैं।
3. जब माता पिता अपनी सभी सन्तानों को समान लाड़ प्यार और सुविधायें नहीं देते हैं तो बालकों के व्यवहार में समस्यायें पैदा हो जाती है।
4. माता या पिता का सौतेला होने पर भी एक पक्ष से उपेक्षापूर्ण व्यवहार मिलने पर भावना ग्रंथियां बन जाती हैं और व्यवहारात्मक समस्यायें उत्पन्न हो जाती है।
5. परिवार के आर्थिक रूप से सम्पन्न होने पर बालक अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये झूठ बोलते हैं चोरी करते हैं तथा अन्य गलत तरीकों को अपनाते हैं।

6. माता पिता के गलत आचरण होना – यदि माता पिता गलत आदतों के शिकार हैं, वे झूठ बोलते हैं, चोरी करते हैं, नशीलें पदार्थो का सेवन करते हैं तो बालकों पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है।

7. माता–पिता का अत्यधिक कठोर अनुशासन या ढीला अनुशासन दोनों ही बालकों को उद्दण्ड तथा समस्यात्मक बना देते हैं।

8. रहने का अनुपयुक्त स्थान बालकों को समस्यात्मक बना देते हैं। बालकों में क्रियाशीलता अधिक होती है। वे इच्छानुसार स्वतन्त्र रूप से कार्य करना चाहते हैं। घर पर स्थान की कमी होने पर जब उन्हें विभिन्न क्रियाओं को करने के लिये रोका टोका जाता है तो वे बैचेनी का अनुभव करते हैं। क्योंकि घर में उन्हें अपनी शक्तियों के प्रयोग करने का अवसर नहीं मिल पाता है।

2. **सामाजिक वातावरण –** जिस समाज का वातावरण दूषित होता है, समाज में अनैतिकता और अनाचार की बहुलता होती है वहाँ समस्यात्मक बालकों की अधिकता होती है। बालक अपने आस पास के वातावरण में जैसा व्यवहार दूसरों को करते देखते हैं वैसा ही वे स्वयं करने लगते हैं।

इसके अतिरिक्त जिस समाज में बेकारी, भ्रष्टाचार और जातीय भेदभावों की प्रमुखता होती है वहां भी असमानतापूर्ण वातावरण के कारण बालकों के व्यवहार समस्यात्मक हो जाते है।

3. **विद्यालय का वातावरण –** विद्यालय का अनुपयुक्त वातावरण भी बालकों को समस्यात्मक बनाता हैं जैसे –

1. अनुपयुक्त पाठ्यक्रम – जब पाठ्यक्रम बालकों के बौद्धिक स्तरके अनुकूल नहीं होता है, पाठ्यक्रम में बालकों की रूचि के अनुसार सहगामी क्रियायें नहीं होती है तो बालक का मन पढ़ाई में नहीं लगता है।

2. दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति – जब शिक्षक का पढ़ाया हुआ बालकों की समझ में नही आता है तो दोषपूर्ण शिक्षण विधि के कारण बालक पढने में जी चुराते है।

3. दोषपूर्ण परीक्षा पद्धति – परीक्षा पद्धति उपयुक्त न होने पर जब बालकों को अपनी परीक्षा के समुचित परिणाम नहीं मिलते हैं तो वे समस्यात्मक बन जाते हैं।

4. कठोर अनुशासन – जब विद्यालय का अनुशासन अत्यधिक कठोर होता है, बालकों को थोड़ी ही त्रुटि के लिये कठोर दण्ड दिया जाता है तो बालक अनुशासन विहीन हो जाता है।

5. गलत सहपाठी – यदि बालक के सहपाठी झूठ बोलने वाले, स्कूल से भागने वाले, जुआ खेलने वाले, सिगरेट व शराब पीने वाले होते हैं तो बालक भी वैसा बन जाता है।

4. शारीरिक अयोग्यतायें– जिन बालकों में कोई शारीरिक अयोग्यता होती है जैसे – अधिक लम्बा, मोटा, नाटा, बौना, लंगडा, लूला, अन्धा, बहरा आदि तो इन दोषों के कारण उपहास होने पर, समूह में सम्मिलित न होने पर बालकों में संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाता है जिससे उनका व्यवहार समस्यात्मक हो जाता है।

5. वुद्धि – बुद्धि की कमी और अधिकता दोनों ही समस्यात्मक बालकों को जन्म देती हैं। दोनों ही स्थितियों में बालक सामान्य बालकों के साथ समायोजित नहीं हो पाते हैं और उनके व्यवहार समस्यात्मक बन जाते है।

6. गन्दा साहित्य व फिल्में – जब बालक गन्दा साहित्य पढ़ते हैं और अश्लील फिल्में देखते हैं तो उनमें बहुत ही निम्न स्तरीय व्यवहारों की उत्पत्ति होती है। ये व्यवहार बालक को अनैतिक व समाज विरोधी बना देते हैं तथा उसके व्यक्तित्व को नष्ट कर देते है।

समस्यात्मक बालको का उपचार

समस्यात्मक बालकों को सुधारने के लिये निम्नलिखित प्रयास किये जा सकते हैं –

1. प्रेम व सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार – देखा गया है कि शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर बालक समस्यात्मक बन जाते हैं अतः उन्हें सुधारने के लिये आवश्यक है कि उनके साथ प्रेम व सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार किया जायें।
2. आलोचना न की जाये – इन बालकों को न तो कठोर दण्ड देना चाहिये न ही अधिक डांटना फटकारना चाहिये। कठोर दण्ड और डांट फटकार से ये और अधिक उद्दण्ड हो जाते है।
3. दबी हुयी मूल प्रवृत्तियों का शोधन किया जाये – कभी कभी जब इच्छाओं का दमन हो जाता है तो भी बालकों में समस्यातमक व्यवहार उत्पन्न होते हैं अतः खेल, मनोरंजन, भ्रमण तथा मनोचिकित्सक द्वारा मूल प्रवृत्तियों का शोधन किया जाये।
4. आवश्यकतानुसार ही पुरस्कार और दण्ड का प्रयोग किया जाये – बालक के कार्यो के लिये उसे हतोत्साहित न किया जाये अपितु समय समय पर पुरस्कार देकर उनके आत्मविश्वास में वृद्धि की जाये।
5. स्वस्थ मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराये जायें – पढ़ाई के साथ मनोरंजन भी आवश्यक है। माता पिता को चाहिये कि वे बालकों के स्वस्थ मनोरंजन में अपना योगदान दें। उन्हें समय समय पर घुमाने या पिकनिक मनाने ले जायें। घर के अन्दर भी उनके साथ उनकी रूचिके खेल खेलें, अच्छा साहित्य व पत्र पत्रिकायें दें जिससे उनका मनोरंजन हो और खाली समय का सदुयोग हो।
6. धर्म व नैतिकता की शिक्षा दी जाये – प्रत्येक धर्म के अपने कुछ सिद्धान्त व आदेश होते हैं जो बच्चों के अच्छे चरित्र निर्माण में सहायक होते हैं। माता पिता तथा शिक्षकों को चाहिये कि वे बालकों को धार्मिक व नैतिक शिक्षा दें जिससे उनमें उच्च आदर्शों का निर्माण हों।
7. सही मार्गदर्शन – माता पिता तथा शिक्षकों द्वारा बालक के प्रश्नों का तथा जिज्ञासाओं का समाधान किया जाये।
8. सामाजिक व रचनात्मक कार्यो में लगाया जाये – ऐसे बालकों के सुधार के लिये आवश्यक है कि उन्हें व्यस्त रखा जाये उन्हें सामाजिक दायित्वों तथा रचनात्मक कार्यों में लगाया जाये।

9. शारीरिक विकारों को कम करने के लिये सुविधायें दी जाये – शारीरिक रूप से अक्षम बालक हीनता का शिकार होकर समस्यात्मक बन जाते हैं। ऐसे बालको के सुधार के लिये आवश्यक है कि इनके शारीरिक विकारों को कम करने के लिये आवश्यक सुविधायें प्रदान की जाये।

10. विद्यालयों का पाठ्यक्रम बालक के अनुरूप हो – विद्यालय का वातावरण तथा पाठ्यक्रम बालक की बुद्धि, योग्यता तथा रूचि के अनुकूल होना चाहिये जिससे पढ़ाई में उनका मन लगे। वे विद्यालय जाने से जी न चुरायें।

11. शिक्षक व अभिभावक समय समय पर सम्पर्क करें – समस्यात्मक बालकों को सुधारने के लिये जरूरी हैं कि माता – पिता तथा शिक्षक सप्ताह में एक बार मिलें और एक दूसरे से बालक के व्यवहार के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त करे और तदनुसार बालक को सुधारने का प्रयास करें।

12. बालक के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करें – यदि माता पिता या शिक्षक बच्चे में कोई समस्यात्मक व्यवहार देखें तो तुरन्त ही कोई निष्कर्ष निकाल कर सुधार का प्रयास न करें अपितु कुछ समय तक बालक के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करें तब सुधारात्मक विधि प्रयोग में लायें।

बालकों के कुछ प्रमुख व्यवहार संबंधी समस्यायें, कारण तथा उपाय

1. अंगूठा चूसना

शैशवास्था में प्रायः सभी शिशु अंगूठा चूसते हैं जो एक समान्य व मूल प्रवृत्ति हैं परन्तु 3–4 साल के बाद यह एक समस्या बन जाती है। यह एक मनोशारीरिक समस्यात्मक व्यवहार है। जब बच्चे को मां स्तनपान नहीं कराती या माता पिता से स्नेह नही मिलता या उन्हें असुरक्षा की भावना महसूस होती है, आदि कारणों से बच्चा अंगूठा चूसने लगते है।

उपाय : 1. आदत को छुड़ाने के लिये उसे मारना, डराना, तथा धमकाना नही चाहिए।

2. शिशु को दूध पिलाने के समय में नियमितता रखनी चाहिए।

3. बच्चों को पर्याप्त स्नेह देना चाहिए।

4. शिशु को लगभग 1 वर्ष तक स्तनपान करायें।

2. नाखून काटना

मानसिक अन्तर्द्वंद की स्थिति में सही निर्णय न ले पाने पर, हीनभावना से ग्रसित होने पर, माता पिता द्वारा बच्चों के साथ उपेक्षा और तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करनेपर, फ्रायड़ के अनुसार ''यौन इच्छाओं की सन्तुष्टि न होने पर'' बालक मुंह से नाखून काटने लगता है।

उपाय 1. बच्चें में आत्मविश्वास जागृत करें।

2. माता – पिता या परिवार के अन्य सदस्य द्वारा बच्चे का तिरस्कार न किया जाये।

3. डांट फटकार का प्रयोग न करें।

4. आक्रमकता व तनाव कारणों को जानकर उसे दूर करने की कोशिश करें।

3. बिस्तर गीला करना

दो/तीन वर्ष के बाद भी बिस्तर में मूत्र त्याग कर देना एक समस्या बन जाता है।

बालकों की शारीरिक अक्षमता, दीर्घकालीन बीमारी, अत्यधिक ठंड होने पर, नाड़ी संस्थान के पूर्ण परिपक्व न होने पर, सोते समय भयानक स्वप्न देखने पर, पाचन क्रिया दोषपूर्ण होने पर, बच्चे को अत्यधिक मारने या डांटने पर आदि कारणों से कई बार बच्चा निरन्तर गीला करने लगता है।

उपाय : 1. सोने से पूर्व बालक को मूत्र त्याग करा दें।

2. बच्चे के साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार न करें।

3. बच्चे को रात्रि को हल्का सुपाच्य भोजन दें।

4. बच्चे के कमरे में हल्का प्रकाश रखें, ताकि बच्चा भयभीत न हो।

5. बच्चे को भूतप्रेत आदि की डरावनी कहानियां नही सुनाएं।

4. बालक का झूठ बोलना

गलतियो को छुपाने के लिए, मनोरंजन के लिए, दण्ड से बचने व स्वयं सुरक्षा के लिए, आत्म प्रदर्शन के लिए, दूसरो का विश्वास पात्र बनने के लिए, स्वयं की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए, स्नेह पाने, सहानभूति पाने तथा ध्यान आकर्षित करने के लिए।

उपाय 1. झूठ बोलने पर बालक को कठोर दण्ड न दें।

2. अच्छा साहित्य पढ़ने को प्रोत्साहित करें।

3. सत्य बोलने पर बालक की प्रशंसा करें।

4. माता–पिता स्वयं कभी झूठ न बोलें।

5. बालक में आत्म निर्भरता का विकास करें।

5. हकलाना

जब बालक अधिक आयु होने पर भी स्पष्ट नही बोल पाता है, अटक–अटक कर बोलता है, तो उसे हकलाना कहते है।

असुरक्षा तथा हीन भावना से ग्रसित होने पर, स्नायु संस्थान में विकृति होने पर, मंदबुद्धिता या मानसिक विकृति होने पर, अत्यधिक उत्तेजना व संवेगात्मक तनाव में होने पर, अन्तः स्त्रावी ग्रंथियों की क्रियाशीलता कम या अधिक होने पर, बच्चा हकलाने लगता है।

उपाय 1. हकलाने पर बालक का उपहास न किया जाये।

2. बालक में आत्मविश्वास व सुरक्षा की भावना पैदा की जाये।

3. बालक को सही बोलने का अभ्यास कराया जाये।

4. मानसिक विकृति होने पर मनोचिकित्सक को दिखाये।

6. चोरी करना

बड़े होने पर दूसरो की चीजो को उठा लेते हैं उसे चोरी करना कहते है, अपनी मनपसंद वस्तु प्राप्त करने के लिए, परिवार की निम्न आर्थिक स्थिति, गलत संगत के कारण, दूसरो पर प्रभुत्व जमाने की इच्छा से, परिवारिक वातावरण दूषित होने पर, बालक को चोरी करने की आदत लग सकती है।

उपाय

1. चोरी करने पर सबके सामने उसका अपमान नही करना चाहिए।
2. महान व्यक्तियो के प्रसंग व कहानियां सुनाकर।
3. बच्चों को मारना–पीटना नही चाहिए।
4. माता–पिता अपने उपलब्ध साधनो से बच्चे की आवश्यकताओ को पूरा करे।
5. परिवार द्वारा नैतिकता का पाठ बच्चो को पढ़ाना चाहिए।

7. आक्रामक व्यवहार :–

अन्य बालको या वयस्को को मारना–पीटना, धक्के देना, ठोकरे मारना, दांतों से काटना, गालियां देना, चिढ़ाना, तंग करना, खिलौनो को छीनना आदि आक्रामक व्यवहार के अंतर्गत आते है। असुरक्षा के भाव से, गलत संगत के कारण, परिवारिक वातावरण दूषित होने पर, दूसरो पर प्रभुत्व जमाने के लिये, अपनी संपत्ति की रक्षा के लिये, बालक कभी–कभी आक्रामक हो जाता है।

उपाय

1. बच्चों को मारना–पीटना नही चाहिये।
2. घर का वातावरण ठीक करे।
3. बच्चो के अच्छे काम की प्रशंसा करे।

8. क्रोध करना :–

बालको में क्रोध उनकी इच्छा पूर्ति न होने पर या उनके कार्य में बाधा उत्पन्न होने पर जाग्रत होता है। उनके आत्मसम्मान को चोट लगने पर भी क्रोध आता है। क्रोध कभी चिढ़ या खीझ के रूप में होता है तो कभी तीव्र रोष के रूप में, जिसका परिणाम तोड़फोड़ भी हो सकता है।

उपाय

1. क्रोध पर नियंत्रण पाने का सर्वश्रेष्ट तरीका यह है कि क्रोध को प्रेरित करने वाले व्यवहार से बचा जाए।
2. अनावश्यक विनोद चुटकी, व्यंग तथा डाँट–डपट से बचाना चाहिए।
3. बालक के अध्ययन में कमजोरी पर उपहास नही करना चाहिए।
4. क्रोधित बालक के प्रति क्रोधित न होकर शान्त और तटस्थ भाव से उसके क्रोध के कारण जानकर उसे दूर करने का उपाय करना चाहिए।

9. कक्षा से भागने संबंधी व्यवहार :–

बालक के द्वारा गृहकार्य न करने के कारण सम्बंधित विषय की कक्षा से भाग जाना। किसी–किसी शिक्षक का व्यवहार बहुत ही कठोर होता है, अतः बालक डर के कारण भाग जाता है। खेलकूद,

घूमने–फिरने एवं सिनेमा आदि देखने के लिए भी बालक कक्षा से भाग जाता है। विद्यालयो में खेलकूद तथा मनोरंजन की पर्याप्त व्यवस्था न होने के कारण भी बालक भाग जाते है।

उपाय

1. इस दोष को दूर करने के लिए अभिभावको एवं शिक्षकों को मिलकर प्रयास करने चाहिए।
2. बालको की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक तरीकों से उपचार करने चाहिए।
3. विद्यालय का वातावरण आकर्षक बनाया जाना चाहिए।
4. शिक्षको को पढ़ाने के लिए सरस एवं प्रभावी शिक्षण विधियो का प्रयोग करना चाहिए।
5. विद्यालय में खेलकूद, वाचनालय, सांस्कृतिक एवं मनोरंजनात्मक व्यवस्था भी की जानी चाहिए।

10. **गृहकार्य न करना :–** कई बालक गृह–कार्य करके नही लाते है। इससे वे पढ़ाई में पिछड़ जाते है। दिया हुआ गृहकार्य स्तर से ऊँचा, अधिक मात्रा में होने या नही समझ पाने पर बालक उसे कर नही पाता है, घर में एकान्त स्थान के अभाव में भी गृहकार्य करने में बाधा पड़ती है। विषय में अरूचि के कारण भी बालक गृहकार्य नही करता।

उपाय

1. शिक्षक, को छात्रो को उनके मानसिक स्तर के अनुरूप बनाये।
2. गृहकार्य की मात्रा यथोचित हो।
3. घर में पढ़ने लिखने का माहौल बनाया जायें।

11. **यौन विकृति :–** यौन विकृति में हस्तमेंथुन तथा समजाति मेंथुन आते है। स्वयं के यौनअंगों को उत्तेजित कर आनन्द का अनुभव के लिये हस्तमेंथुन किया जाता है। कभी–कभी यह एक दूसरे की इन्द्रिय को उत्तेजना देने के लिए भी किया जाता है। यह प्रवृति लड़कियो की बजाय, लड़को में अधिक होती है।

उपाय

1. किशोर बालको को यौन विषयक उचित प्रशिक्षण देना चाहिये।
2. बालको को व्यस्त रखना चाहिए तथा उन्हे एकान्त में अकेले नही छोड़ने चाहिये।

पाठगत प्रश्न

5. अंगूढा चूसना समस्यात्मक व्यवहार नही है। (सही/गलत)
6. कठोर अनुशासन समस्यात्मक व्यवहारो के समाधान का उत्तम तरीका है। (सही/गलत)
7. समस्यात्मक बालक किसी वर्ग विशेष के नही है। (सही/गलत)
8. समस्यात्मक व्यवहारो का निदान संभव नही है। (सही/गलत)
9. बालको के समस्यात्मक व्यवहार के लिए उत्तरदायी है।
   अ. परिवार ब. समाज स. विद्यालय द. उपर्युक्त सभी
10. अंगूठा चूसना कौन सा असमान्य व्यवहार है।
    अ. मनोशारीरिक ब. समाजिक स. सवेगात्मक द. अनुशासनविहीन

इकाई सारांश

- अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के द्वारा व्यक्ति अपनी क्षमताओं के अनुसार संतुष्ट रूप में जीवन की वास्तविकता को स्वीकार करते हुए परस्पर तथा समाज के अन्य सदस्यो के साथ समायोजन बनाये रख सकते हैं।
- बालक के स्वास्थ्य पर घर का प्रभाव पड़ता है। परिवार का विघटन, माता पिता का असंगत व्यवहार, निर्धनता, उच्च आदर्श, घर का सख्त अनुशासन, परिवार में तनाव आदि घरेलु कारण है, जो बालक के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।
- विद्यालय का तनावपूर्ण वातावरण, अध्यापक का तानाशाह व्यवहार, परीक्षा प्रणाली, अनुचित पाठयक्रम आदि बालक के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं।
- संवेगात्मक सुरक्षा, अच्छे शरीर, मित्रों का होना, आत्मअभिव्यक्ति, आत्मविश्वास, साहसपूर्ण कार्य, बालकेन्द्रित शिक्षण विधियां, बालकेन्द्रित पाठयक्रम, बालकों को योग्यताओं तथा क्षमताओं के अनुसार शैक्षिक तथा व्यावसायिक निदेशन, अध्यापक का निष्पक्ष व्यवहार बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत करते हैं।
- भय, अँगूठा चूसना आदि शैशवकाल की समस्यायें है।
- कपड़ों में मलमूत्र करना, क्रोध करना, चोरी करना, झूठ बोलना आदि बाल्यावस्था की व्यवहारगत समस्यायें हैं।
- आवारा घूमना, मुँह से नाखून काटना, हकलाना, यौन विकृति, धूम्रपान आदि किशोरवस्था की समस्यायें हैं।
- समस्यात्मक व्यवहारों का सुधार संभव है। प्रेमसहानुभूति पूर्ण व्यवहार, आवश्यतानुसार दण्ड पुरस्कार, धर्म नैतिकता की शिक्षा, प्रोत्साहन, स्वस्थ मनोरंजन आदि के द्वारा बच्चो के व्यवहार में परिवर्तन कर सकते है।

आत्म परीक्षण प्रश्न –

प्र.1 बालकों के मानसिक स्वास्थ्य से आप क्या समझाते हैं ? इसके स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।

प्र.2 बालकों के मानसिक विकास में कौन–2 बाधक तत्व हैं ?

प्र.3 परिवार/अभिभावक का बालक के मानसिक स्वास्थ्य सुधार में क्या योगदान है ?

प्र.4 विद्यालय को बालक के मानसिक स्वास्थ्य निर्माण के लिए क्या करना चाहिए ?

प्र.5 बालक चोरी क्यों करता है तथा झूठ क्यों बोलता है ?

प्र.6 बाल व्यवहार संबंधी समस्यायें कौन–2 सी है ?

प्र.7 किन्ही दो समस्याओं के कारण व निदान बताइये ?

1. कक्षा से भागना 2. हकलाना 3. गृहकार्य न करना 4. अंगूठा चूसना

प्र.8 बालको के असमान्य व्यवहार की उत्पत्ति के सामान्य कारण बताइयें।

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, म.प्र., भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन (प्रथम वर्ष)
प्रश्न पत्र – द्वितीय

विषय : पोषण एवं आहार **इकाई – 4**

विषयांश : उपइकाई–1 – प्रस्तावना – उद्देश्य, पोषण का अर्थ एवं महत्व, विभिन्न आयु वर्ग व कार्य के अनुरूप संतुलित आहार, विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता एवं कार्य ।

उपइकाई–2 – कुपोषण जनित बीमारियां और उनको दूर करने के उपाय, भोजन पकाने की विधियां एवं उनका पोषक तत्वों पर पड़ने वाला प्रभाव।

प्रिय छात्र,

पिछली इकाई में आपने बालकों के मानसिक स्वास्थ्य एवं व्यवहार सम्बन्धी समस्याओं के विषय में अध्ययन किया। इस इकाई में आप संतुलित आहार विभिन्न पोषक तत्वों, कुपोषण, भोजन पकाने की विभिन्न विधियों की जानकारी प्राप्त करेंगे।

प्रस्तावना

भोजन जीवित रहने के लिये परम आवश्यक है, स्वस्थ तथा निरोगी रहने के लिये हमें संतुलित आहार लेना चाहिये। संतुलित भोजन वह भोजन है जिसमें कार्बोहाइड्रेट, वसा, प्रोटीन, खनिज लवण, विटामिन और जल आदि उपयुक्त अनुपात में हो तथा जिनसे शारीरिक व मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो।

प्रत्येक व्यक्ति के लिये संतुलित आहार अलग अलग होता है, क्योंकि व्यक्ति विशेष के शरीर में इसकी आवश्यकता अलग अलग होती है। संतुलित आहार नही लेने पर बालक का शरीरिक तथा मानसिक विकास रूक जाता है, जिससे शरीर में इनकी कमी आ जाती है। इन कमियों को दूर करने के लिये हमें अपने भोजन में सभी पोषक तत्व लेने चाहिये।

उद्देश्य

- इस इकाई के पश्चात आप निम्न बिन्दुओं के विषय में समझ सकेंगे –
- पोषण का अर्थ तथा महत्व
- संतुलित आहार व कुपोषण
- विभिन्न आयु वर्ग तथा कार्यो के लिए संतुलित आहार
- वसा, प्रोटीन, विटामिन, खनिज लवण, कार्बोहाइड्रेट तथा जल की उपयोगिता व कार्य

- कुपोषण जनित बीमारियां तथा उनको दूर करने के उपाय
- भोजन को पकाने की विधियां
- पकाने पर पोषक तत्वों पर प्रभाव

पोषण का अर्थ व महत्व

मनुष्य की तीन बुनियादी आवश्यक आवश्यकतायें मानी गई है भोजन, वस्त्र और मकान किन्तु इन तीनों में से जीवित रहने के लिए भोजन की परम आवश्यकता होती है। प्रत्येक प्राणी सर्वप्रथम अपनी इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु प्रयास करता है। स्वस्थ्य व सशक्त शरीर का निर्माण उचित पोषण पर निर्भर करता है न कि आहार पर। पोषण व आहार में अंतर है, आहार ठोस व तरल पदार्थों का समग्र रूप है है जिसे हम भूख शान्त करने के लिए उपयोग में लेते हैं, परन्तु पोषण वह प्रक्रिया है जिससे भोजन शरीर को पोषक तत्व देता है या इस आहार को शरीर में आत्मसात होकर शक्ति का स्त्रोत बनना पोषण कहलाता है। डी. फी. टरनर के शब्दों में ''पोषण वह सम्मिलित प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक सजीव प्राणी अपने शरीर के रखरखाव कार्य करने व शरीर की वृद्धि के लिए आवश्यक पदार्थो को ग्रहण कर उनका प्रयोग करता है।'' साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि पोषण का अर्थ वे जटिल रासायनिक प्रक्रियायें है जिनके द्वारा मनुष्य द्वारा खाये जाने वाले भोजन में से उसका शरीर आवश्यक पदार्थों को ग्रहण कर पाचन द्वारा (अभिशोषित) कर (अभिपोषक) उसका प्रयोग (चयापचय) करना है, जिससे शरीर का पोषण होता है। पोषण का अर्थ भोजन का पाचन, अभिशोषण, चयापचय है। जिसके द्वारा पोषण अर्थात शरीर निर्माण, ऊर्जा प्राप्ति तथा रोगरोधन क्षमता प्राप्त होना। यदि मनुष्य द्वारा खाया भोजन इन तीनों कार्यों को करता है, तो उसका पोषण होता है अन्यथा नहीं। पोषण का सीधा संबंध पौष्टिक तत्वों से होता है, ये पौष्टिक तत्व उन भोज्य पदार्थों में पाये जाते है जिन भोज्य पदार्थों को हम भोजन के रूप में ग्रहण करते हैं। ये पोष्टिक तत्व निम्नानुसार 6 प्रकार के होते हैं :–

1. प्रोटीन 2. कार्बोहाइड्रेट्स 3. वसा
4. विटामिन 5. खनिज लवण 6. जल

पोषण का महत्व – आहार में विभिन्न पोषक तत्व शरीर में प्रवेश करके निम्नलिखित महत्वपूर्ण कार्य करते हैं–

1. **<u>शरीर का निर्माण करना</u>** : शरीर एक विकासशील जैविकीय इकाई है। इसकी वृद्धि एवं विकास के लिए पोषण तत्वों की आवश्यकता होती है। ये हमारी हड्ड़ियों, दांतो, मांसपेशियों, कोमल तंतुओं, रूधिर तथा अन्य शारीरिक द्रव्यों का निर्माण करते हैं।
2. **<u>ऊतकों की मरम्मत</u>** : प्रौढ़ावस्था में शरीर की वृद्धि व विकास की प्रक्रिया तो तीव्र गति से नहीं होती है, परन्तु शरीर में ऊतकों की टूटफूट होती रहती है, जिनकी मरम्मत का कार्य भोजन तत्व प्रोटीन ही करता है।

3. **शरीर को ऊर्जा प्रदान करना** – शरीर की उष्मा बनाए रखने एवं शारीरिक कार्य करने के लिए, मांसपेशियों को सक्रियता प्रदान करने तथा शरीर के विभिन्न अंगों को दैनिक क्रियाओं के लिए तत्पर रखने के लिए, ऊर्जा की आवश्यकता होती है। भोजन में वसा ही शरीर की इस महत्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति एवं शरीर को ऊर्जा प्रदान करके करता है। मानसिक श्रम करने वालों की अपेक्षा, शारीरिक श्रम करने वालों को, आहार अधिक देना होता है, क्योंकि उनकी मांसपेशियाँ अधिक क्रियाशील रहती है व उन्हें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

4. **रोग रोधन की क्षमता देना** : यदि आहार में एक से अधिक तत्वों की कमी होगी तो शरीर के विभिन्न अंगों के कार्य संचालन में अव्यवस्था उत्पन्न होगी और परिणाम स्वरूप शरीर के स्वास्थ्य, वृद्धि व विकास पर विपरीत प्रभाव होगा। शरीर के रोगों से लड़ने की शक्ति पोषक तत्वों के भोजन में रहने से प्राप्त होती है। शरीर में होने वाली अनेक क्रियायें जैसे, हृदय का निस्पन्दन, मांसपेशियों का संकुचन, शरीर में जल की मात्रा का संतुलन, रक्त का स्कंदन, शरीर के ताप का नियंत्रण, शरीर में उत्पन्न होने वाले विषैले पदार्थो का निष्कासन आदि भोजन में उपस्थित इन पोषक तत्वों के कुछ तत्व ही करते है।

5. **विभिन्न आयुवर्ग व कार्य के अनुरूप संतुलित आहार** – संतुलित आहार उस आहार को कहते है जो शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करता है, और अपेक्षाओं को तृप्त करता है, जिसमें भोजन के सभी पौष्टिक तत्व सम्मिलित हो और इन तत्वों का उचित अनुपात में व्यक्ति की आयु, लिंग और काम करने की स्थिति आदि का ध्यान रखकर निर्धारित किया गया हो या संतुलित आहार वह भोजन होता है जिसमें भोजन के समस्त पौष्टिक तत्व व्यक्ति विशेष को शरीर की मांग के अनुसार उचित मात्रा व उचित साधनों से प्राप्त हों।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए संतुलित आहार अलग अलग होता है, भोज्य पदार्थ वही होते है पर प्रत्येक व्यक्ति की पौष्टिक तत्वों की मांग अलग–अलग होने के कारण भोज्य पदार्थो की मात्रा अलग अलग हो जाती है अन्यथा एक ही रूपरेखा वाला आहार सब को देने पर वह एक व्यक्ति के लिए ही संतुलित होगा परन्तु दूसरे व्यक्ति के लिए असंतुलित होगा। शारीरिक श्रम करने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता होती है उसे ऊर्जा कहते हैं। पोषण में ऊर्जा की इकाई कैलोरी है। कैलोरी को इस प्रकार भी परिभाषित कर सकते हैं। ''1 किलोग्राम पानी का तापक्रम 1^0C बढ़ाने के लिए जितनी उष्मा का प्रयोग होता है उसे कैलोरी कहते है।''

एक व्यक्ति के लिए कैलोरी की प्रतिदिन की आवश्यकता

व्यक्ति विशेष		**कैलोरी**
पुरूष	बैठकर काम करने के लिए	2400
	मध्यम काम के लिए	2800
	भारी शारीरिक काम के लिए	3900
	बैठकर काम करने के लिए	1900

महिला	मध्यम काम के लिए	2200
	भारी शारीरिक काम के लिए	3000
बालक	7 से 10 वर्ष	2300
बालिका	7 से 10 वर्ष	2100

भारतीय परिस्थितियों को देखते हुये I.C.M.R. (इंडियन काउंसिल ऑफ मेंडीकल रिसर्च) के 1993 के सर्वे के अनुसार अलग – अलग उम्र के व्यक्तियों के लिए पोष्टिक तत्वों की तलिकायें निम्नानुसार हैं–

अ) बच्चों के लिए संतुलित आहार

भोज्य पदार्थ	पाठशाला न जाने वाले बच्चे				पाठशाला जाने वाले बच्चे			
	1 से 3 वर्ष		4 से 6 वर्ष		7 से 9 वर्ष		10 से 12 वर्ष	
	शाका (ग्राम)	मांसा (ग्राम)	शाका (ग्राम)	मांसा (ग्राम)	शाका (ग्राम)	मांसा (ग्राम)	शाका (ग्राम)	मांसा (ग्राम)
अनाज	150	150	200	200	200	250	320	320
दालें	50	40	60	50	50	60	70	60
हरे पत्ते वाले शाक	50	50	75	75	75	75	100	100
दूसरी सब्जियां कंद एवं जड़	30	30	50	50	50	50	75	75
फल	50	50	50	50	50	50	50	50
दूध	300	200	200	200	200	200	250	200
वसा एवं तेल	20	20	25	25	30	30	35	35
मांस, मछली एवं अण्डे	–	30	–	30	–	30	–	30
शक्कर एवं गुड़	30	30	40	40	50	50	50	50

नोट – शाका – शाकाहारी, मांस – मांसाहारी

ब. किशोर बालक एवं बालिकाओं के लिए संतुलित आहार :–

भोज्य पदार्थ	बालक				बालिकाएं	
	13 से 15 वर्ष		16 से 18 वर्ष		13 से 18 वर्ष	
	शाकाहारी (ग्राम)	मांसाहारी (ग्राम)	शाकाहारी (ग्राम)	मांसाहारी (ग्राम)	शाकाहारी (ग्राम)	मांसाहारी (ग्राम)
अनाज	430	430	450	450	350	350
दालें	70	50	70	50	70	50
हरे पत्ते वाले शाक	100	100	100	100	150	150
दूसरी सब्जियां	75	75	75	75	75	75
कंद एवं जड़	75	75	100	100	75	75
फल	30	30	30	30	30	30
दूध	250	150	50	150	250	150
वसा एवं तेल	35	40	45	50	35	40

मांस, मछली एवं	–	30	–	30	–	30
अण्डे	–	30	–	30	–	30
शक्कर एवं गुड़	30	–	40	40	30	30
मूंगफली	–	–	50	50	–	–

मूंगफली के स्थान पर 30 ग्राम अतिरिक्त मात्रा में वसा एवं तेल लिये जा सकते है।

स. युवतियों के लिए संतुलित दैनिक आहार

भोजन	शाकाहारी (ग्राम) Veg. (gm)	मांसाहारी Non-veg.(gm)
अनाज	350+50+100*	350+50+100*
दालें	70+10*	55+10*
हरे पत्ते वाले शाक	125+25+25*	125+25+25*
दूसरी सब्जियां	75	75
कंद एवं जड़	75	75
फलादि	30	30
दूध	200+125+125*	100+125+125*
बसा एवं तेल	35+15'	40+15*
शर्करा आदि	30+10+15*	30+10+20*
मांस, मछली	–	30
अण्डे	–	30

1. रेखांकित अंक गर्भाधान के समय की अतिरिक्त मात्रा में परिचायक है।
2. * चिंहित अंक दूध पिलाने के समय की मात्रा दर्शाते है।

द. वयस्क पुरूष के लिए संतुलित आहार

भोजन	बैठकर कार्य करना (ग्राम)	मध्यम कार्य (ग्राम)	भारी कार्य (ग्राम)
अनाज	460	520	670
दालें	40	50	60
पत्तों वाली सब्जियां	40	40	40
दूसरी सब्जियां	60	70	80
मूल एवं कंद	50	60	80
दूध	150	200	250
तेल एवं वसा	40	45	65
चीनी एवं शर्करा	30	35	55

पाठ्गत प्रश्न

प्र. 1 प्रत्येक व्यक्ति के लिए संतुलित आहार होता है।
अ) कम ब) अधिक स) समान द) अलग अलग

प्र. 2 पोषण में ऊर्जा को मापने की इकाई है
अ) जूल ब) कैलोरी स) अर्ग द) ग्राम

प्र. 3 भोज्य पदार्थो में कौन–कौन से पोषक तत्व होते हैं ?

प्र. 4 संतुलित आहार से आप क्या समझते हैं?

प्र. 5 भोजन के क्या कार्य हैं?

4.5 विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता एवं कार्य :–

वसा : वसा से शरीर में ताप उत्पन्न होता है। इसके द्वारा शरीर को शक्ति और उर्जा प्राप्त होती है।एक ग्राम वसा में लगभग 9 कैलोरी ताप होता है। वसा, मक्खन, तेल, घी, मांस, अण्डा आदि में पाया जाता है।

कार्य व महत्व

1. उच्च कैलोरी प्रदान करने के कारण वसा उन लोगों के लिए विशेष रूप से लाभकारी है जिन्हें कार्य करते समय अधिक ऊर्जा नष्ट करनी पड़ती है।
2. यह भोजन बनाने में सहायक सिद्ध होती है।
3. यह भोजन को स्वादिष्ट बनाती है।
4. वसा से शरीर में ताप उत्पन्न होता है और यह ठण्ड से बचाती है।
5. शरीर में अधिक वसा इकट्ठा होना हानिकारक है। यह अतिरिक्त वसा शारीरिक अंगों की क्रियाओं में बाधा डालती है। अधिक वसा के सेवन से कोलेस्ट्राल की मात्रा बढ़ जाती है, जिसके कारण हृदय रोग होता है।

कार्बोहाईड्रेस : चावल, गेहूँ, आलू, शक्कर, फलों, दूध, मकई, गन्ना, केला, शलगम, बाजरा आदि में कार्बोहाईड्रेट्स पाया जाता है।

कार्य व महत्व :

1. ये शरीर में ईंधन के रूप में जाने जाते हैं व ऊर्जा के प्रमुख साधन है।
2. कार्बोहाईड्रेट की कमी से शरीर का वजन कम जो जाता है।
3. यह सस्ता व सुपाच्य होता है।
4. शरीर के रखरखाव के लिए कार्बोहाईड्रेट्स आवश्यक है।

प्रोटीन : दूध, मांस, मछली, अण्डे, अखरोट, फलियां, मटर, बादाम, मांस, मछली, गेहूं का छिलका आदि में प्रोटीन पाया जाता है।

कार्य व महत्व :

1. प्रोटीन शरीर की वृद्धि एवं विकास में अपूर्व योगदान प्रदान करने वाला पोषक तत्व है।
2. प्रोटीन शरीर के प्रत्येक कोशों में प्रोटोप्लाज्म के रूप में उपस्थित होता है।
3. शरीर के तंतुओं में निरन्तर टूट फूट होती रहती है और प्रोटीन इनकी मरम्मत कर पुनः निर्माण करता है।

4. सभी एन्जाइम प्रोटीन होते है और पाचक व उपाचयन क्रियाओं के आवश्यक प्रेरक है।

खनिज लवण : कैल्शियम, मेंग्नीशियम, सोडियम, पोटेशियम, फास्फोरस, गंधक, क्लोरीन, प्रमुख खनिज लवण है, इनकी मात्रा शरीर में पाये जाने वाले खनिज लवणों का 60 प्रतिशत से 80 प्रतिशत है। इनकी निश्चित मात्रा दैनिक आहार में नितांत आवश्यक है।

कार्य व महत्व :

1. खनिज लवण अस्थियों, दांतों तथा मांसपेशियों का निर्माण करते है।
2. शरीर में अम्लों और क्षारों का संतुलन कायम रखते है।
3. पाचक अम्लों व रसों के उत्पादन में सहायता देते है।
4. रक्त जमाव निर्माण के लिए आवश्यक है।
5. शरीर को निरोग बनाये रखने में सहायता प्रदान करते है।

विटामिन्स : विटामिन्स जीवन प्रदान करने वाले पदार्थ है। विटामिन प्रमुख रूप से छः प्रकार के होते है। A, B, C, D, E तथा K

विटामिन	स्त्रोत	कमी से होने वाले रोग
विटामिन A	मछली का तेल, दूध, हरी सब्जियों, गाजर, आम, पपीता, पालक आदि	1. आंखों की रोशनी कम होना (रंतोधी) 2. गुर्दे में पत्थरी
विटामिन B	खमीर, अंकुरित चने, दूध, मूंगफली, अण्डा, अनाज, मांस	1. रूधिर की कमी 2. बेरी – बेरी
विटामिन C	खट्टे फलों जैसे संतरे, नीबू, इमली, सेब, टमाटर, आवला, अमरूद आदि तथा हरी सब्जियां	1. स्कर्वी 2. दांतों की कमजोरी
विटामिन D	सूर्य की किरण में, अण्डे की जर्दी, दूध, मक्खन, घी आदि	1. रिकेट्स 2. बैचेनी
विटामिन E	वसायुक्त मछली, अनाज	1. यकृत संबंधी रोग 2. रक्त की कमी
विटामिन K	पालक, गोभी, हरी सब्जियां, सोयाबीन के तेल	1. घावों से अत्यधिक रक्त बहना 2. मल, मूत्र व नाक से रक्त बहना

कार्य :

1. शरीर व रोगों से संघर्ष करने की क्षमता उत्पन्न करना।
2. पाचक को सक्रिय रखने के लिये आवश्यक है।
3. स्नायु संस्थान को सक्रिय बनाते हैं।
4. शरीर का समुचित विकास करने में सहायक होता है।

जल : मनुष्य जल के बिना जीवित नहीं रह सकता यह सभी रूपों में सर्वोत्तम होता है।शरीर में 75 प्रतिशत जल ही रहता है। सामान्यतः व्यक्ति को प्रतिदिन 4 से 5 लीटर पानी की आवश्यकता होती है। सभी पाचक रस जलीय होते हैं।

कार्य व महत्व :

1. यह शरीर से जहरीले पदार्थ और व्यर्थ सामग्री निकालने में सहायता करता है।
2. यह भोजन पचाने में सहायता करता है।
3. यह हड्डियों को शुष्क होने से बचाता है।
4. यह कोशिकाओं को नर्म तथा लचीली अवस्था में रखता है।
5. यह रक्त संचरण में सहायता देता है।
6. यह शरीर में तापमान को नियमित करता है।
7. यह शरीर को खनिज लवण प्रदान करता है।

<u>पाठ्गत प्रश्न</u>

6. विटामिन 'ए' की कमी से होने वाला रोग है :–

   अ) घेघा ब) रिकेट्स स) बेरी – बेरी द) रतौंधी

7. बेरी – बेरी रोग किसकी कमी से होता है :–

   अ) विटामिन 'ए' ब) विटामिन 'बी' स) विटामिन 'सी' द) विटामिन 'डी'

8. शरीर में ताप उत्पन्न करता है :–

   अ) जल ब) विटामिन स) प्रोटीन द) वसा

9. जल का हमारे भोजन में क्या महत्व है?
10. वसा के स्त्रोत कौन कौन से है ?

कुपोषण जनित बीमारियों तथा उनको दूर करने के उपाय :–

कुपोषण : अपूर्ण पोषण व कुपोषण उस दशा का नाम है जब व्यक्ति को संतुलित भोजन नहीं मिलता एवं जिससे अनियमित जीवन व्यतीत करता है। यह अवस्था व्यक्ति के शारीरिक विकास के साथ–साथ उसके मानसिक विकास को भी प्रभावित करती है। कुपोषण के कारण शरीर में विभिन्न के विकार उत्पन्न हो जाते है। इस प्रकार जो भोजन आवश्यक भोजन तत्वों के अनुरूप नहीं होता उसे कुपोषित भोजन कहते है। कुपोषण के कारण निम्न हो सकते है :–

1. घर तथा विद्यालय में शुद्ध वायु, प्रकाश, धूप, जल के न मिलने तथा गंदे वातावरण के कारण बालक कुपोषण से पीड़ित होते है।
2. उचित मात्रा में निद्रा व विश्राम नहीं मिलने से भी बच्चे कुपोषण से पीड़ित हो जाते हैं।
3. कुपोषण का मुख्य कारण पौष्टिक तत्वों से युक्त भोजन का अभाव होता है। बालकों के भोजन में प्रायः प्रोटीन, कार्बोहाईड्रेट, वसा, खनिज लवण, विटामिन आदि आवश्यक तत्वों में कमी रहती है।

4. भोजन में इन तत्वों के अनुचित मात्रा होने से भी कुपोषण होता है।
5. भोजन को उचित समय पर ग्रहण नहीं करने से भी कुपोषण होता है।

कुपोषण से होने वाली बीमारियां :

1. विटामिन 'ए' की कमी से बच्चों में रतौंधी की समस्या, (आँखों की रोशनी में कमी की समस्या) देखी जाती है।
2. खनिज लवणों के अभाव में अस्थियाँ व दांत अविकसित हो जाते है।
3. अपूर्ण पोषण की अवस्था में बालक के शरीर का विकास रुक जाता है एवं आयु के अनुसार बालक की ऊँचाई एवं भार में कमी होती है।
4. बालक जरा सा श्रम करने पर थकावट का अनुभव करने लगता है।
5. नींद न आने की बीमारी हो जाती है।
6. विटामिन 'डी' की कमी से हड्डियों में टेढ़ापन आ जाता है जिसे रिकेट्स रोग कहते है।
7. वसा की कमी से छात्र दिन प्रतिदिन दुर्बल होने लगता है, चेहरा चेतनहीन हो जाता है। त्वचा पीली व खुरदरी हो जाती है।
8. विभिन्न पोषक तत्वों की कमी से बच्चा संक्रामक रोगों से अधिक ग्रसित हो जाता है।
9. बच्चों में रक्त की कमी से एनीमिया हो जाती है।
10. बैठने और खड़े होने की मुद्रा बिगड़ जाती है, जिसके परिणामस्वरूप शरीर में कई प्रकार के रोग हो जाते है और उचित विकास रूक जाता है।
11. कार्बोहाईड्रेट के अधिक प्रयोग से अपच, अतिसार और मधुमेंह रोग हो जाते है।
12. विटामिन 'के' के अभाव में चोट लगने पर रक्त का थक्का न जमने से रक्तस्त्राव होता रहता है।
13. विटामिन 'ई' के अभाव में स्त्रियों में गर्भपात, बांझपन तथा पुरूषों में नपुंसकता आ जाती है।

<u>कुपोषण या बीमारियों को दूर करने के उपाय</u>

1. स्कूल व घर का वातावरण अधिक से अधिक साफ सुथरा होना चाहिये। रसोईघर, भोजन कक्ष व शौचालयों की सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।
2. स्कूलों में मध्यान्ह भोजन में पोषक तत्वों का भी प्रबंध होना चाहिये।
3. प्रत्येक विद्यार्थी का वर्ष में एक बार वजन, लम्बाई का नाप, नेत्र, दांत आदि की जांच होना चाहिये।
4. स्कूल के समय में सामन्यतः सभी विषयों के अध्यापकों और विशेषकर स्वास्थ्य शिक्षक द्वारा सभी श्रेणियों के छात्रों को व्यक्तिगत स्वच्छता का ज्ञान प्रदान करने पर बल देना चाहिये।
5. शिक्षकों को बच्चों को पौष्टिक खाना खाने की सलाह देना चाहिये। शिक्षकों को विद्यालय में विद्यार्थियों को टिफिन में पौष्टिक भोजन लाने को प्रेरित करना चाहिये। उनको फास्टफूड खाने की कमियां बताना चाहिये।

6. व्यक्ति के दैनिक जीवन में मानसिक कार्य, शारीरिक क्रियाकलाप, विश्राम, नींद तथा मनोरंजन सभी का उचित स्थान होना चाहिए। केवल काम व केवल आराम घातक होता है।

7. बच्चों को खेलों का महत्व समझाना चाहिये।

भोजन पकाने की विधियां एवं उनका पोषक तत्वों पर पड़ने वाला प्रभाव –

भोजन पकाने की विधियां – भोजन पकाने की विधियां पीढ़ी दर पीढ़ी सुधरती जाती है। जैसे – जैसे मानव जाति प्रगति करती गई तथा उनके स्वाद में सुधार होता गया, भोज्य पदार्थों के पकाने की अनेकानेक विधियां प्रचलित होती गई। भोजन को पकाने के प्रमुख निम्नलिखित तीन उद्देश्य हैं :

1. भोज्य सामग्री को सुपाच्य बनाने के लिए भोजन को पकाते हैं।
2. पकाने में भोज्य सामग्री स्वाद, सुगंध एवं बाह्य स्वरूप की दृष्टि से आकर्षक बना दी जाती है।
3. पकाने में विभिन्न प्रकार का ताप प्रयुक्त किया जाता है। ताप से वस्तुओं को सड़ाने वाले व विषयुक्त कीटाणु नष्ट हो जाते है। पाक क्रिया से भोज्य पदार्थो में विशेषकर दूध, मांस, मछली में उपस्थित कीटाणु व कृमि नष्ट हो जाते है।

<u>पकाने के माध्यम की दृष्टि से पाक विधियों को निम्न चार वर्गो में विभाजित किया जा सकता है</u>

1. जल द्वारा
2. वाष्प द्वारा
3. चिकनाई द्वारा
4. वायु द्वारा

1. **जल द्वारा (उबालना) –** यह पकाने की सरल विधि है, इसमें पकायी जाने वाली वस्तु को किसी भगौने या बर्तन में जल के साथ डाल दिया जाता है। तत्पश्चात उसे चूल्हे पर रखकर तब तक उबाला जाता है जब तक कि वह पर्याप्त मुलायम न हो जाए।
2. **वाष्प द्वारा –** भोज्य पदार्थ वाष्प के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष संपर्क में लाकर पकाया जाता हैं प्रत्यक्ष विधि के अंतर्गत कढ़ाही या भगौने में उबलते हुये जल में निकली हुई वाष्प द्वारा वस्तु को पकाया जाता है। अप्रत्यक्ष विधि में उबलते हुये जल के ऊपर दो प्लेटों के मध्य पकने की क्रिया सम्पन्न होती है। वाष्प के दबाव से भोज्य पदार्थो को पकाया जाता है, इस सिद्धांत का उपयोग प्रेशर कुकर में किया जाता है।
3. **चिकनाई द्वारा –** इस विधि द्वारा भोज्य वस्तु को पकाने का प्रमुख माध्यम तेल, घी तथा अन्य स्निग्ध पदार्थ होते है। इस विधि से भोज्य पदार्थ को हल्का धुंआ निकलते हुये गर्म घी या तेल में पकाया जाता है। यह सर्वाधिक शीघ्रतापूर्वक भोजन पकाने की उपयुक्त विधि है। गर्म घी या तेल में ज्यों ही भोज्य पदार्थ डाला जाता है, गर्मी के कारण ऊपरी परत कठोर हो जाती है। परिणामतः उसके अन्दर के पोषक तत्व बाहर नहीं निकल पाते और भोजन स्वादिष्ट बनता है परन्तु गरिष्ट होने के कारण शीघ्रता से नहीं पचता।

4. **वायु द्वारा** – भूनना, सेंकना तथा भट्टी या तंदूर में पकाते समय वायु भोज्य पदार्थ को पकाने का कार्य करती है।

– **भूनना –** इस विधि में पकायी जाने वाली सामग्री राख या बालू के माध्यम से ताप के संपर्क में आती है।

– **सेकना –** सेंकना, भूनना से अलग है भूनने में भोज्य सामग्री आग के प्रत्यक्ष संपर्क में नहीं आती है जबकि सेंकने में प्रत्यक्ष रूप से अंगारों के ऊपर रखकर सेंका जाता है। बैंगन, आलू इसी विधि से सेंकते है।

– तंदूर या भट्टी में पकाना – इस विधि में भोज्य पदार्थ को भट्टी के अंदर रख दिया जाता है, शुष्क उष्णता के माध्यम से भोज्य सामग्री पकायी जाती है। केक आदि इसी विधि से पकाये जाते है।

पोषक तत्वों पर उष्णता का प्रभाव : पकाने की प्रत्येक विधि में ताप का प्रयोग किसी न किसी रूप में अवश्य ही किया जाता है। प्रत्येक वस्तु की ताप ग्राहता पृथक–पृथक होती है और उनके आतंरिक गुणों पर ताप का पृथक–पृथक प्रभाव पड़ता है।

– **शर्करा पर उष्णता का प्रभाव** : गर्म करने पर शक्कर तरल पदार्थ के रूप में परिवर्तित हो जाती है। अधिक गर्म करने पर इसका रंग बदल जाता है तथा यह भूरे रंग की शक्कर बन जाती है और अधिक गर्म होने पर जलकर राख का रूप ग्रहण कर लेती है।

– **प्रोटीन पर उष्णता का प्रभाव –** प्रोटीन पकने पर जम जाता है, और कड़ा हो जाता है। अण्डा का प्रोटीन पकने पर जम जाता है। जब डबल रोटी को पकाते हैं तो गेहूं का प्रोटीन निकलकर डबल रोटी की ऊपरी सतह पर कुरकुरी तह के रूप में जम जाता है। दालों को पकाने पर प्रोटीन सुपाच्य हो जाता है और उसका पोषक मूल्य बन जाता है।

– **गोश्त पर पकाने का प्रभाव –** जल या वाष्प के माध्यम से गोश्त को पकाये जाने पर उष्णता के परिणाम स्वरूप गोश्त के ऊपरी सहत पर प्रोटीन जम कर कड़ी परत बना लेता है। जिसके कारण गोश्त के अन्दर गर्मी पहुंचने की प्रक्रिया मंद हो जाती है। गोश्त गर्मी का कुचालक है। गोश्त के रसों के द्वारा गर्मी का संवहन नहीं होता है इसी कारण गोश्त कई घण्टों में पकता है। उबालने पर गोश्त का हिमोग्लोबिन नष्ट हो जाता है। इस कारण उसका रंग लाल से भूरे रंग में परिवर्तित हो जाता है। भूनना गोश्त पकाने की उत्तम विधि है। भूनते समय पेशीय तंतुओं के प्रोटीन और संयोजक ऊतक संकुचित हो जाते है और गोश्त की सतह पर इससे रस निकलने लगते है, जो वाष्प बन कर उड़ जाते हैं और गोश्त की सतह पर केवल खनिज एवं सार तत्व जमें रहते हैं जिस कारण गोश्त के स्वाद में बृद्धि हो जाती है।

– **कार्बोहाईड्रेट्स पर पकाने का प्रयास –** कच्चे कार्बोज की अपेक्षा पका कार्बोज पदार्थ शीघ्र पच जाता है। कार्बोज पकाने से स्टार्च के कणों को चारों ओर का आवरण मुलायम होकर हट जाता है जिससे

स्टार्च कण पानी शोषित कर फूल जाता है और मुलायम हो जाता है और भोजन सुपाच्य हो जाता है।

- **वसा पकाने का प्रभाव –** वसा पर तेज ताप का प्रभाव पड़ता। इससे वसा के वसीय अम्ल पानी में घुलकर बाहर निकल जाते है।
- **खनिज लवण पकाने का प्रभाव –** खनिज लवण पानी में घुलनशील होने के कारण पानी में घुलकर बाहर निकल जाते है।
- **सब्जियों को पकाने का प्रभाव –** सब्जी पकाने का मुख्य अभिप्राय हैं, सेल्यूलोज को मुलायम करना तथा श्वेतसार के कणों को फुलाकर जैलेटिन के रूप में परिवर्तित करना। ऐसा कहा जाता है कि सब्जी को पकाने पर उसके लवणांश नष्ट हो जाते है पर सौभाग्यवश सब्जियों के कैल्शियम और लोहांश पर उष्णता का प्रभाव बहुत कम पड़ता है। कैरोटिन भी पकाने में नष्ट नहीं होता। सब्जी के हरे रंग को बनाए रखने के लिए प्रयुक्त सोडा बाई कार्बोनेट विटामिन को नष्ट कर देता है इसलिए हरी सब्जी में नहीं प्रयोग करना चाहिए।
- विटामिन 'सी' अधिकांशतः जल में घुलनशील है इसलिए भोज्य पदार्थों को धोने से ताप के कारण नष्ट हो जाता है। इसके लिए आवश्यक है कि ना ही इन्हें ज्यादा भिगोया जावे और ना ही अधिक पकाया जाये। आलू को बिना छीले उबालना चाहिये क्योंकि छिलके, के कारण एस्काटिक एसिड नष्ट नहीं होता है। वाष्प द्वारा सब्जियों को पकाना उपयुक्त नहीं है क्योंकि यह सब्जी पकाने की मंद क्रिया है और इससे एस्काटिक एसिड नष्ट हो जाता है। विटामिन 'बी' भी जल में घुलनशील है इसकी आधी मात्रा पकाये जाते समय ही नष्ट हो जाती है। अधिक ताप पर भोजन पकाने पर और अधिक मात्रा नष्ट हो जाती है ।
- **फलों पर पकाने का प्रभाव –** मीठे फलों को कच्चा खाना ज्यादा लाभदायक है। यदि फलों को शक्कर के साथ पकाया जाये तो लवण विटामिन आदि पकाये जाने वाले जल में मिश्रित हो जाते है तथा चीनी का कुछ अंश फल द्वारा शोषित कर लिया जाता है परंतु हम पकाने में जल का प्रयोग करते हैं इसलिए इस क्रिया में ज्यादा हानि नही होती है।
- **मछली पर पकाने का प्रभाव –** मछली पकाने की प्रक्रिया में जो परिवर्तन होते हैं वह गोश्त के समान होते है।

इकाई सारांश :–

- आहार को शरीर में आत्मसात होकर शक्ति का स्त्रोत बनाना पोषण कहलाता है।
- पोषक तत्व छह है : प्रोटीन, कार्बोहाड्रेट्स, वसा, प्रोटीन, लवण और जल
- पोषक तत्व शरीर निर्माण, उतकों की मरम्मत करने में, शरीर की ऊर्जा प्रदान करने में तथा शरीर को रोगों से लड़ने में मदद करते है।

- संतुलित आहार वह भोजन होता है जिसमें भोजन के समस्त पोष्टिक तत्व व्यक्ति विशेष के शरीर की मांग के अनुसार उचित मात्रा में उचित साधनों से प्राप्त हों।
- कुपोषण वह स्थिति है जहाँ कुछ पौष्टिक तत्व कम तो कुछ अधिक होते है।
- भोजन जल द्वारा, वाष्प द्वारा, चिकनाई द्वारा और वायु द्वारा पकाया जाता है।
- खनिज लवण, विटामिन बी, विटामिन सी, पानी में घुलनशील होने से खाद्य पदार्थों के धोने से नष्ट हो जाते है। काबॉहाइड्रेड पककर सुपाच्य हो जाता है।

आत्म परीक्षण हेतु प्रश्न –

प्र. 1 निम्न शब्दों को संक्षेप में समझाये :–

अ) पोषण

ब) संतुलित आहार

स) कुपोषण

प्र. 2 पोषण का अर्थ एवं महत्व समझाये।

प्र. 3 भोजन से प्राप्त होने वाले प्रमुख पोषक तत्वों का वर्णन कीजिए।

प्र. 4 कुपोषित बालक के लक्षण बताइये।

प्र. 5 भोजन पकाने पर पोष्टिक तत्वों पर पड़ने वाले प्रभावों को समझाये।

———

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, म.प्र., भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन (प्रथम वर्ष)
प्रश्न पत्र – द्वितीय

विषय : भोज्य पदार्थों का संग्रहीकरण एवं सरक्षण **इकाई – 5**

विषयांश : उपइकाई–1 प्रस्तावना, उद्देश्य, स्थानीय उपलब्ध पदार्थ एवं उनके पोषक तत्वों का ज्ञान।

उपइकाई–2 भोज्य पदार्थों के संग्रहीकरण एवं संरक्षण की आवश्यकता एवं उनकी विधियां, भोज्य पदार्थों के संग्रहीकरण की विधियां, भोज्य पदार्थों के संरक्षण की विधियां, भोज्य पदार्थ संरक्षण संबंधित भांतियां तथा उनका निराकरण, भोज्य पदार्थों में मिलावट एवं पहचान तरीके, भोज्य पदार्थों में मिलाये जाने वाले पदार्थों की सूची, भोज्य पदार्थों में मिलावट पहचान के तरीके।

प्रिय छात्र,

पिछली इकाई में हमने पोषण का अर्थ एवं महत्व, विभिन्न पोषक तत्वों की आवश्यकता तथा कार्य, कुपोषण एवं कुपोषण से बचने के उपाय, भोजन पकाने की विभिन्न विधियों के बारे में जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत अध्याय में भोज्य पदार्थों का संग्रहीकरण एवं संरक्षण के विषय में अध्ययन करेंगे।

प्रस्तावना :–

पिछली इकाई में हमने पोषण तथा पोषक तत्वो के महत्व व उपयोगिता के वारे में चर्चा की। हम प्रतिदिन संतुलित आहार तो लेते है लेकिन आवश्यक नही है कि वह पूर्णतः स्वच्छ या खाने योग्य हो। कई बार जीवाणु या कीटाणु इनको खराव कर चुके होते है। विक्रेता लाभ कमाने के लियें भोज्य पदार्थो में अन्य पदार्थो का मिश्रण कर देते है। जिनकी हम पहचान कभी नही कर पाते। हमें मिलावट पहचान के तरीको का ज्ञान होना चाहिये। भोजन को लंबे समय तक सुरक्षित रखने के लिए अलग–2 तरीको से उनका संरक्षण करते हैं। दैनिक जीवन में हम कुछ पदार्थो को फ्रिज में रखकर तथा कुछ पदार्थो को गर्म करके उनको खराब होने से बचाते है इसके अलावा भोज्य पदार्थो को संरक्षित करने की अन्य विधियाँ भी हैं, इन सभी की चर्चा इस इकाई में की गई है।

उद्देश्य :

– इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप निम्न बिंदुओ को समझ सकेंगे।

– स्थानीय उपलब्ध भोज्य पदार्थो के पोषक तत्व।

– भोज्य पदार्थों के संग्रहीकरण व संरक्षण की आवश्यकता तथा उनकी विधियाँ।

– भोज्य पदार्थ संरक्षण संबंधी भ्रँातियाँ तथा उनका निराकरण।

– भोज्य पदार्थों में मिलावट एवं पहचान के तरीके।

स्थानीय उपलब्ध भोज्य पदार्थो एवं उनके पोषक तत्वो का ज्ञान –

पिछले अध्यायो में हम भोजन के विभिन्न पौष्टिक तत्वो की चर्चा कर चुके हैं। इन पौष्टिक तत्वों को हम प्रत्यक्ष रूप से उठाकर नही खा सकते। पौष्टिक तत्व हमारे शरीर में पहुँचाने के माध्यम विभिन्न भोज्य पदार्थ है। अलग–2 भोज्य पदार्थो में अलग–2 पोषक तत्व होते है। हम अपने संतुलित आहार में विभिन्न स्थानीय अर्थात जहॉ हम रहते है वहाँ पर उपलब्ध भोज्य पदार्थों को ग्रहण करते हैं। इन भोज्य पदार्थों में उपलब्ध पोषक तत्वों का वर्णन नीचे दिया जा रहा है। –

दूध :– दूध एक ऐसा खाद्य पदार्थ है जो हर उम्र, हर अवस्था, हर बीमारी के लिये आदर्श भोजन है। एक शिशु जन्म के बाद दूध पर ही निर्भर रहता है वही उसका भोजन होता है। दूध भोजन के तीनो कार्य – शरीर निर्माण, ऊर्जा उत्पादन तथा शरीर की सुरक्षा करता है।

दूध में पाये जाने वाला प्रोटीन पूर्ण प्रोटीन होता है। दूध में कार्बोज लेक्टोज के रूप में पाया जाता है यह द्विगुणी शर्करा केवल दूध में पाई जाती है जो ऊर्जा प्रदान करती है। दूध के बाद अण्डे को पूर्ण आहार माना गया है पर शाकाहारी अण्डा नहीं खाते पर एक कप दूध एक अण्डे के बराबर कैलोरी देता है। दूध में विटामिन सी को छोड़कर विटा ए, बी$_2$, बी$_1$ तथा डी कम मात्रा में पाया जाता है। दूध में खनिज वसा को आसानी से हटाया जा सकता है। दूध में खनिज लवण कैल्शियम व फास्फोरस प्रचुर मात्रा में पाये जाते है। दूध में 87.25% जल का होता है। दूध का संगठन इस प्रकार का है। तरल जल (87.25%), प्रोटीन (12.75%), कार्बोहाइड्रेड (3.5%), वसा (3.80%) तथा खनिज लवण (0.65%)

दूध से बने भोज्य पदार्थ

दही (Curd**)** :– दूध तथा दही के पौष्टिक तत्वो की मात्रा में कोई विशेष अंतर नही है। कार्बोहाइड्रेट 4 से 5 प्रतिशत, प्रोटीन 3 से 4 प्रतिशत, खनिज लवण– कैल्शियम, फास्फोरस, मेंग्नीशियम, पौटेशियम पाये जाते है। दही विटामिन बी$_1$ तथा बी$_2$ की मात्रा दूध की अपेक्षा बढ़ जाती है।

क्रीम (Cream) :– जब दूध को गर्म कर कुछ समय तक स्थिर रखा जाता है तो दूध की वसा ऊपर आ जाती है उसें अलग कर दिया जाता है उसे क्रीम कहते है। क्रीम को वसा की मात्रा के अनुसार तीन प्रकार में वांटा गया है।

1. हल्की क्रीम – वसा (15.20%)
2. साधारण क्रीम – वसा (30–35%)
3. गाढ़ी क्रीम – वसा (35–60%)

तीनों प्रकार क्रीम में पोषक तत्वों का प्रतिशत

क्रीम	प्रोटीन	कार्बोज	वसा	जल	खनिज लवण
हल्की क्रीम	2.94%	4.0%	19%	73.41%	0.60%
साधारण क्रीम	2.22%	3.15%	36%	58.19%	
गाढ़ी क्रीम	1.83%	1.46%	59%	37.62%	

मक्खन (Butter)

दही, दूध या क्रीम को धीरे धीरे मथकर उनका वसा वाला भाग अलग कर मक्खन प्राप्त किया जाता है। यही अलग भाग मक्खन होता है। मक्खन में जल (12–15%), प्रोटीन (2%) शक्कर (5%) वसा (80%) होता है। मक्खन में विटामिन 'ए' अधिक पाया जाता है।

घी :– क्रीम या मक्खन को गर्म करने पर उसकी जलवाष्प उड़ जाती है केवल वसा बचता है वही घी कहलाता है। इसमें 99% वसा होता है तथा विटामिन 'ए' होता है।

पनीर :– दूध में खटाई डालने से इसकी प्रोटीन थक्के के रूप में जम जाती है इसे छानकर अलग कर लेते है जिसे पनीर कहते है। पनीर में प्रोटीन (13–17%) वसा (22–24%) जल (50–55%) पाया जाता है।

अण्डा :– वे लोग जो अपने भोजन में मांसाहारी भोज्य पदार्थों का समावेश करते हैं, उनके लिए अण्डा ही संपूर्ण आहार है। एक अण्डे का वजन 25 ग्राम होता है, जिसमें 12% छिलका, 58% अण्डे की सफेदी वाला भाग, तथा 30% अण्डे की जर्दी वाला भाग होता है।

प्रोटीन :– अण्डे के सफेद भाग में 12.6% प्रोटीन पाया जाता है, जबकि जर्दी वाले भाग में 16% प्रोटीन होता है।

वसा :– जर्दी वाले भाग में वसा होती है जो कि 15% है। इसमें वसा कौलेस्ट्राल के रूप में होता है।

विटामिन :– विटामिन 'ए' अधिक मात्रा में पाया जाता है। विटामिन बी$_1$ अण्डे की जर्दी में तथा बी$_2$ अण्डे के सफेद भाग में होता है। जल 70–72% तक होता है।

खनिज लवण :– अण्डे के सफेद भाग में कैल्शियम पाया जाता है और अण्डे के पीले भाग में कैल्शियम, फास्फोरस, मेंग्नीशियम, लौहालवण, गन्धक, क्लोरीन तथा पोटेशियम पाया जाता है।

अनाज :–

गेंहूँ :– गेहूँ का प्रयोग आटा, मैदा, दलिया, सूजी आदि रूप में किया जाता है गेहूँ के वाह्य आवरण में प्रोटीन विटामिन 'बी' लोह लवण अधिक पाये जाते है। गेहूँ में 10–14% प्रोटीन पाई जाती है। यह अर्ध प्रोटीन होती है क्योकि इसमें सभी अमीनो एसिड नही पाये जाते है। 60–80% स्टार्च विटामिन 'बी'1 तथा कैल्शियम, फास्फोरस, लोह लवण पाये जाते है। गेहूँ को दलिये के रूप में प्रयोग करना अति उपयोगी है। मेंदा में कुछ पौष्टिक तत्व नष्ट हो जाते है।

चावल :– समस्त खाद्यनो में चावल का उपयोग सर्वोधिक होता है मुख्य रूप से दो प्रकार के चावल का प्रयोग होता है – एक प्रकार के धान के चावल में धान की सुखाकर कुटवा लिया जाता है तथा दूसरे प्रकार में धान को उबालकर, सुखाकर, कुटवा लिया जाता है। कुटने के काम हाथ व मशीन दोनो से

होता है। मशीन से कुटे चावल में विटामिन नष्ट हो जाते है। चावल में 6–7% प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट स्टार्च के रूप में 80% विटामिन 'बी$_1$' और लोह लवण पाये जाते है।

मक्का :– ताजा मक्का भूनकर तथा सूखे मक्के का आटा तैयार कर रोटी बनायी जाती है। ताजे मक्के में प्रोटीन 5.5% कार्बोहाइड्रेट 24.6% वसा 0.8% पाया जाता है। जबकि सूखे मक्के में प्रोटीन 11% कार्बोहाइड्रेट 66% वसा 3.6% पाया जाता है। मक्के में विटामिन 'बी$_1$' अधिक मात्रा में पाया जाता है जबकि खनिज लवण कम मात्रा में पाये जाते है।

दाले :– गेहूँ, चावल, ज्वार, बाजरा यह सभी एक दलीय खाद्यान्न हैं जबकि दालें द्विदलीय खाद्यान्न है। एक दलीय खाद्यान्न कार्बोज प्रधान होता है जबकि द्विदलीय खाद्यान्न प्रोटीन प्रधान होता है। दालो में प्रोटीन का अंश मांस के बराबर तथा दूध व अण्डे से अधिक होता है परंतु इनसे प्राप्त प्रोटीन दूध की अपेक्षा निम्न कोटि की होती है। दालो में विटामिन ए,बी,सी अधिक मात्रा में होते है। दालों को अंकुरित करने से इसके विटामिन बढ़ जाते है। दालों में लोहा व फास्फोरस भी अधिक होता है।

दालो के पौष्टिक तत्व –

पदार्थ	प्रोटीन (प्रतिशत में)	वसा (प्रतिशत में)	कार्बोज (प्रतिशत में)
सोयाबीन	43	19.5	21.0
हरा चना	24	1.3	56.6
सूखा मटर	19	1.1	56.6
अरहर दाल	22	1.7	57.2
मसूर दाल	25	0.7	59.2
काला चना	24	1.4	60.3
राजमा	22	1.3	60.6

सब्जियाँ :– सब्जियाँ मानव में खनिज लवण तथा विटामिन 'बी' तथा 'सी' की पूर्ति करते है। सब्जियॉ तीन श्रेणियो में बाँटा जा सकता है – हरी पत्ते वाली – इनमें अंकुर डण्डी व पत्ता होता है जैसे – पालक, मेंथी, पत्ता गोभी आदि। पत्ते का रंग जितना अधिक हरा उतना अधिक पोषक होता है। इनमें पानी, वसा, स्टार्च की मात्रा तथा रक्त के क्षारीय बनाये रखने वाले क्षार होते है। इनमें विटामिन ए, बी, सी, डी, ई, के लोह लवण तथा कैल्शियम की मात्रा होती है।

जमीन के नीचे उगने वाली सब्जियाँ :–

इनमें स्टार्च तथा प्रोटीन तो होता है पर वसा नही होता। यह कैल्शियम, खनिज तथा फास्फोरस का अच्छा स्त्रोत मानते हैं। इनके उदाहरण चुकन्दर, गाजर, मूली, शलजम, आदि है। अन्य सब्जियाँ – बैंगन, टमाटर, फूलगोभी, फली आदि विटामिन तथा खनिज लवण उपलब्ध कराने में समर्थ हैं।

फल :– फल एक रक्षात्मक भोजन है। फलो में 85% पानी होता है इसके अतिरिक्त विटामिन व खनिज लवण विशेष रूप से पाये जाते है। फलो में विटामिन 'सी' काफी मात्रा में पाया जाता है। पीले रंग के फलो

में कैरीटिन होता है जो खाने के बाद शरीर में विटामिन 'ए' में बदल जाता है। फलो में विटामिन 'डी' कम पाया जाता है। फलो में सोडियम व कैल्शियम अधिक होता है। सूखे फलों में कैल्शियम व लौह तत्व ज्यादा होता है। आम तथा केला में कार्बोहाइड्रेट अधिक होता है जो शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। पके फलों में शर्करा अधिक होता है।

सूखे मेंवे तथा तेल बीज :–

सूखे मेंवे प्रोटीन व वसा के उत्तम स्त्रोत होते है परंतु सूखे मेंवे महंगें होते है, मूंगफली ही एक सस्ता सूखा मेंवा है। 100 ग्राम मूंगफली में प्रोटीन, वसा, कैलोरी, कैल्शियम, लोहलवण, विटामिन बी आदि पाया जाता है।

माँस व मछली :– माँस में प्रोटीन, लोह लवण, विटामिन आदि पौष्टिक तत्व होते हैं। मछली माँस की अपेक्षा जल्दी पच जाती है।

पदार्थ का नाम	प्रोटीन प्रतिशत	वसा प्रतिशत	कार्बोहाइड्रेट प्रतिशत	विटामिन प्रतिशत	कैलोरी प्रति 100 ग्राम
गौ माँस	22.6	2.6	–	59	114
बकरे का माँस	18.4	13.3	–	31	194
मछली ताजी	19.2	3.9	–	–	112
मछली बासी	17.9	0.7	–	–	77

पाठ्गत प्रश्न

1. पूर्ण आहार माना गया है :–
   अ) गेहूँ ब) माँस स) दूध द) चाय
2. दूध के बाद पूर्ण आहार माना गया है :–
   अ) गेहूँ ब) माँस स) अण्डा द) काफी
3. खट्टे फलों में अधिक पाया जाता है :–
   अ) विटामिन 'ए' ब) विटामिन 'बी' स) विटामिन 'सी' द) विटामिन 'डी'
4. पीले रंग के फलों में अधिक पाया जाता है :–
   अ) विटामिन 'ए' ब) विटामिन 'बी' स) विटामिन 'सी' द) विटामिन 'डी'

भोज्य पदार्थो के संग्रहीकरण एवं संरक्षण की आवश्यकता एवं विधियॉ –

स्वस्थ व हष्टपुष्ट रहने के लिये संतुलित भोजन आवश्यक है। दैनिक जीवन में कभी–2 हमारा आहार तो संतुलित होता है परंतु स्वच्छ नहीं होता। भोजन को स्वच्छ व हानिकारक कीटाणु –जीवाणु से मुक्त होना आवश्यक है। यदि भोजन को स्वच्छ व हानिकारक जीवाणु हैं तो वे भोजन को विषाक्त व हानिकारक कर देते है। भोजन संरक्षण की विभिन्न विधियों द्वारा हम भोजन में विभिन्न जीवाणुओं

द्वारा भोज्य पदार्थो में किये जाने वाले रासायनिक परिवर्तन को रोकते हैं क्योंकि यह रासायनिक प्रक्रिया ही भोजन को सड़ाती है।

भोज्य पदार्थो के संरक्षण की आवश्यकता

1. कच्चे भोज्य पदार्थो के लिये संरक्षण इसलिए आवश्यक होता है ताकि बेमौसम अर्थात् जिस मौसम में उन फल, सब्जियो की उपज नही होती। उस मौसम में भी उनकी पूर्ति की जा सके।
2. कुछ संरक्षित भोज्य पदार्थ विकास के साधन के प्रतीक के रूप में माने जाते है जैसे – जैम, जैली, स्कैवश आदि
3. फसल के अवसर पर अधिक मात्रा में भोज्य वस्तुओ की उपलब्धि के कारण वे सड़ जाती है अतः इनका संरक्षण करके सड़ने से बचाया जाता है।

भोजन संरक्षण की विधियाँ

1. प्रशीतन (Refrigeration)
2. निर्जलीकरण (By Dehydration)
3. उष्णता द्वारा (By heat)
4. किरणीयन द्वारा (By Irradiation)
5. रासयनिक पदार्थो द्वार (By Chemical)

1. **प्रशीतन –** आर्द्रता एवं उष्णता दोनों ही भोजन को सड़ाने का कार्य करते है। यदि आर्द्रता को हटा दिया जाता है तो वस्तु संरक्षित रह सकती है। परन्तु कुछ वस्तुओं की आर्द्रता को बनाए रखना नितान्त आवश्यक होता है, जैसे – फल, अण्डा, दूध आदि ऐसी वस्तुओं को सरंक्षित रखने के लिए उनकी आर्द्रता के स्थान पर उनकी उष्णता को दूर किया जाता है। भोजन को खराब होन से बचाने के लिए उसे ठण्डे स्थान, बर्फ या ठण्डे पानी में रखा जाता है। घरों में भोज्य पदार्थों को कुछ समय के लिए सुरक्षित रखने के लिए रेफ्रीजरेटर का प्रयोग किया जाता है। व्यापारिक स्तर पर सरंक्षण के लिए कोल्ड स्टोरेज व चिल स्टोरेज का प्रयोग किया है। कोल्ड स्टोरेज का तापक्रम 00 से -30^0F तक होता है। मांस, मछली, मक्खन आदि को कोल्ड स्टोरेज में तथा दूध, अण्डा, पनीर आदि को चिल स्टोरेज में रखा जाता है। कम तापक्रम में पदार्थों की जीवाणु की वृद्धि नही हो पाती और पदार्थ नही सड़ते।
2. **निर्जलीकरण** (Dy Hyddation) भोज्य पदार्थों में आर्द्रता के कारण सड़न क्रिया होती है। यदि आर्द्रता को पूर्णतया दूर कर दिया जाये तो भोज्य पदार्थों को खराब होने से बचाया जा सकता है। पदार्थों में से नमी को सुखाने को निर्जलीकरण कहते है। निर्जलीकरण की क्रिया सूर्य के तेज प्रकाश का प्रयोग करके या विभिन्न उपकरणों द्वारा गर्म हवा पास करके की जा सकती है। टमाटर, मेंथी, पुदीना, गोभी, मिर्च आदि सब्जियों को काटकर धागे में पिरोकर या चादर में धूप में डालकर सुखाया जाता है।

3. **उष्णता द्वारा–** वातावरण के सामान्य तापक्रम में भोजन को नष्ट करने वाले कीटाणु तथा एन्जाइम अपनी वृद्धि तेजी से करते हैं किन्तु यदि ताप अधिक हो तो कुछ हानिकारक जीवाणुओं की वृद्धि नहीं हो पाती क्योंकि उनके लिये यह ताप प्रतिकूल होता है। उष्णता द्वारा सरंक्षण की विधियां पाश्चुराइजेशन तथा स्टेरीलाइजेशन है।

- पाश्चुराइजेशन की प्रक्रिया का प्रयोग मुख्यतः दूध को सुरक्षित रखने के लिये किया जाता है। इसमें दूध को उच्च तापक्रम $162^{0}F$ तक गर्म करते है और फिर उसी तापक्रम पर करीब 15 सेंकड रखकर फिर इसका तापक्रम एकदम कम कर $55^{0}F$ कर दिया जाता है।
- इस विधि द्वारा भोज्य पदार्थों का डिब्बाकरण या टीनीकरण किया जाता है। इसमें भोज्य पदार्थो के जीवाणु नष्ट करने के लिये $212^{o}F$ तापक्रम पर रखकर गर्म करते है तथा डिब्बों को साफ करके, सूखाकर, उबालते पानी में 5–10 मिनट तक डिब्बों को उबालकर सुखाया जाता है और अब भोज्य पदार्थ को इनमें रख दिया जाता है और डिब्बों को कसकर सील बंद कर दिया जाता है। बंद करने के बाद पुनः डिब्बों को 20 मिनट तक उबालकर ठण्डे पानी में डालकर ठण्डा किया जाता है। फिर डिब्बे पोंछकर सुखा लिये जाते है।

4. **किरणीयन द्वारा** – यह मंहगी या अत्यंत वैज्ञानिक विधि है जिसमें परमाणु ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है। इस विधि में विकरण द्वारा परमाणु ऊर्जा का प्रयोग होता है।

5. **रासायनिक पदार्थो द्वारा** – भोज्य पदार्थों में जीवाणु प्रवेश तथा वृद्धि को रोकने के लिये रासायनिक पदार्थों का प्रयोग किया जाता है, जो भोज्य पदार्थों के साथ रासायनिक क्रिया कर जीवाणु प्रवेश तथा वृद्धि को रोकते है। नमक, शक्कर, तेल, राई आदि का प्रयोग हम रोज अपनी रसाई में करते है।

- नमक के द्वारा अचार को सालों सुरक्षित रखा जाता है।
- शक्कर के द्वारा भोज्य पदार्थों का रसाकर्षण दबाव बढ़ाना है, जिससे हानिकारक जीवाणु उत्पन्न नहीं होते है। जैम, जैली, मुरब्बा, स्क्वैश आदि इसी प्रकार संरक्षित किये जाते है।

भोजन का संग्रह

भोजन का संग्रह भी एक तरह से भोज्य पदार्थों का संरक्षण ही है। भोज्य पदार्थों के संग्रहीकरण का अर्थ है, उन्हें अधिक मात्रा में एकत्र करना। संग्रह के उचित साधन न होने के कारण देश में उत्पादित फसल का करीब 30% चूहा, कीड़े–मकोड़ों की भेंट चढ़ जाता है। कुछ भोज्य पदार्थ बहुत जल्दी खराब हो जाते है तथा कुछ प्राकृतिक रूप से अधिक समय तक सही बने रहते है। भोज्य पदार्थों को संग्रहीकरण की दृष्टि से दो भागों में बांटते है।

(अ) <u>जल्दी खराब न होने वाले भोज्य पदार्थों का संग्रह :</u>

- कीटनाशक दवाओं का प्रयोग दालों, अनाजों को संग्रहित करने के लिए किया जाता है, ये दवाये है वैजीन हेवी क्लोराइड, गेमेसीन पावडर, डी.डी.टी.

- फ्यूमीगेशन विधि में रासयनिक पदार्थों – (इथायलीन, डाइब्रोमाइड) का प्रयोग किया जाता है, ये रासयनिक पदार्थ गैस के रूप में परिवर्तित होकर भोज्य पदार्थों को सुरक्षित रखते हैं। इस विधि में वायु अवरोधक बर्तन का प्रयोग किया जाता है।
- घरेलू विधि में भोज्य पदार्थों को सुखाकर आर्द्रतारहित कर बर्तन में रखते समय नीम की सूखी पत्तियां, नमक के टुकड़े, हल्दी की गाठें, साबुत मिर्च आदि का प्रयोग किया जाता हैं, इन चीजों के प्रयोग से स्वास्थ्य को कोई हानि नहीं होती है।
- सभी विधियों में बर्तन में कोई छेद नहीं होना चाहिये, बर्तन का ढक्कन कसकर बंद होना चाहिये।

(ब) <u>जल्दी खराब होने वाले भोज्य पदार्थो का संग्रह</u> –

इन्हें संग्रहित करने के लिए गर्म एवं ठण्डी दो प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है गर्म विधि में जीवाणु को गर्म करके नष्ट किया जाता है जबकि ठण्डी विधि में निम्न तापक्रम पर (रेफ्रिजरेटर में) भोज्य पदार्थों को संग्रहित किये जा सकते है।

पाठ्गत प्रश्न

1. वह कौन सी विधि है जिसमें 0^0–30^0F पर सब्जियों को संग्रहित करते हैं।
   अ. रेफ्रिजरेटर ब. कोल्ड स्टोरेज स. चिल स्टोरेज द. उपर्युक्त में कोई नहीं
2. भोज्य पदार्थों से आर्द्रता को दूर करने की विधियां को –––––––––––––– कहते है।
3. दूध को संरक्षित करने की विधि –––––––––––––––– है।

भोज्य पदार्थ संरक्षण संबंधी भ्रांतियाँ तथा उनका निराकरण – भोज्य पदार्थ का संरक्षण जिससे कि भोज्य पदार्थ को सुरक्षित रखा जा सके। इस संबंध में बहुत सी भ्रांतियाँ हैं।

भ्रांतियाँ

1) प्रायः ये माना जाता है कि भोज्य पदार्थ को प्रशीतन विधि से रखने पर भोज्य पदार्थ तथा फल आदि खराब नहीं होते। पर कभी–कभी ये पदार्थ प्रशीतन विधि का उपयोग करने के बाद भी खराब हो जाते हैं जो कि भ्राँति उत्पन्न करते हैं।

2) कभी–कभी कुछ पदार्थों को निर्जलीकरण विधि से आर्द्रता मुक्त करने पर भी ये खराब हो जाते हैं जो कि भ्राँति उत्पन्न करते हैं कि किन पदार्थों में निर्जलीकरण विधि का उपयोग किया जाये और किन में नहीं।

3) उष्णता विधि के प्रयोग से भोज्य पदार्थ के जीवाणुओं को नष्ट किया जाता है पर इस विधि में, ताप की मात्रा ज्यादा होने से हानिकारक जीवाणुओं के साथ–साथ अन्य उपयोगी पदार्थ जैसे विटामिन आदि भी नष्ट हो जाते हैं।

4) भोज्य पदार्थों के संरक्षण के लिए रासायनिक पदार्थों द्वारा जीवाणुओं की वृद्धि रोकने के लिए उपयोग किया जाता है। पर इन रसायनों से भोज्य पदार्थों की पोषणता में कमी आ जाती है जो कि भ्राँति उत्पन्न करती है।

निराकरण –

भोज्य पदार्थ के संरक्षण से उत्पन्न भ्राँतियों से मुक्त होने के लिए निम्नलिखित निराकरण आवश्यक है।

1. किसी भी भोज्य पदार्थ में कौन सी संरक्षण विधि का उपयोग करना चाहिए इस का ध्यान रखा जाए।
2. जब किसी भोज्य पदार्थ को प्रशीतन विधि से संरक्षण किया जा रहा हो तो इस बात का ध्यान रखा जाये कि उस पदार्थ में शीतलन की आवश्कता है कि नहीं। कभी–कभी कुछ पदार्थों को प्रशीतन विधि से संरक्षण करने पर भी वे खराब हो जाते हैं।
3. भोज्य पदार्थ को अधिक समय तक सूर्य के तेज प्रकाश में न रखा जाए।
4. भोज्य पदार्थ को अधिक ताप पर न रखा जाए, इससे कुछ उपयोगी पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं।
5. ये ध्यान देना आवश्यक है कि किन पदार्थों में किरणीयन द्वारा संरक्षण होना चाहिए क्योंकि इसमें परमाणु उर्जा का उपयोग किया जाता है जोकि भोज्य पदार्थों को नष्ट कर सकता है।
6. भोज्य पदार्थों के संरक्षण के लिए उपयोग किये जाने वाले रासायनिक पदार्थों का परीक्षण किया जाये कि वे भोज्य पदार्थ की पोषकता को नष्ट न करें।

भोज्य पदार्थों में मिलावट एवं पहचान के तरीके :–

विक्रेता भोज्य पदार्थों में जानबूझकर लाभ प्राप्ति हेतु वाह्य पदार्थों की मिलावट करते है। मिलावट अर्थात् भोज्य पदार्थ के मौलिक रूप एवं गुणों में अंतर लाना। मिलावट से पौष्टिकता कम हो जाती है या नष्ट होती है और कई बार भोज्य पदार्थों का स्वरूप अच्छा दिखाई देने लगता है। मिलावट का मुख्य उद्देश्य मात्रा बढ़ाना है। मिलावट करने से वस्तु का भार अधिक हो जाता है जिससे लाभ का प्रतिशत बढ़ जाता है। मिलावट करने से भोज्य पदार्थ विषाक्त हो जाता है और शरीर पर अपना हानिकारक प्रभाव छोड़ते है जिससे कई बिमारियाँ होती है।

भोज्य पदार्थो में मिलाये जाने वाले पदार्थों की सूची

भोज्य पदार्थ	मिलावट
मक्खन	चर्बी, स्टार्च
शुद्ध घी	वनस्पति घी
सरसो का तेल	खनिज तेल, आर्गीमोनी तेल
शहद	गुड़ की चाशनी
चाय पत्ती	उपयोग पत्ती पुनः सुखाकर तथा काले चने की भूसी
अनाज दाले,	मिट्टी, कंकड़, रेत

सूजी	रेत या वालू
मिठाई	चावल की माड़, वासी रोटी
शक्कर	धूल, सफेद बालू, रवा
काली मिर्च	पपीते के सूखे बीज
पिसा धनियां	घोड़े की लीद, स्टार्च
हींग	गोंद
पिसी मिर्च	ईंट का चूरा, रंग वाला बुरादा
नमक	सफेद बालू
हल्दी	लेड क्रोमेंट चूरा
केसर	पटसन के रंगे रेशे
अरहर व चने की दाल	मटर दाल

भोज्य पदार्थों में मिलावट के पहचान के तरीके

भोज्य पदार्थों में मिलावट से बचने के लिये हमें सरकार द्वारा प्रमाणित चिन्हों का ध्यान रखना चाहियें। सरकार भोज्य पदार्थों की गुणवत्ता की जांचकर ही प्रमाणित चिन्ह देती है। I.S.I. चिन्ह यह 1952 के प्रमाण चिन्ह कानून के अन्तर्गत प्रारंभ किया गया। जिन चीजों की गुणवत्ता प्रमाणित हो जाती है, उस सामान पर इस चिन्ह को लगाने की व्यवस्था होती है। इस संस्था के अधिकारी वस्तुओं की गुणवत्ता का निरीक्षण वस्तु के उत्पादन के समय करते है।

एगमार्क (Agmark) इस चिन्ह को किसी वस्तु को देने से पहले वस्तु के भौतिक, रासयनिक गुणों की जांच की जाती है। जब वस्तु के गुणों के विषय में पूर्णरूप से आश्वस्त हो जाते हैं, उस वस्तु के सही नाप – तौल भी प्रमाणित हो जाते है, जब यह चिन्ह दिया जाता है।

अपने रोजाना प्रयोग की वस्तुओं की शुद्धीकरण की जांच छोटे – छोटे प्रयोग द्वारा हम स्वयं भी कर सकते हैं।

पिसी लाल मिर्च – इसमें ईंट का चूरा, पिसी खडिया, रंगीन बुरादा डाला जाता है इसके परीक्षण हेतु गिलास में पानी लेकर लाल मिर्च डालने से बुरादा हल्का होकर ऊपर तैरने लगता है तथा ईंट का चूरा, खडिया भारी होकर नीचे तली में बैठ जायेगा।

काली मिर्च – इसमें पपीते के बीज डाले जाते है। मिलावट से मिर्च की गन्ध कम हो जाती है और खाने पर उसका तीखापन महसूस नहीं होता है।

परखनली में हल्दी पावडर लेकर उसमें तीव्र हाइड्रोक्लोरिज एसिड़ डालें तो उसका रंग वैगनी हो जाता है अब इसमें पानी डालें यदि पानी डालने पर भी रंग बैंगनी ही रहे तो मिलावट है और पानी डालने पर बैगनी रंग उड़ जाये तो मिलावट नही हैं।

हींग – यदि हींग में मिलावट नहीं है तो पानी में आसानी से घुल जाती है, घोल का रंग दूधिया होता है। गोंद, राल मिली होने पर नीचे बैठ जाती है। हींग घुल जाती है।

घी तथा चम्मच – एक चम्मच पिघला घी या मक्खन लें, उसमें एक चम्मच हाइड्रोक्लोरिक एसिड़ डाल दें। इसमें आधा चम्मच शक्कर डाले और 1 मिनट तक हिलाने के बाद 10 मिनट तक रखें। यदि मिलावट होगी तो रंग लाल हो जायेगा।

तेल – तेल में कई प्रकार की मिलावट होती है अतः

1. एक परखनली में ईथर + तेल मिलाकर नमक मिली बर्फ में ठण्डा करें। 5–6 मिनट तक गन्दा या धुंधला दिखे तो अरण्डी का तेल मिला है।
2. तेल और तीव्र नाइट्रिक अम्ल मिलाकर हिलायें। यदि अम्ल डालने पर ऊपरी पर्त का रंग बदलकर लाल व भूरा हो जाये तो आर्गोमीनों की मिलावट है।

दूध – दूध की शुद्धता की जांच –

1 किलो दूध (गाय का) से 50 – 60 ग्राम मक्खन,

1 किलो दूध (भैंस का) 80 – 100 ग्राम मक्खन, और

1 किलो दूध से 150 से 160 ग्राम पनीर बनने पर दूध में पानी न मिले होने को प्रमाणित करता है। दूध को शुद्धता को मापने के लिये लेक्टोमीटर का भी प्रयोग करते हैं।

पाठ्गत प्रश्न

प्र. 8 भोज्य पदार्थ के मौलिक रूप तथा गुणों में अन्तर आना अर्थात् ————————— होना।

अ) सुपाच्य ब) पौष्टिक स) मिलावट द) स्वस्थ

प्र. 9 अनाज तथा दाल में किन पदार्थों को मिलाकर बढ़ाया जा सकता है।

अ) धूल, आटा, खा ब) मिट्टी, कंकड, रेत

स) पपीते के सूखे बीज द) स्टार्च

प्र. 10 घोड़े की लीद किस भोज्य में मिलाया जाता है।

अ) काफी पावडर ब) चाय पत्ती

स) पिसा धनिया द) पिसी हल्दी

इकाई सारांश

- अनाज तथा मोटे अनाज में कार्बोहाइड्रेट अधिक पाया जाता है जबकि दालों में प्रोटीन अधिक होता है। सूखे मेंवे में वसा अधिक होता है।
- दूध को सर्वोच्च आहार माना गया है इसमें वसा, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, व खनिज उचित मात्रा में होते है।
- मांसाहारी लोगों के लिए अण्डा पूर्ण आहार माना गया है।
- मांस जीवों से प्राप्त होने वाला भोज्य पदार्थ है यह अम्लीय होता है।

- हरी सब्जियां प्रकृति से क्षारीय होती है। तने व जड़ों वाले भोज्यों में प्रोटीन तथा खनिजों की अधिकता होती है।
- भोज्य पदार्थ संरक्षण की प्रमुख पांच, विधियां प्रशीतन, निर्जलीकरण, उष्णता द्वारा, किरणीयन द्वारा, रासयनिक पदार्थों द्वारा।
- प्रशीतन विधि में रेफ्रीजरेटर, कोल्ड स्टोरेज तथा चिल स्टोरेज का प्रयोग किया जाता है।
- मिलावट करने से पौष्टिकता कम हो जाती है या नष्ट हो जाती है, मिलावट करने से भोज्य पदार्थों का भार अधिक हो जाता है जिससे लाभ का प्रतिशत बढ़ जाता है।

आत्मपरीक्षण हेतु प्रश्न –

प्र. 1 दूध एक संपूर्ण एवं सर्वोत्तम आहार है? इस कथन की विवेचना कीजिये।

प्र. 2 निम्न भोज्य पदार्थों में उपलब्ध पोषक तत्वों के बारे में समझाइयें।

1. चावल, 2. अण्डा 3. मांस 4. सब्जियां

प्र. 3 भोजन को संरक्षित करना क्यों आवश्यक हैं? भोजन संरक्षण की विधियों का वर्णन कीजिये।

प्र. 4 मिलावट से आप क्या समझते हैं? तथा इसका क्या उद्देश्य है।

प्र. 5 भोज्य पदार्थों में मिलावट से बचने के लिए किन बातों का ध्यान रखना चाहिए तथा रोजाना प्रयोग की जाने वाले वस्तुओं में मिलावट होने पर आप कैसे जांच करेंगें?

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल म.प्र., भोपाल

(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)

डिप्लोमा इन एज्युकेशन (प्रथम वर्ष)

प्रश्न पत्र – द्वितीय

विषय : व्यक्तिगत एवं शालेय स्वच्छता **ईकाई : 6**

विषयांश	उपइकाई – 1	6.1	अर्थ एवं क्षेत्र
		6.2	स्वच्छता सम्बन्धी आदतें
		6.3	पीने के पानी की व्यवस्था एवं स्वच्छता
		6.4	शाला परिसर एवं कक्षाओ की स्वच्छता
	उपइकाई – 2	6.5	शालेय एंव पारिवारिक स्वच्छता का शिक्षा पर प्रभाव।
		6.6	स्वास्थ्य एंव पर्यावरण का सम्बन्ध
		6.7	बालको के स्वास्थ्य का परीक्षण एंव उनका अभिलेख संधारण
		6.8	शालेय मध्यान्ह भोजन में स्वच्छता एंव सावधानियॉ

प्रिय छात्राध्यापक,

पिछली इकाई में आपने भोज्य पदार्थो का संग्रहीकरण एंव संरक्षण की आवश्यकता एंव उनकी विधियॉ, भोज्य पदार्थो में मिलावट एंव पहचान के तरीके आदि का ज्ञान प्राप्त किया। प्रस्तुत इकाई में व्यक्तिगत एंव शालेय स्वच्छता के सम्बन्ध में, स्वच्छता सम्बन्धी आदतें, पीने के पानी की व्यवस्था एंव स्वच्छता, शाला परिसर एंव कक्षाओ की स्वच्छता के विषय में अध्ययन करेगें।

उपइकाई–1

6.1 अर्थ एंव क्षेत्र –

मानव जीवन में व्यक्तिगत स्वच्छता अत्यन्त आवश्यक एंव महत्वपूर्ण है। व्यक्तिगत स्वच्छता के अभाव में छात्र की कार्य क्षमता प्रभावित होती है एंव उसमें हीनभावना विकसित होती है। अतः शिक्षक का यह उत्तरदायित्व है कि प्रतिदिन कक्षा में प्रवेश करते ही वह छात्रों का निरिक्षण कर देखे कि उनकी यूनीफार्म साफ सुथरी, धुली एंव प्रेस की हुई हो। नाखून काटे है अथवा नहीं। बाल ठीक से कढ़े हुए होने चाहिये, दॉंत साफ किये गये हो एवं प्रतिदिन स्नान करके आये हो।

स्वच्छता स्वस्थ जीवन ही एक आवश्यक एवं अपरिहार्य स्थिति है। विद्यालयी वातावरण, जहॉं देश की भावी पीढ़ी का निर्माण होता, में तो स्वच्छता का महत्व और भी बढ़ जाता है।

स्वच्छता की अवधारणा के निषेधात्मक व सकारात्मक दो पक्ष है, निषेधात्मक पक्ष के अन्तर्गत वातावरण को उन अवांछनीय तत्वो से रहित करना है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होते हैं जैसे कूडे–करकट, मलमूत्र, सड़े–गले पदार्थ, कीट–कीटाणु आदि।

स्वच्छता के सकारात्मक पक्ष के अन्तर्गत विद्यालय में ऐसी दशाओं की व्यवस्था करना है जिनके परिणामस्वरूप अस्वच्छता की स्थितियां उत्पन्न ही न हो सके तथा स्वास्थ्यवर्धक वातावरण का निर्माण हो सके यथा – विद्यालय परिसर में वृक्षारोपण प्रकाश एंव ताजा वायु युक्त परिसर आदि की व्यवस्था।

6.2 स्वच्छता सम्बन्धी आदतें –

बुरी आदतें व्यक्ति तथा समाज दोनो के लिये ही हानिकारक होती है। स्वास्थ्य की दृष्टि से देखा जाये तो बुरी आदते रोगाणुओं को जन्म देती है। इससे शरीर की शक्ति का ह्रास होता है। अतः हमें बुरी आदतो को त्यागकर स्वास्थ्य के लिये निम्नलिखित अच्छी आदतो को अपनाना चाहिये –

1. शरीर के विभिन्न अंगो को स्वच्छ रखना –

बालक में स्वच्छता सम्बंधी आदतो का विकास, उनके स्वास्थ्य के लिये अति उपयोगी होता है। जैसे – दॉत, नाक, कान, मुँह, त्वचा, बाल, वस्त्र को स्वच्छ रखना।

1. त्वचा की स्वच्छता – त्वचा का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है। त्वचा में स्वेद ग्रंथियॉ, रक्त के विषैले पदार्थो को लेकर स्वेद के रूप में बाहर निकालती है। स्वेद के अतिरिक्त त्वचा में स्थित तेल की ग्रंथियॉ से एक प्रकार का तैलीय पदार्थ, नलिका द्वारा बाहर निकाला जाता है जो कि त्वचा को चिकना बनाता है । अतः यह नितान्त आवश्यक है कि त्वचा को स्वच्छ रखा जाये। स्वेद ग्रंथियो के मुँह बन्द हो जाने से विभिन्न विकार उत्पन्न हो जाते है।

2. केशों की स्वच्छता – केशो की सफाई भी अत्यन्त आवश्यक है। सिर के केशो को सप्ताह में कम से कम दो बार धोना चाहिये। प्रतिदिन कंघे से केश काढ़ने चाहिए। सिर की त्वचा और केशो को गंदा रखने से जुएँ पड़ जाती है तथा संक्रमण की संभावना बढ़ जाती है।

3. नाखूनों की स्वच्छता – शिक्षक को बालकों के नाखूनों की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये क्योकि नाखूनो का व्यक्तिगत स्वच्छता में महत्वपूर्ण स्थान है। बढ़े हुए नाखूनों में गंदगी भर जाती है, जो कई प्रकार के विषैले कीटाणुओ को जन्म देती है, ये कीटाणु भोजन करते समय बालक के शरीर में प्रवेश कर उसे सग्ण (बीमार) बना देते है।

4. दाँतो की स्वच्छता – दाँतों को स्वस्थ रखने के लिये उनकी नियमित सफाई की जानी चाहिये। दूषित दाँतो में पीड़ा होती है एंव मुँह में दुर्गन्ध आती है। जिससे भोजन का पर्याप्त एंव उपयुक्त चर्वण नही हो पाता है। अतः बालको में प्रतिदिन प्रातः एंव सोते समय ब्रश द्वारा दॉतो की सफाई करने की आदत को विकसित किया जाना चाहिये।

5. गले की स्वच्छता – गले की स्वच्छता नितान्त आवश्यक है। गले की अस्वच्छता एंव अस्वस्थता के परिणामस्वरूप गले में खराश एंव टांसिल्स सम्बन्धी रोग हो जाते है।

6. नेत्रों की स्वच्छता – नेत्र शरीर का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है। नेत्रों को धूल अथवा मेंल से अधिक हानि होती है। नेत्रों की स्वच्छता के लिये नित्यप्रति प्रातः काल ठण्डे जल से नेत्रों को धोने की आदत डालना चाहिये।

छोटे बालकों के पढ़ने के स्थान पर प्रकाश का उचित प्रबन्ध होना चाहिये। पढ़ते समय प्रकाश बायीं ओर से ही आना चाहिये।

जहॉ तक हो बारीक कार्य अथवा पढ़ाई के लिये सूर्य के प्रकाश का उपयोग उपयुक्त होगा। बालको को पास से टेलीविजन देखने से रोकना चाहिये।

7. कर्ण की स्वच्छता – कर्ण की श्रवण शक्ति क्षीण न होने पाये, इसके लिये कानो की सफाई की आवश्यकता होती है। कर्ण की नली की दीवारो में एक प्रकार का मोम जैसा पदार्थ निकलता है जो कि कर्ण के अन्दर धूल इत्यादि को जाने से रोकता है। इसलिए कर्ण में मेंल जमता रहता है यदि कान के मेंल को नहीं निकाला जायेगा तो सुनाई देने में बाधा पड़ेगी।

8. शौच सम्बन्धी आदतें – स्यक्तिगत स्वच्छता में शौच एक आवश्यक प्रक्रिया है। माता–पिता का यह दायित्व है कि बालक को प्रातःकाल उठते ही नियमित रूप से शौच जाने के लिये निर्देशित किया जाना चाहिये। मलत्याग के लिये सर्वोत्तम समय प्रातःकाल है। यह आदत बाल्यावस्था से ही डालनी चाहिये। बालक को प्रातः शौच के लिये भेजना चाहिए। शौच न जाने के अभाव में बालक में आलस्य बना रहेगा तथा उसका मन किसी भी कार्य को करने में नही लगेगा। वह अपने शैक्षिक कार्यो के प्रति भी उदास रहेगा।

यह मलत्याग एक आवश्यक कृत्य है, जिसके द्वारा भोजन पचने के पश्चात जो कुछ अवशेष रह जाता है वह शरीर से त्याग दिया जाता है। अतः बालको को नित्य शौच की आदत डालनी चाहिये।

6.3 पीने के पानी की व्यवस्था एंव स्वच्छता –

भोजन के साथ–साथ जल भी बालको के स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। दूषित जल का प्रयोग करने से रोगो के रोगाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर जाते है और उनमें रोग उत्पन्न करते है। इनमें पेचिश, मोतीझरा तथा अतिसार मुख्य है।

इसके अतिरिक्त पीने का पानी मृदृ होना चाहिये। कठोर जल प्रायः कोष्ठबद्धता उत्पन्न करता है। मेंग्नेशियम तथा अन्य धातुओ के सल्फेट लवणो से पानी में कठोरता उत्पन्न होती है। अतः बालको के लिये विद्यालय में इन दोषो से रहित जल की व्यवस्था होनी चाहिये।

शुद्ध जल स्वच्छ, निर्मल, पारदर्शी, स्वाद रहित, गन्ध रहित एंव वर्ण रहित होता है, साथ ही पीने का पानी लवण रहित एंव कीटाणु एंव जीवाणु रहित होना चाहिये।

विद्यालय में जल का संग्रह – विद्यालयों में शुद्ध जल की व्यवस्था की नितान्त आवश्यकता होती है। इसमें असावधानी होने पर जल दूषित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। विद्यालयों में लोहे या सीमेंण्ट की टंकियो और पीतल या स्टेनलेस स्टील के कलशों में जल रखा जाता है। धातु के बर्तनो में जल गर्म हो जाता है, इस कारण गर्मियो में मटको में जल रखा जाता है।

जिस पात्र में भी जल भरा जाये, उनको सुरक्षित स्थान में उत्तम प्रकार से रखने का प्रबन्ध होना चाहिये। पीने के जल को रखने के लिये स्वच्छ हवादार स्थान होना चाहिये जहाँ पर धूल व गन्दगी न पहुँच सके। पात्र ढ़ककर रखने चाहिये। इन बर्तनों से जल को निकालने के लिए पृथक ही पात्र होना चाहिये, जिससे जल को निकालकर पीने के पात्र में दे दिया जाये। अगर टंकी या मटके में नल लगवा दिये जाये तो सबसे उत्तम है। इन बर्तनों को नित्यप्रति स्वच्छ रखना चाहिए। बर्तनों में प्रतिदिन ताजा व स्वच्छ जल भरना चाहिए।

पीने के पानी की स्वच्छता –

विद्यालय में शुद्ध जल की व्यवस्था अत्यावश्यक है। जल को शुद्ध करने के लिये निम्न क्रियाओ को प्रयुक्त करना चाहिये –

1. भौतिक।
2. रासायनिक।
3. यान्त्रिक।

1. भौतिक – इसके अन्तर्गत दो विधियॉ है –

1. जल का उबालना 2. स्त्रवण

जल को उबालने से उसके रोगो के जीवाणु नष्ट हो जाते हैं, लवण नीचे बैठ जाते हैं। विषैली गैसें भी जल से निकल जाती है। इस विधि का प्रयोग विद्यालय के लिये उपयोगी नही है, किन्तु घरेलू उपयोग के लिये प्रयोग में लाया जा सकता है।

स्त्रवण एक विशेष प्रकार के यन्त्र द्वारा होता है। इस क्रिया से पहले जल उबालकर उसकी वाष्प बनाते है। फिर ठण्ड पहुँचाकर वाष्प को जल में बदल दिया जाता है। समुद्र के जल को पीने योग्य बनाने के लिये इसी विधि का प्रयोग किया जाता है।

2. रसायनिक क्रियाऐं – इस क्रिया द्वारा जल को शुद्ध करने के लिये दो प्रकार के रसायनिक प्रयोग में लाये जाते है–

1. अवक्षेपक – अवक्षेपक जिसकी रसायनिक क्रिया से जल में सम्मिलित अशुद्धियॉ केवल नीचे बैठ जाती है।

2. जीवाणु नाशक – जीवाणु नाशक रसायनों के प्रयोग से जीवाणु तथा अन्य ऐन्द्रिक वस्तुएँ भी नष्ट हो जाती है। इसके लिये फिटकरी, चूना एंव निर्मली का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त पोटेशियम परमेंगनेट, वलीचिंग पावडर, क्लोरीन आदि रसायन भी प्रयोग में लाये जाते है। विद्यालय में इनका प्रयोग सुगमतापूर्वक किया जा सकता है।

3. यान्त्रिक क्रिया – जनता के प्रयोग के लिए जल की शुद्धि प्रायः बड़े–बड़े तालाबो में कंकड़, पत्थर तथा रेतिया आदि डालकर की जाती है।

6.4 शाला परिसर एंव कक्षाओ की स्वच्छता –

प्रत्येक बालक का अपने घर के पश्चात् अधिकांश समय विद्यालय में व्यतीत होता है। ऐसी स्थिति में विद्यालय का वातावरण पर्याप्त स्वास्थ्यप्रद होना चाहिए। शालेय स्वच्छता की ओर विद्यालय शिक्षक एंव छात्र सभी के द्वारा ध्यान दिया जाना चाहिए।

शालेय स्वच्छता का अर्थ विद्यालय की स्वस्थ वातावरण में स्थिति, शाला के आस–पास, परिसर, कमरो की स्वच्छता, मूत्रालय एंव शौचालय की स्वच्छता, पीने के पानी की व्यवस्था तथा शिक्षक सहयोग से लिया जाना है। शालेय स्वच्छता का सम्बन्ध शाला और उसके आस–पास के स्वच्छ वातावरण से है। शाला परिसर एक व्यापक शब्द है, जिसके अन्तर्गत इमारत, खेल के मेंदान, कक्षाएँ, पुस्तकालय, छात्रावास, साजसज्जा, प्रयोगशालाये, फर्नीचर सभी कुछ सम्मिलित है।

विद्यालय की स्थिति का प्रभाव विद्यालय की पूर्ण शैक्षिक व्यवस्था एंव छात्रों के शारीरिक एंव मानसिक विकास पर पड़ता है।

विद्यालय केवल वह स्थान नही है जहॉ परम्परागत विषयो का शिक्षण परम्परागत ढंग से किया जाता है वरन् यह बालक का घर जैसा होना चाहिए जहॉ वह अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षो को सुविधापूर्वक व्यतीत कर सके तथा अपने को भविष्य में सफल व सुखी जीवन के लिये तैयार कर सके।

1. शाला की स्थिति और आसपास की सफाई – शाला की स्वच्छता के लिये पहली अनिवार्य बात यह है कि वह नगर के अस्वास्थ्यकारी वातावरण से पर्याप्त दूर हो। विद्यालय भवन किसी कब्रिस्तान, शमशान, बूचड़खाना के निकट नही होना चाहिये।

विद्यालय में प्रयोगशालाओ का बहुत महत्व है। इनके द्वारा बालक क्रिया करके व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते है। कमरो का फर्श भी पक्का होना चाहिए। शारीरिक एंव सांस्कृतिक उन्नति का महत्व मानसिक या बौद्धिक विकास से कम नही है। अतः इसके लिये हॉल की व्यवस्था भी होनी चाहिये।

सामान्य कक्षा–कक्षों का आकार व माप छात्रों की संख्या के आधार पर मान्य होना चाहिये। प्रत्येक कक्ष में दीवार पर बड़ा श्यामपट एंव शैक्षिक सामग्री रखने के लिये अल्मारी होना चाहिये। कक्षो में हवा एंव रोशनी के लिये पर्याप्त खिड़कियॉ एंव रोशनदान होना चाहिये।

2. शाला परिसर की सफाई – प्रतिदिन कक्षों की सफाई की जानी चाहिये। प्रत्येक कक्ष के सामने कूड़ेदान होना चाहिये तथा बालको को फटे कागज, फलो के छिलके, मूंगफली के छिलके आदि इन कूड़ेदान में ही डालने के लिये कहा जाना चाहिये। इसी प्रकार से शिक्षक कक्ष पुस्तकालय कक्ष, कार्यालय आदि कक्षो के सामने भी कूड़ेदान रखे जाने चाहिये।

3. शाला एंव कक्षाओं की सफाई – शाला एंव कक्षाओं की सफाई नियमित रूप से प्रतिदिन की जाना चाहिये। यदि शाला में दो पालियॉ लगती हो तो दो बार सफाई की व्यवस्था होनी चाहिये। सप्ताह में एक बार कक्षाओं एंव बरामदों की धुलाई भी की जाना चाहिये। दरवाजों, खिड़कियों और रोशनदान की जमी धूल एंव गन्दगी भी समय–समय पर निकालते रहना चाहिये।

4. मूत्रालय एंव शौचालय की सफाई – विद्यालयो में बालको एंव शिक्षको के लिये पृथक–पृथक मूत्रालय एंव शौचालय अवश्य होना चाहिये। यह विद्यालय प्रांगण के किसी किनारे पर निर्मित किये जाने–चाहिये ताकि दुर्गन्ध और गन्दगी सभी जगह न फैले। मूत्रालय एंव शौचालय में पानी की व्यवस्था भी होनी चाहिये। इनकी प्रतिदिन पानी और फिनाइल से धुलाई होनी चाहिये।

5. शालेय स्वच्छता में शिक्षक छात्र सहयोग – शालेय स्वच्छता में शिक्षक एंव छात्रों का योगदान महत्वपूर्ण होता है, अतः उनका सहयोग लिया जाना चाहिये। इस कार्य में सहयोग के लिये विद्यालय में शिक्षको एंव बालको की एक स्वच्छता समिति गठित की जाना चाहिये।

पाठगत् प्रश्न –

1. व्यक्तिगत स्वच्छता से आप क्या समझते है ?
2. नाखून की स्वच्छता क्यो आवश्यक है ?
3. शाला में पीने के पानी की व्यवस्था एंव स्वच्छता के लिये आवश्यक बातो का उल्लेख कीजिये?

उपइकाई – 2

6.5 शालेय एंव परिवारिक स्वच्छता का शिक्षा पर प्रभाव –

समाज में स्थापित विभिन्न विद्यालयो में विभिन्न परिवारो के बालक–बालिकायें अध्ययन करने आते हैं। सामान्यतया अधिकांश परिवारों में बच्चो के स्वास्थ्य की ओर कोई ध्यान नही दिया जाता है।

शालेय एंव पारिवारिक स्वच्छता से बालको को स्वस्थ वातावरण मिलता है। जिसका उनके स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

प्रदूषण एंव संक्रामक बीमारियो आदि से भी बचा जा सकता है। शैक्षिक गतिविधियॉ भी भली भांति संचालित करने में सुविधा रहती है।

6.6 स्वास्थ्य एंव पर्यावरण का सम्बन्ध –

प्रत्येक जीव अपने चारों ओर के वातावरण अर्थात बाह्य संसार पर निर्भर रहता है। जिसे सामान्य भाषा में उसका पर्यावरण कहा जाता है। प्रत्येक प्राणी अपने पर्यावरण से प्रभावित होता है स्वच्छ पर्यावरण प्राणी के उत्तम स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। पर्यावरण में प्रदूषण प्राणी के लिये घातक होता है।

पर्यावरण प्रदूषण से शारीरिक अस्वस्थता तो होती है साथ ही मानसिक समस्याऍ भी सामने आती है जैसे तीव्र ध्वनि।

पर्यावरण और वातावरण को स्वच्छ, निर्मल एंव शुद्ध रखने की नितान्त आवश्यकता है।

1. प्रतिदिन प्रत्येक कक्षा के बालको से अपनी–अपनी कक्षाओ की सफाई करायी जानी चाहिये तथा टाट–पट्टी आदि बिछवाई जानी चाहिये। श्यापपट्ट की सफाई तथा शाला प्रांगण की स्वच्छता भी बालको के सहयोग से करायी जानी चाहिये।

2. यदि पेयजल की व्यवस्था विद्यालय में नही है तो शाला के बड़े और समझदार बालको से सार्वजनिक नल, हैंडपम्प या कुओ से पानी भरवाया जा सकताहै, किन्तु ये कार्य शिक्षक की देखरेख में ही होने चाहिये।

3. शाला की सफाई और पेयजल व्यवस्था हेतु बालको की टोलियॉ बना दी जाना चाहिये जो अपने–अपने क्रम से सफाई व पीने के पानी भरने का कार्य नियमित रूप से करे। बालको को 'संर्वोत्तम कार्य करने' हेतु पुरस्कृत कर प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।

4. विद्यालय में शौचालय तथा मूत्रालय न होने की स्थिति में स्थानीय लोगों का सहयोग लेकर उनका निर्माण कराया जाना चाहिये तथा उनकी सफाई की व्यवस्था भी करनी चाहिये।

5. शाला के बालकों द्वारा शिक्षको के दिशा–निर्देशन में सामूहिक रूप से गाँवों की सफाई, रास्तों की सफाई, खेल मेंदानो की सफाई आदि भी कभी–कभी कराई जानी चाहिये।

6. शिक्षको द्वारा बालकों को सफाई, स्वच्छता और समाज सेवा के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये तथा आंतरिक मूल्यांकन में इसके लिये अभिभार अंक दिये जाने चाहिये।

छात्रों के सहयोग का परीक्षण एंव उनका अभिलेख – शाला की स्वच्छता रखने में जिन छात्रों का सहयोग हो उनका विधिवत् अभिलेख रखा जाना चाहिए। छात्रों की व्यक्तिगत स्वच्छता और शालेय स्वच्छता का समय–समय पर परीक्षण किया जाना भी आवश्यक है। बालकों में इस प्रकार स्वस्थ आदतों का निर्माण होता है तथा उनमें सामूहिक रूप से कार्य करने की भावना भी विकसित होती है। सहयोग की भावना के विकास के फलस्वरूप वे परस्पर मिल–जुलकर रहते हैं, अध्ययन करते हैं और अपने जीवन को सफल बनाने में समर्थ बनते हैं।

छात्रों के स्वास्थ्य का परीक्षण एंव उनका अभिलेख – छात्रों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये उनके स्वास्थ्य का शिक्षको द्वारा समय–समय पर निरीक्षण किया जाना चाहिये। इसके साथ–साथ बालकों के डॉक्टरी परीक्षण भी विद्यालय में समय–समय पर कराये जाने चाहिये, क्योकि इस प्रकार के परीक्षण से बालको में पनपने वाले विभिन्न रोगो की जानकारी उनकी प्रारम्भिक अवस्था में ही हो जाती है। अतः उनकी रोकथाम या चिकित्सा व्यवस्था भी सरलता से की जाना सम्भव होता है। यदि कोई बालक संक्रामक रोग से ग्रसित है तो ऐसे छात्र को छॉटकर विद्यालय से उसे अवकाश एंव इलाज की सुविधा दिलाई जा सकती हैं। डॉक्टरी परीक्षण से शारीरिक एंव मानसिक रूप से अस्वस्थ बालको का भी पता चल जाता है, साथ ही विद्यालय, अभिभावक, माता–पिता को बालको के स्वास्थ्य की प्रगति अथवा अवनति का सही–सही ज्ञान हो जाता है।

यह ज्ञात करने के लिये कि छात्रों का स्वास्थ्य और विकास ठीक प्रकार से हो रहा है अथवा नही, उनके स्वास्थ्य का योजनाबद्ध परीक्षण कराना नितान्त आवश्यक है। इसके लिये छात्रों की लम्बाई,

भार, सीने का नाप, हाथ–पैर, घुटनों आदि की सुडौलता आदि का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक होता है। बालको के सामान्य स्वास्थ्य का परीक्षण करते समय उनके वस्त्र, त्वचा, बाल, ऑख, कान, नाक, दॉत, गला, ह्रदय, फेफड़े, नाखून आदि की भी बड़ी सावधानी से जॉच करनी चाहिये। छात्रों के आसनो पर भी नजर रखना आवश्यक रहता है।

विद्यालय में छात्रों के स्वास्थ्य का परीक्षण तीन प्रकार से सम्भव होता है –

1. दैनिक स्वास्थ्य निरीक्षण,
2. नियमित डॉक्टरी परीक्षण,
3. विशिष्ट डॉक्टरी परीक्षण।

1. दैनिक स्वास्थ्य निरीक्षण – छात्रों का दैनिक स्वास्थ्य निरीक्षण कक्षाध्यापक, विषय शिक्षक, संस्था प्रधान एंव शारीरिक शिक्षा के शिक्षक द्वारा नियमित रूप से किया जाना चाहिये।

2. नियमित डॉक्टरी परीक्षण – छात्रों का नियमित मासिक या त्रैमासिक डॉक्टरी परीक्षण अवश्य कराया जाना चाहिये। इसके लिये चिकित्सक की व्यवस्था की जानी चाहिये। चिकित्सक द्वारा शारीरिक शिक्षा, व्यायाम शिक्षक और कक्षाध्यापकों की सहायता से कक्षावार नियमित डॉक्टरी परीक्षण कराना चाहिये। शारीरिक, मानसिक दोष या रोग की पहचान होने पर उचित चिकित्सीय परामर्श से उनके उपचार की व्यवस्था कराई जानी चाहिये।

3. विशिष्ट डॉक्टरी परीक्षण – छात्रों की शारीरिक तथा अन्य दुर्बलताओ, रोगो आदि का ठीक–ठीक पता चिकित्सक ही लगा पाते है, किन्तु आजकल एक सामान्य चिकित्सक उन सभी बातो का पता नही लगा पाते जो शरीर के विभिन्न अंगो में रोग के रूप में व्याप्त रहते है। इसके लिये डॉक्टरो की टीम की आवश्यकता पड़ती है। नाक, कान, गला, हड्डी, ह्रदय, क्षय एंव संक्रामक रोगो के अलग–अलग चिकित्सक होते है। अतः कम से कम वर्ष में एक बार छात्रों का चिकित्सको के दल से विशिष्ट स्वास्थ्य निरीक्षण कराना चाहिये।

छात्रों के डॉक्टरी परीक्षण का अभिलेख – छात्रों के नियमित डॉक्टरी परीक्षण तथा विशिष्ट परीक्षण का अभिलेख रखा जाना चाहिये ताकि उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी विद्यालय, माता–पिता और दुबारा परीक्षण करते समय देखी जा सके। चिकित्सा एंव रोग निदान की दृष्टि से भी अभिलेख रखा जाना आवश्यक है।

इसके लिये विद्यालय के प्रत्येक छात्र के पास एक कार्ड उसके अभिलेख के रूप में रहना चाहियें, जिस पर उसके निजी विवरण तथा उसके स्वास्थ्य सम्बन्धी इतिहास, प्रगति, अवनति, रोग आदि की सूचना अंकित की जाना चाहिये। एक कार्ड प्राथमिक स्तर, दूसरा माध्यमिक और तीसरा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर तैयार किया जाना चाहिये। शिक्षक एंव चिकित्सक द्वारा इस कार्ड की पूर्तियॉ की जाना चाहिये। इस कार्ड पर शिक्षक, पालक और चिकित्सक तथा संस्था प्रधान के हस्ताक्षर व टिप्पणी भी अंकित की जानी चाहिये।

विद्यालय में स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम प्रभावशाली बनाने हेतु निम्नांकित कदम उठाये जा सकते है –

1. नियमित, मासिक और वार्षिक स्वास्थ्य निरीक्षण कार्य योजना बनाकर।

2. सभी शिक्षको और छात्रों को इस कार्य योजना में अनिवार्य रूप से शामिल कर।

3. सभी शिक्षको और कक्षा शिक्षको द्वारा नियमित रूप से स्वास्थ्य निरीक्षण सम्पन्न कर अभिलेख तैयार करने की व्यवस्था द्वारा।

4. डॉक्टरो द्वारा मासिक निरीक्षण का आयोजन कर तथा परीक्षण अभिलेख रखकर।

5. विशिष्ट डॉक्टरो – नाक, कान, गला, ऑख, आदि से वार्षिक स्वास्थ्य परीक्षण सम्पन्न कराकर।

6. स्वास्थ्य परीक्षण का समीक्षात्मक मूल्यांकन सम्पन्न कर।

7. अभिभावको को बालको के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में सूचना देकर।

बालको के स्वास्थ्य का परीक्षण एंव उनका अभिलेख संधारण –

छात्रों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये उनके स्वास्थ्य का शिक्षको द्वारा समय समय पर निरीक्षण किया जाना चाहिये। इसके साथ–साथ बालको के डॉक्टरी परीक्षण विद्यालय में समय–समय पर कराये जायें।

विद्यालय में छात्रों के स्वास्थ्य परीक्षण का निम्नानुसार महत्व है –

1. छात्रों का दैनिक स्वास्थ्य निरीक्षण शिक्षको द्वारा करने पर उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने में सुविधा, सलाह व उपचार के सुझाव प्राप्त हो सकेंगे।

2. नियमित, मासिक या त्रैमासिक डॉक्टरी निरीक्षण द्वारा बालको के शारीरिक व मानसिक विकास, दोषो की पहचान तथा आवश्यक चिकित्सीय परामर्श सम्भव हो सकेगा।

3. विशिष्ट डॉक्टरी परीक्षण द्वारा छात्रों की शारीरिक व अन्य दुर्बलताओ, रोगो की जानकारी मिलना तथा चिकित्सा सम्बन्धी सलाह आदि प्राप्त होगी।

6.8 शालेय मध्यान्ह भोजन में स्वच्छता एंव सावधनियॉ –

केन्द्र शासन द्वारा प्राथमिक शिक्षा के लोक व्यापीकरण के लिये मध्यान्ह भोजन व्यवस्था लागू की गई थी। इसका उद्देश्य अधिक से अधिक संख्या में बच्चो को विद्यालय आने के लिये प्रेरित करना था।

देश में कुछ राज्य सरकारो द्वारा मध्यान्ह भोजन योजना पूर्व से ही कार्यान्वित की जा रही है। वर्ष 1996–97 के लिये दोपहर की भोजन की योजना के अन्तर्गत 7.2 करोड़ बच्चो को लाभान्वित करने का लक्ष्य रखा गया था। इसके लिये 800 करोड़ रू. का प्रावधान किया गया था।

केन्द्र सरकार के द्वारा दसवी पंचवर्षीय योजना में प्राथमिक शिक्षा की विभिन्न योजनाओ के लिए 30 हजार करोड़ रूपये का बजट रखा गया है। इस योजना में मध्यान्ह भोजन भी शामिल है। इसके बावजूद मानव संसाधन विकास मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2003–04 के दौरान

मध्यप्रदेश में कक्षा–1से 5 तक स्कूल बीच में छोड़कर जाने वाले छात्रों की सकल दर 32.38 फीसदी है।

केन्द सरकार के द्वारा नीति का क्रियान्वयन ठीक तरह से नही हो पाया है। कभी शाला में राशन की कमी तो कहीं भोजन बनाने की व्यवस्था का अभाव, तो कहीं निर्धारित राशि के न आने से यह कार्यक्रम पूर्णरूप से सफलता की तरफ अग्रसर नही हो पाया है, लेकिन इसके बावजूद भी केन्द्र सरकार के द्वारा मध्यान्ह भोजन कार्यक्रम स्कूली छात्रों के लिए एक महत्वपूर्ण पहलू हैं। केन्द्र सरकार के द्वारा वर्तमान में मध्यान्ह भोजन पर 5,900 करोड़ रूपये खर्च करने का प्रावधान है।

शालेय मध्यान्ह भोजन तैयार करते समय स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिये जैसे :–

1. वह स्थान जहाँ भोजन बनाने की तैयारी की जाती है अथवा भोजन पकाया जाता है, स्वच्छ होना चाहिये।
2. खिड़कियों पर जाली लगी होनी चाहिये ताकि छिपकली, बिल्ली, व अन्य कीटो से बचाव हो।
3. भोजन रखने, पकाने वाले बर्तन प्रतिदिन साफ किये जाने चाहिये।
4. भोजन पकाने के पश्चात स्थान की धुलाई होना चाहिये।
5. भोजन पकाने एंव परोसने का कार्य जो भी महिला एंव पुरूष कर रहे हो उनके वस्त्र साफ हो, नाखून कटे हो, बाल बॅधे होने चाहिये।
6. बच्चो को जिन बर्तनो में भोजन दिया जाये वह स्वच्छ होना चाहिये।
7. भोजन पकाने एंव पीने के लिये स्वच्छ जल का प्रयोग करना चाहिये।
8. भण्डार हेतु सामग्री हवा बन्द डिब्बों में रखनी चाहिये।
9. भोजन करने से पूर्व बालको को समझाना चाहिये कि वह साबुन से हाथ धोकर भोजन करें। उनके नाखून कटे होने चाहिये। उन्हे यह ज्ञान कराया जाना चाहिये कि गन्दे हाथो से भोजन करने पर पेट में रोग के रोगाणु पहुँचकर शरीर को रोगी बना देते है।
10. भोजन करने के पश्चात् पुनः हाथ एंव मुँह धोने की आदत उन्हें डालनी चाहिये।
11. भोजन कर चुकने के पश्चात् उस स्थान की धुलाई एंव सफाई होनी चाहिये जहॉ भोजन किया गया है।

मध्यान्ह भोजन शासन की एक उत्तम योजना है इससे बालको में सामुदायिकता की भावना विकसित होती है एंव शिक्षको के माध्यम से कुछ अच्छी आदतो का विकास होता है।

इकाई सारांश –

1. मानव जीवन में व्यक्तिगत स्वच्छता आवश्यक एंव महत्वपूर्ण है। इसके अभाव में छात्र की कार्यक्षमता प्रभावित होती है एंव उसमें हीनभावना विकसित होती है।
2. स्वास्थ्य को उत्तम रखने के लिये विद्यार्थियो में कुछ अच्छी आदतों को विकसित किया जाना चाहिये जैसे – शरीर को स्वच्छ रखना, त्वचा, केश, ऑख,कान, दॉतो, नाखूनों की नियमित स्वच्छता, शौच सम्बन्धी आदतें आदि।
3. पीने के लिये शुद्ध एंव मृदु पानी की व्यवस्था होनी चाहिये। पीने का पानी ढ़ँककर रखना चाहिये। पानी संग्रह किये जाने वाले बर्तन एंव टंकियां स्वच्छ होने चाहिये।

4. शाला परिसर एंव कक्षों की स्वच्छता के लिये शिक्षक छात्र समिति गठित की जानी चाहिये।
5. विद्यालय में समय–समय पर छात्रों के स्वास्थ्य का परीक्षण करना चाहिये। स्वास्थ्य रिपोर्ट विस्तार से लिखी जानी चाहिये।

पाठ्गत प्रश्न –

प्र.4 दैनिक स्वास्थ्य परीक्षण किस प्रकार किया जा सकता है ?
प्र.5 शालेय स्वच्छता शिक्षा को प्रभावित करती है ? लिखिये।
प्र.6 भोजन करने से पूर्व छात्रों को स्वच्छता सम्बन्धी किन आदतों की जानकारी देनी चाहिए ?

आत्म परीक्षण प्रश्न –

प्र.1 विद्यालय में पीने के पानी की क्या व्यवस्था होना चाहिये ?
प्र.2 शालेय स्वच्छता में शिक्षक छात्र सहयोग का क्या महत्व है ?
प्र.3 छात्रों का स्वास्थ्य परीक्षण किस प्रकार और क्यो करवाना चाहिये ?
प्र.4 पीने के पानी को शुद्ध करने के लिये किन विधियो को प्रयोग में लाना चाहिये ?

पाठ्गत प्रश्नों के उत्तर –

उ.1 स्वयं की शारीरिक स्वच्छता जैसे प्रतिदिन स्नान, नाखुन कटे होना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना एवं प्रतिदिन ब्रश करना आदि।
उ.2 नाखूनों में गंदगी भर जाती है। अतः भोजन करते समय विषेले कीटाणु शरीर में पहुँचकर शरीर को रोगी बना देते है।
उ.3 शाला में पीने के पानी की टंकी अथवा बर्तनों की सफाई समय–समय पर होनी वाहिये एवं शौचालय पीने के पानी से दूर होना चाहिए।
उ.4 कक्षाध्यापक, विषय शिक्षक, संस्थान प्रधान अथवा शारीरिक शिक्षा के शिक्षक द्वारा छात्रों का दैनिक स्वास्थ्य परीक्षण प्रतिदिन किया जाना चाहिये।
.5 विद्यालय का स्वस्थ वातावरण बालक के स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव डालता है एवं संक्रमण से सुरक्षित रहते है।

उ.6 भोजन करने से पूर्व हाथों की सफाई करनी चाहिये एवं भोजन करने का स्थान स्वच्छ होना चाहिये।

सूचकांक–डी.एड./1/2/7

पत्राचार पाठ्यक्रम

माध्यमिक शिक्षा मण्डल म.प्र., भोपाल

(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)

डिप्लोमा इन एज्युकेशन (प्रथम वर्ष)

प्रश्न पत्र – द्वितीय

विषय : सामुदायिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य **ईकाई : 7**

विषयांश	उप इकाई – 1	7.1 अर्थ एंव क्षेत्र
		7.2 धूम्रपान, मदिरापान, पानमसाला, एंव अन्य पदार्थो के सेवन से हानियॉ
		7.3 प्राथमिक उपचार
		7.4 टीकाकरण
	उप इकाई – 2	7.5 संकामक रोग, उनके फैलने के कारण एंव

रोकथाम के उपाय

7.6 यौन संक्रमित रोग, कारण एंव बचाव

7.7 शिक्षा का योगदान

प्रिय छात्राध्यापक,

पिछली इकाई में आपने व्यक्तिगत एंव शालेय स्वच्छता के विषय में अध्ययन किया। इस अध्याय में आप सामुदायिक शिक्षा एंव स्वास्थ्य के अन्तर्गत प्राथमिक उपचार, टीकाकरण, संक्रामक रोग, उनके फैलने के कारण एंव रोकथाम के उपाय के विषय में अध्ययन करेगें।

उप इकाई – 1

7.1 सामुदायिक स्वास्थ्य का अर्थ एंव क्षेत्र –

सामुदायिक स्वास्थ्य का आशय समुदाय के जनस्वास्थ्य से है। समुदाय तभी स्वस्थ रह सकता है जब सामुदायिक स्वास्थ्य सेवांए संतोषजनक हो। सामुदायिक स्वास्थ्य व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की अमूल्य निधि है। भारत जैसे लोककल्याण राज्य के लिए जन–सामुदायिक स्वास्थ्य का विशेष महत्व है। जन–स्वास्थ्य सेवाएं एंव कार्यक्रम सामुदायिक स्वास्थ्य को उत्तम एंव सफल बनाए रखने में अहम् भूमिका निर्वाह करते है।

सामुदायिक स्वास्थ्य से अभिप्राय स्वास्थ्य सम्बन्धी उस ज्ञान एंव जन–स्वास्थ्य सेवाओ से है जो व्यक्ति एंव समुदाय को स्वस्थ बनाने, उनमें अच्छी आदतें निर्माण करने तथा उन्हें सामान्य एंव संक्रामक रोगों से मुक्त करने में सहायक होता है। समाज में उपलब्ध जनस्वास्थ्य सेवा के द्वारा व्यक्ति और समुदाय में अच्छी आदतों और दृष्टिकोणों का निर्माण किया जाता है, समाज को सामान्य रोग से मुक्त कर स्वस्थ रहने का अवसर उपलब्ध कराया जाता है तथा विभिन्न परिस्थितियो में उत्पन्न होने वाले संक्रामक रोगों से बचाने, प्रभावित होने की स्थिति में रोगमुक्त करने का समुचित प्रयास किया जाता है।

'सामुदायिक स्वास्थ्य' दो शब्दों के योग से बना है – 'समुदाय' और 'स्वास्थ्य'। इसलिए इस क्षेत्र में कार्य करने वाले को समुदाय और स्वास्थ्य दोनों के सम्बन्ध में ज्ञान कराना आवश्यक है। साधारणतः स्वास्थ्य सेवकों को स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा दी जाती है। उन्हें समुदाय तथा सामाजिक ज्ञान भी होना चाहिए तभी स्वास्थ्य–सेवा का कार्य भली–भॉति सफल हो सकता है। सामुदायिक स्वास्थ्य के सन्दर्भ में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा है, 'स्वास्थ्य रोगों एंव शारीरिक निर्बलताओं की अनुपस्थिति मात्र ही नही है, वरन् शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की भी पूर्ण अवस्था है।'

सामुदायिक स्वास्थ्य का क्षेत्र – सामुदायिक स्वास्थ्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसके अन्तर्गत स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान, जन–स्वास्थ्य सेवाएं, जन–स्वास्थ्य अभियांत्रकी, भौतिक, जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण, व्यक्ति और समुदाय की स्वास्थ्य सम्बन्धी आदतें एंव दृष्टिकोण, नैतिक भावनाएं, वंशानुक्रम आदि सभी सम्मिलित है।

पर्यावरण का प्रभाव मानव जीवन, स्वास्थ्य तथा विकास पर पड़ता है। मनुष्य अपने चारो ओर की भौतिक, जैविकीय, सामाजिक सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है एंव अतः कहा जाता है कि मनुष्य अपने पर्यावरण की उपज है। वायु, भोजन, जल, आवास, मौसम, जलवायु भौतिक पर्यावरण से सम्बन्धित है। मनुष्य इनके सम्पर्क में बराबर रहता है। ये उसके स्वास्थ्य और आयु पर प्रभाव डालते है। जैविक पर्यावरण का आशय है प्रकृति द्वारा जन्म दिए जीवो और पौधों से उत्पन्न पर्यावरण। मनुष्य पशुओं, जीवाणुओं, कीटाणुओं और पेड़–पौधों आदि के सम्पर्क में आकर उनसे भी प्रभावित होता है।

व्यक्ति एक सुनिश्चित सामाजिक पर्यावरण में जन्म लेता है, पलता है और अपना विकास करता है। वह सामाजिक ढॉचे से प्रभावित होता है। इसमें सांस्कृतिक मूल्य, रीति–रिवाज, विश्वास, अभिवृत्तियाँ, आर्थिक, राजनीतिक, वैधानिक संस्थाएं, समूह, संगठन आदि आते है जिनका व्यक्ति के सामाजीकरण पर प्रभाव पड़ता है। संस्कृति की धारणाएं भी जन–स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। रोगों के उन्मूलन व रोकथाम में सामाजिक व संस्कृति के अवरोध आड़े आते है। ग्रामीण क्षेत्र में गोबर के ढ़ेर, सड़े–गले पदार्थो की गन्दगी, खुले क्षेत्रो वाले शौचालय जन–स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालते है। वंशानुक्रमण, संक्रमण व संसर्ग के कारण फैलने वाली बीमारियों का जन–स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़ता है।

सामुदायिक स्वास्थ्य के क्षेत्रान्तर्गत सामान्य स्वास्थ्य, अभिरक्षा, चिकित्सा, स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान, शुद्ध पेयजल, शौचालय एंव मूत्रालय की व्यवस्था एंव स्वच्छता, सार्वजनिक स्थानों, स्थलों, सड़क, पार्क की सफाई, पोषण, मध्यान्ह भोजन, आम जनता को उपलब्ध खाद्य पदार्थो की आपूर्ति की देख–रेख, संक्रामक रोग एंव उनकी रोकथाम, विद्यार्थियों व विद्यालय की स्वच्छता तथा स्वास्थ्य की देख–रेख, समाज को निरोग रखना एंव उनमें अच्छी आदतो का निर्माण आदि सभी शामिल है।

7.2 धुम्रपान, मदीरापान, पान मसाला एवं अन्य पदार्थों के सेवन से हानियाँ – नशीले पदार्थो का उपयोग करने की परम्परा मानव समाज में प्राचीनकाल से चली आ रही है। आधुनिक युग में इसका प्रयोग बहुत अधिक बढ़ गया है। इनका प्रयोग बच्चे, प्रौढ़ और वृद्ध सभी करते है। वास्तव में नशीले पदार्थो के सेवन का स्वास्थ्य पर बहुत अधिक दुष्प्रभाव पड़ता है। इसके कारण हजारों लोग अपनी जीवन–लीला समाप्त कर लेते है तथा लाखों परिवार बर्बाद हो जाते है। नशा करना बुरी आदत है। धर्मो एंव नैतिक आचरण नियमो के द्वारा भी नशा करना वर्जित किया गया है। नशीले पदार्थों के सेवन से अनेक सामाजिक बुराईयाँ और कठिनाईयां भी उत्पन्न हो रही हैं। आज नशे की प्रवृत्ति बच्चों में भी तेजी के साथ बढ़ रही है जो निसन्देह उनके भावी जीवन और समाज के लिए घातक होगी।

नशीले पदार्थो में 1. बीड़ी, 2. सिगरेट, 3. तम्बाकू, 4. शराब–ताड़ी, 5. भॉग,गॉजा व चरस, अफीम, नशीली वस्तुओ को जैसे – अफीम के मोडिया (ड्योढ़े) उबालकर उपयोग करना, धतूरा, जंगली पत्तियाँ– जड़ियों को खाना, पीना, स्मेंक पीना, ब्राऊन शुगर खाना आदि नशीली वस्तुओ का

सेवन सम्मिलित है। इन वस्तुओ का सेवन आदत बन जाता है। कुछ लोगो का कहना है कि इनका सेवन तनाव कम करने, शान्ति की खोज करने, ध्यान केन्द्रित करने के लिए किया जाता है। वास्तव में यह तर्क निर्मूल है। नशीले पदार्थो का सेवन व्यक्तिगत एंव सामुदायिक स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत हानिकारक व घातक है। यह जानलेवा और कठिनाइयो तथा संकटो को उत्पन्न करने वाला है।

नशीले पदार्थो से होने वाली हानियों से समाज और सरकार भली–भाँति परिचित है किन्तु इनमें से बहुत से नशीले पदार्थो का उत्पादन एंव विक्रय वैधानिक रूप से सरकार की अनुमति से प्रचलित है, कयोंकि इससे सरकार को काफी राजस्व प्राप्त होता है जो उसकी आय का एक प्रमुख साधन है।

नशीले पदार्थो से होने वाली हानियो को व्यक्तिगत एंव सामाजिक दोनों क्षेत्रों में निम्नानुसार बॉटा जा सकता है –

व्यक्तिगत हानियाँ– नशीले पदार्थो के सेवन से अनेक व्यक्तिगत हानियॉ होती है –

1. स्वास्थ्य पर व्यापक रूप से दुष्प्रभाव पड़ता है।
2. क्षय रोग, कैंसर, आँतों और हड्डियों के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।
3. शरीर के ऊतक धीरे–धीरे नष्ट हो जाते हैं।
4. फेफड़े, ह्रदय, गुर्दों के खराब होने की संभावनायें बनी रहती हैं।
5. गला खराब हो जाता है।
6. आँखों की रोशनी कम होती है।
7. कार्यक्षमता और कार्यकुशलता का ह्रास होता है।
8. धन का अपव्यय होता है।
9. व्यक्ति जिन्दगी से हाथ धो बैठता है।
10. बहरेपन और अँधेपन का शिकार होने की सम्भावनायें रहती हैं।
11. सामाजिक प्रतिष्ठा को आघात पहुँचता है।
12. अनेक परिवार बर्बाद हो जाते हैं।

सामाजिक हानियाँ –

1. समाज में अनेक बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं।
2. आपराधिक प्रवृत्तियों में वृद्धि होती है।
3. समाज के समक्ष अनेक समस्यायें खड़ी हो जाती है, जिसमें धन की हानि होती है।
4. इनकी तस्करी और चोरी–छुपे क्रय–विक्रय से अनैतिकता फैलती है।
5. समाज में झगड़े, दंगे–फसाद, मार–काट का भी कारण बनते है।
6. समाज–सुधार एंव सामाजिक प्रगति में बाधक होते है।

1. धूम्रपान – धूम्रपान एक बुरी आदत है। इससे धूम्रपान करने वाले व्यक्ति को ही नही अपितु धूम्रपान–बीड़ी, सिगरेट पीने से निकले धुएं से परिवारजनों या आस–पास में बैठे व्यक्तियो को भी बहुत

हानि होती है। यह निकोटिन युक्त धुँआ साँस के द्वारा जब उनके फेफड़ों पर पहुँचता है तो अनेक प्रकार के श्वास सम्बन्धी विकार युक्त करता है। धूम्रपान का स्वास्थ्य पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इससे फेफड़े, श्वास नलिका तथा गला खराब होता है। इससे क्षय, फेफड़ो या गले का कैंसर होने की प्रबल सम्भावनाएं बनी रहती है। यह पेट में विकार उत्पन्न करताहै तथा निद्रा को भी दुष्प्रभावित करता है। धूम्रपान खर्चीला और बुरी आदत माना जाता है। इससे दॉतो की चमक चली जाती है तथा दॉतो सम्बन्धी रोग भी उत्पन्न हो जाते है। इस सम्बन्ध में बच्चों में प्रारम्भ से जागरूकता उत्पन्न करनी चाहिए ताकि वे सजग रहें और इस बुरी लत से बच सकें।

2. मदिरापान – मदिरापान की एक बार लत पड़ जाने के बाद यह बड़ी मुश्किल से छूटती है। मदिरापान व्यक्ति के शरीर को धीरे–धीरे खोखला बना देता है। शराब खोरी व्यक्ति की मान–मर्यादा, स्वास्थ्य, सामाजिक सम्बन्धो, पारिवारिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। मदिरा व्यक्ति, परिवार और समाज तीनों के लिए घातक सिद्ध होती है। शराब के नशे में व्यक्ति अनैतिक, असामाजिक व घृणित कार्य कर बैठता है। अनेक बार जघन्य अपराध भी कर डालता है। शराब का नशा व्यक्ति को विवेकहीन, चरित्रहीन तथा अविश्वसनीय बना देता है। मदिरापान से व्यक्ति व परिवार को अनेक हानियाँ होती हैं, जैसे –

1. क्षय रोग, कैंसर, आतों और हड्डियों के रोग उत्पन्न होना।
2. शरीर के ऊतक धीरे–धीरे नष्ट होना।
3. फेफड़े, गुर्दे, हृदय के खराब होने की प्रबल सम्भावनाएं।
4. गला खराब होना, ऑखों की रोशनी कम होनी, बहरापन और अंधेपन का शिकार होने की सम्भावनाएं बनी रहना, कार्यक्षमता और कार्यकुशलता का ह्रास होना, धन का अपव्यय होना, सामाजिक प्रतिष्ठान को आघात पहुँचाना, व्यक्ति का जिन्दगी से हाथ धोना, घर परिवार का बर्बाद होना आदि। इनके अलावा समाज में आपराधिक प्रवृत्तियॉ बढ़ना, दंगे, फसाद होना, मारकाट, अफरा–तफरी होना आदि।

3.पान मसाला – आज युवा वर्ग में इसकी लत बड़ी तेजी से पड़ गई है। यहॉ तक कि स्कूलों, कॉलेज में पढ़ने वाले बालक, कल–कारखनों में काम करने वाले युवा विभिन्न कार्य उधोग–धन्धों में काम करने वाले युवा व बाल–श्रमिक सभी पान मसाला,गुटका का उपयोग करते हैं। पान मसाला और गुटका अनेक नामों से बेचा जाता है जैसे पानपराग, पानपसंद, पान मसाला, महक, गुरू, पूजा, राजदरबार, किसान आदि। पान मसाला व गुटका एक प्रकार से धीमा जहर है। इसकी तीव्रता और स्वाद बढ़ाने के लिए इसमें कई तरह के तीव्र रसायनों का प्रयोग किया जाता है। सड़ी–गली सुपाड़ी, लौग चूरा, तम्बाकू आदि का प्रयोग किया जाता है। कहा जाता है कि इनमें कई जहरीले जीवों के जहर का उपयोग भी किया जाने लगा है ताकि ये पर्याप्त नशा दे सकें। चाहे जो भी स्थिति हो पान मसाला और गुटके बहुत हानिकारक है तथा इनका व्यक्ति के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

चूने और कत्थे के मिश्रण के प्रयोग से बने ये मसाले और गुटके जानलेवा सिद्व हो रहे हैं। इनसे गले की खराबी, मुँह व फेफड़ों के कैंसर होने की सम्भावनांए बनी रहती है।

जागरूकता एंव सुधार के प्रयास– समाजिक सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत मघ–निषेध, धूम्रपान, पान मसाला, गुटके तथा अन्य नशीले पदार्थ के सेवन के प्रति लोगों को सजग कर, उनके दुष्पारिणामों से अवगत कराकर तथा नशे की आदतों को छुड़ाने का उपचार एंव चिकित्सा आदि की व्यवस्था के माध्यम से अनेक प्रयास किये जा रहे हैं कि नशीले पदार्थो के सेवन से समाज को मुक्त कराया जाए। इस प्रवृत्ति के निरन्तर बढ़ने से आज स्थिति भयावह हो गई है। भारतीय समाज में पश्चिमी समाज व सभ्यता के प्रभाव के कारण शराब पीने तथा स्मेंक व ब्राऊन शुगर जैसे जानलेवा नशीले पदार्थो के सेवन करने की लाखों लोगों को लत पड़ गई है।

7.3– नशीले पदार्थों का सेवन को रोकने के प्राथमिक उपचार –

युवा पीढ़ी, नशीले पदार्थो का सेवन अपने बड़ों व स्वजनों के समक्ष नहीं करते। इन पदार्थो सेवन वह अपने आयु समूह एंव विशेष स्थानों पर छुपकर एंव रात्रि के समय करता है। इसके रोकथाम के लिये प्राथमिक उपचारो का विवरण निम्नानुसार है –––

1. युवा पीढ़ी को रचनात्मक कार्यों की ओर आकर्षित करना।
2. नशीले पदार्थों को बेचने वाले लोगों को कानून से कड़ी से कड़ी सजा दिलवाना।
3. नशीले पदार्थों जैसे सिगरेट, शराब आदि पर कानून द्वारा रोक लगाना।
4. विघालय में शिक्षकों द्वारा इसके हानिकारक परिणामों से छात्रों को अवगत कराना।
5. नशीले पदार्थो की बिकी पर रोक लगाना।
6. नशीले पदार्थों के बेचने के अड़डों को समाप्त करना।
7. नशीले पदार्थो के सेवन को बढ़ावा देने वाले गिरोह को कानून से कड़ी सजा दिलवाना।
8. कानून एवं पुलिस की मदद से इस धंधे में लगे लोगों की धर पकड़ करना।
9. समाज सेवी संस्थाओं के माध्यम से जैसे रोटरी, लायंस क्लब के सहयोग से जागस्कता लाना।
10. प्रचार माध्यम जैसे– रेडियों, टी.वी. एंव समाचार पत्रो के माध्यम से इसके हानिकारक प्रभावों की जानकारी देना।

7.4 टीकाकरण –

टीकाकरण एक ऐसा अभियान है जिसके द्वारा शरीर में रोग विशेष के प्रति प्रतिकारिता उत्पन्न करने हेतु टीके लगाये जाते है। प्रत्येक संक्रमण हेतु टीके उपलब्ध नही होते हैं, किन्तु कुछ बीमारियों हेतु सस्ते तथा प्रमाणकारी टीके उपलब्ध हैं जो जन स्वास्थ्य कार्यक्रमो का हिस्सा बनने जा रहे है। यह आवश्यक नही कि जिसे टीका लग जाये उसे यह रोग नही होता, रोग होगा किन्तु रोग की भयानकता कम हो जाती है।

रोग के संक्रमण को बढ़ने से रोकने व नियन्त्रण के लिये उसके परपोषी को अधिक प्रतिरक्षात्मक बनाना प्रतिरक्षता कहलाता है। प्रतिरक्षात्मक गुण सभी के पास अलग–अलग होता है।

यह वह क्षमता है जो हमारे शरीर को हानिकारक जीवाणुओ से रक्षा करती है। इसे कृत्रिम रूप से भी प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिये टीके विशेष प्रभावी होते है। टीकारण कार्यक्रम हेतु कुछ विशेष बातों को ध्यान में रखना चाहिये –

1. बच्चो को प्रतिकारिता उत्पन्न करने वाले टीके सही समय पर दिये जायें, ताकि बच्चे संक्रामक रोगो से बच सकें।

2. टीके की दो खुराको के बीच में निर्धारित समय अन्तराल का ध्यान रखना चाहिये। अन्यथा टीके अप्रभावी हो जाते है।

3. जनस्वास्थ्य के लिये समस्या उत्पन्न करने वाले रोगो तथा महामारी के समय टीके सबको लगाये जाने चाहिये।

आज जनस्वास्थ्य किसी देश की समस्या नही रह गई है यह एक अन्तर्राष्ट्रीय समस्या बन चुकी है। आज एक वर्ष की उम्र तक बच्चो को संक्रामक रोगो के प्रति प्रतिकारिता हेतु आवश्यक टीके दिये जाने चाहिये –

1. बी.सी.जी. का टीका।
2. डी.पी.टी. का टीका।
3. पोलियो की दवा।
4. खसरे का टीका।
5. जीवन सत्व 'ए' की खुराक।
6. हैजे का टीका।
7. टायफॉइड का टीका।
8. हेपेटाइटिस बी।

इन रोगो को टीकाकरण द्वारा रोका जा सकता है।

पाठ्गत प्रश्न :–

प्र.1 सामुदायिक स्वास्थ्य से क्या आशय है ?

प्र.2 नशीले पदार्थों से तात्पर्य किन वस्तुओं के सेवन से है ?

प्र.3 टीकाकरण क्यों आवश्यक है ?

7.5 संक्रामक रोग, उनके फैलने के कारण एंव रोकथाम के उपाय –

सक्रमण का अर्थ है – किसी भी स्वस्थ व्यक्ति के स्वस्थ शरीर में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रोग के जीवाणु का पहुँचना तथा उस शरीर के जीवाणु की संख्या में निरन्तर वृद्धि का होना तथा एक निश्चित अवधि के बाद उस रोग के लक्षण उस व्यक्ति के शरीर में प्रकट होना ही संक्रमण है तथा जो बीमारी होती है वह संक्रामक बीमारी रोगी के सम्पर्क में आने या फिर वायु, जल, भोजन या अन्य

माध्यम से भी स्वस्थ शरीर को बीमार बना देती है। इस प्रकार संक्षिप्त में ''संक्रामक रोग'' वह रोग है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलते हैं।

संक्रमित रोगो को दो भागो में बॉटा गया है –

1. संसर्गजनित रोग
2. संक्रमित रोग

संसर्गजनित रोग – वे रोग जो रोगी के संसर्ग में आने से होते हैं। इसके अन्तर्गत त्वचा सम्बन्धी रोग, एड्स आते है।

संक्रमित रोग – वे रोग जिनके जीवाणु विभिन्न माध्यमो से स्वस्थ शरीर में प्रवेश कर वहॉ वृद्धि को प्राप्त करते है तथा स्वस्थ व्यक्ति को रोगी बना देते है।

संक्रामक रोग के कारण –

प्रायः संक्रामक रोगो का प्रमुख कारण अति सूक्ष्म जीवाणु है। ये जीवाणु कुछ वक्रता लिए घोंघे के आकार के होते है जो कि इतने छोटे होते हैं कि उन्हे सामान्य दृष्टि से नही देखा जा सकता। इन्हे देखने हेतु सूक्ष्मदर्शक यन्त्र की जरूरत होती है। जिस समय ये जीवाणु अवसर पाकर शरीर में प्रवेश कर जाते है तो शरीर में बड़ी शीघ्रता के साथ बढ़ने लग जाते है।

वह विभिन्न माध्यम जिनके द्वारा जीवाणु शरीर में प्रवेश करते हैं निम्न है –

1. वायु द्वारा – श्वास द्वारा दूषित वायु ग्रहण करने पर ये जीवाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में पहुँच जाते हैं।

2. जल तथा भोजन – दूषित एवं गन्दा जल, भोजन जो कि मक्खी द्वारा, धूल में मिले जीवाणु द्वारा दूषित हो जाता है जब उसे स्वस्थ व्यक्ति ग्रहण करता है तो उसके शरीर में रोग के जीवाणु पहुँच जाते है।

3. कीटों द्वारा – इसके सबसे अच्छा उदाहरण है मच्छर, जो कि मनुष्य को काटकर मलेरिया के जीवाणु उसके रक्त में छोड़ देता है जहाँ ये जीवाणु वृद्धि पाकर व्यक्ति को रोगी बना देते है।

4. रोगी के बिस्तर, बर्तन, तौलिया आदि के प्रयोग से जीवाणु स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर जाते है।

किसी रोग के जीवाणु के शरीर में प्रवेश करते ही बीमारी नही हो जाती है। जीवाणु के शरीर में प्रवेश के बाद धीरे–धीरे बीमारी के लक्षण दिखाई देने लगते है। इसे रोग के संक्रमण की विभिन्न अवस्थाऍ कहते हैं।

1. सम्प्रति काल – यह वह समय होता है जब रोग के जीवाणु मनुष्य के शरीर में वृद्धि प्राप्त कर रहे होते है अर्थात् जीवाणु के शरीर में प्रवेश से लेकर रोग के लक्षण प्रकट होने तक का समय।

2. बीमारी का संक्रमण काल – यह वह समय है जब बीमारी के समस्त लक्षण दिखाई देने लगते है। बीमारी समझ में आने लगती है।

3. बीमारी की प्रकोप अवस्था या चरम सीमा – अर्थात् इसके पूर्व अवस्था पर सावधानी न बरतने पर यह स्थिति आ जाती है कि बीमारी अपनी अन्तिम चरम सीमा पर पहुॅच जाती है। कभी–कभी यह अवस्था जानलेवा हो जाती है।

4. बीमारी में सुधार की अवस्था – समुचित उचित डॉक्टरी सहायता प्राप्त होने पर बीमारी ठीक होकर घटने लगती है क्योंकि शरीर में बीमारी के जीवाणुओं के विष का प्रभाव कम होने लगता है।

5. बीमारी समाप्त होना – यह वह अवस्था है जब व्यक्ति ठीक हो जाता है। रोग के लक्षण समाप्त हो जाते हैं। व्यक्ति में शारीरिक कमजोरी होती है। इस समय उसकी अधिक देखभाल की आवश्यकता होती है क्योकिं शरीर इतना कमजोर होता है कि पुनः रोग का हमला हो सकता है।

6. आकृति (त्मसंचेम) **–** इससे पूर्व की अवस्था में यदि स्वस्थ होते व्यक्ति की पूर्णतया देखभाल नही की जाती तो उसके कमजोर शरीर पर जीवाणु का पुनः हमला होने की सम्भावनाएँ अधिक होती हैं तथा बीमारी की आकृति हो जाती है।

यदि परिवार में किसी व्यक्ति को संक्रामक रोग होता है या उसके आस–पड़ोस में तो हमें कुछ बातो को ध्यान में रखना चाहिए –

1. सूचना – यदि रोग महामारी के रूप में फैल रहा है तो उसकी सूचना स्वास्थय विभाग, नगर निगम को दी जानी चाहिए।

2. रोगी को अलग रखना –संक्रामक रोग से ग्रसित व्यक्ति को परिवार के अन्य स्वस्थ सदस्यो से अलग रखें। ऐसी स्थिति में भावनाओं से काम न लें क्योंकि रोगी को अलग रखना उसका बहिष्कार नही है। यह उसकी तथा परिवार की भालई के लिए उठाया गया कदम है।

3. रोग प्रतिरक्षा – परिवार के अन्य स्वस्थ व्यक्तियों को उस रोग से सम्बनधित बचाव हेतु टीका लगवाना चाहिए।

4. विसंक्रमण – अर्थात् रोग के जीवाणु को नष्ट करना। रोगी के मल–मूत्र, थूक में रोग के जीवाणु होते हैं। अतः उनके उचित विसर्जन की व्यवस्था हो, बर्तन, कपड़े गर्म पानी में उबालकर साफ करें।

संक्रामक रोगों की रोकथाम –

संक्रामक रोगों की रोकथाम के निम्न उपाय हैं –

1. सूचना – जब संक्रामक रोग फैलने शुरू हो जाये तो सभी संक्रामक रोगो की सूचना सार्वजनिक चिकित्सा अधिकारी को दे दी जाय जिससे वह निरोधन के प्रयत्न कर सके।

2. पृथक्करण – रोगी को स्वस्थ व्यक्ति से अलग कर दिया जाय। इसके लिए यह जरूरी है कि रोगी को संक्रामक रोगों के अस्पताल में भेज दिया जाय। विद्यालय में संक्रामक रोगो से ग्रस्त छात्रों को तब तक नही आने दिया जाय जब तब वे पूर्णतया स्वस्थ नही हो जायें।

3. प्रतिरक्षण – व्यक्तियों की रोग अवरोधक शक्ति को बढ़ा दिया जाय तो जीवाणुओं के शरीर में प्रवेश करने के बाद भी रोग आसानी से पैदा नही होगा। इस उद्देश्य से टीका तथा सुई लगाने की व्यवस्था की जाती है। इसके अलावा भोजन की व्यवस्था पर भी ध्यान देना जरूरी है।

4. संगरोधन – जो व्यक्ति किसी संक्रामक वातावरण में पर्याप्त काल तक रह चुके है एंव जिनको रोग लग जाने का सन्देह है, उन्हे स्वस्थ व्यक्तियो से अलग रखने का विशेष प्रयत्न करना चाहिये। इस तरह के व्यक्तियो का समय पर निरीक्षण करते रहना चाहिए। इस काल में या तो वे रोग मुक्त हो जायेगे अथवा उनमें रोग के स्पष्ट लक्षण प्रकट हो जायेगे।

5. विसंक्रमण – संक्रामण रोगों की रोकथाम हेतु प्रयोग की जाने वाली वस्तुओं को या तो पूर्णतया विनष्ट कर दिया जाय अथवा फिर उनका विसंक्रमण कर दिया जाय। विसंक्रमण का अर्थ है वस्तुओं में लगे जीवाणुओ को नष्ट कर देना। जिन पदार्थो द्वारा विसंक्रमण किया जाता है, उन्हे विंसक्रमण तत्व कहा जाता है। विसंक्रामक तत्त्व निम्न होते है। –

1. प्राकृतिक विंसक्रामक तत्त्व, 2. भौतिक विसंक्रामक तत्त्व, 3. रासायनिक विसंक्रामक तत्त्व।

यौन संक्रमित रोग –

गुप्त रोग स्त्री से पुरूष को और पुरूष से स्त्री को परस्पर रूप से फैलते है। शुरू–शुरू में इनका रूप बहुत ही साधारण होता है लेकिन धीरे–धीरे ये रोग अन्दर ही अन्दर बढ़ते रहते है। ये रोग निम्नलिखित है –

1. सुजाक
2. अतिशक
3. एड्स

1. सुजाक – यह रोग सूक्ष्म कीटाणुओ के कारण होता है। ये जीवाणु दो–दो वर्ण में होते है और इन्हे 'गोनोकोक्स' कहते है। यह रोग घातक तो नही है लेकिन इससे रोगी को जीवन भर के लिए मूत्र त्याग में कष्ट, जोड़ो में दर्द एंव अन्धत्व भी आ सकता है। कुछ रोगी तो सन्तान पैदा करने में असमर्थ हो जाते है।

अवधि – एक से दस दिन तक यह रोग विकसित हो जाता है।

कारण – 1. रोगी का तौलिया, जॉघिया आदि गन्दे वस्त्र के उपयोग करने से हो सकता है।

2. यह रोग रोगी के साथ सम्भोग करने से या गन्दी लैंगिक आदतो से लगता है।

3. इसके जीवाणु जलन और सूजन पैदा करते है।

रोग के लक्षण – 1. रोग की छूत लगने के दो या अधिक दिन के बाद सुजाक के प्रारम्भिक लक्षण दिखाई देने लगते है।

2. पुरूषो में मूत्रत्याग करते समय रोगी की जननेन्द्री में पीड़ा तथा जलन होती है।

3. पेशाब के साथ कुछ पीली पीव निकलती है।

4. स्त्री रोगो को डिम्ब ग्रन्थि वाहिका में सुजाक का संक्रमण होने के कारण कमर में दर्द रहने लगता है।

रोग के प्रभाव – 1. सुजाक शुरू में कम हो सकता है।

2. इलाज न करने पर भंयकर जटिलताऍ बन जाती है।

3. यह रोग जननेन्द्रियों को हानि पहुँचा सकता है।

4. इसके प्रभाव से जोड़ो में सूजन एंव पीड़ा हो सकती है।

5. नवजात शिशु की ऑखो में भयंकर संक्रमण से ऑखे खराब हो सकती है।

6. नवजात अन्धा भी हो सकता है।

7. पुरूषों की मूत्रनली तंग हो सकती है।

8. इस रोग से मूत्रत्याग करने में कष्ट हो सकता है।

चिकित्सा – 1. यदि सुजाक रोग का थोड़ा–सा भी सन्देह हो तो किसी विशेषज्ञ की सलाह लेनी चाहिए।

2. रोगी को प्रतिदिन 6 लाख इकाई पेनिसिलीन के टीके 10 दिनों तक देना।

3. सल्फाडाइजीन की गोलियॉ खिलाना।

4. रोगी को खट्टे, तेल, मिर्च एंव गर्म पदार्थ नही देने चाहिए।

5. चाय बिल्कुल बन्द कर देनी चहिए।

2. आतिशक –

यह रोग सुजाक से अधिक घातक रोग है।

कारण – 1. इसका संक्रमण आतिशक से ग्रस्त रोगीके साथ मेंथुन करने से होता है।

2. आतिशक रोगी के निकट सहवास में रहने के कारण होता है।

3. यह रोग वंश–परम्परा भी होता है।

4. यह रोग स्पाइरोकीटा पलिडा नामक जीवाणु के द्वारा शरीर में फैलता है।

अवधि – यह रोग 28 दिन में या 4 महीने तक की अवधि तक पूर्ण रूप से शरीर में फैल जाता है।

संक्रमण विधियॉ –

1. मेंथुन द्वारा –किसी छूतग्रस्त व्यक्ति के साथ मेंथुन करते समय इसके जीवाणु पुरूष के लिंग एंव स्त्री की योनि के साधारण छूत द्वारा रक्त प्रणाली में प्रवेश होकर अन्य अवयवो में चले जाते है।

2. चुम्बन द्वारा – यह रोग चुम्बन द्वारा भी हो सकता है। यदि रोगग्रस्त व्यक्ति का चुम्बन लिया जाए तो उसके द्वारा भी कीटाणु शरीर में प्रवेश कर जाते है। यह रोग दूषित बर्तनों एवं दूषित वस्त्रों के सम्पर्क से भी होता है।

बचाव –

अगर कंडोम का सही तरह उपयोग किया जाये तो यौन रोगो से सरलता से बचा जा सकता है। अपने जीवन साथी से वफादार रहना चाहिए। कंडोम के इस्तेमाल से न सिर्फ यौन रोगो से बल्कि एच.आई.वी. संक्रमण से भी बचा जा सकता है।

अपने शरीर विशेषकर जननांगो को स्वच्छ रखे। स्नान के समय स्वच्छता पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

दूषित रक्त, सुईयों तथा सिरिंजों के उपयोग से बचें।

यौन रोग होने की स्थिति में किसी योग्य डॉक्टर से तत्काल इलाज कराना चाहिये एवं साथी की भी शीघ्रता से जाँच करवा लेनी चाहिए।

गुप्त रोग जादू–टोने, तंत्र–मंत्र, झाड़–फूँक अथवा देशी इलाजों से ठीक नही हो सकते। बहुत से पुरूष ऐसा सोचते है कि किसी कुँवारी कन्या से संभोग करने से गुप्त रोग ठीक हो सकते है यह एकदम गलत सोच है। ऐसा करके रोगी अपनी बीमारी बॉटते हैं यह उचित नही है।

एच.आई.वी/एड्स

एड्स (एक्वायर्ड इम्यूनो डेफीशियेन्सी सिंड्रोम) एक वायरस से फैलता है, जिसे एच.आई.वी. (इम्यूनो डेफीशियेन्सी वायरस) कहते है। एच.आई.वी. वायरस शरीर में रोगो का सामना करने की स्वाभाविक क्षमता को क्षीण करता चला जाता है।

बीमारियो से जूझने की शरीर की शक्ति घटने पर कई बीमारियों के लक्षण एक साथ प्रकट होने से एड्स की स्थति बनती है।

एच.आई.वी. होने से पीड़ित व्यक्ति कई साल भरापूरा जीवन जी सकता है। पर जब शरीर में बीमारियों से लड़ने की ताकत ही खत्म होने लगेगी तो कुछ वर्ष में ही वह किसी न किसी घातक रोग का शिकार हो जायेगा।

एच.आई.वी/एड्स का कोई इलाज नही है एंव न ही इससे बचाव का कोई टीका अभी बना है पर कुछ सावधानियॉ बरत कर आसानीसे इस जानलेवा बीमारी से बचा जा सकता है, साथ ही इसें फैलने से रोका जा सकता है।

एड्स से पीड़ित व्यक्ति को एच.आई.वी. होगा ही, पर यह जरूरी नही कि एच.आई.वी. से पीड़ित हर व्यक्ति को एड्स हो। एड्स की स्थिति का असल कारण एच.आई.वी. ही होता है

आम तौर पर एच.आई.वी. वाले व्यक्तियो में एड्स की स्थिति बनने में सालो लग जाते है। अकसर तीन से दस साल या और भी ज्यादा। इस दौरान एच.आई.वी. पीड़ित व्यक्ति काफी स्वस्थ लगता है तथा भरापूरा जीवन जी सकता है पर यौन संपर्क सुई, इंजेक्शन अथवा रक्त दान द्वारा अन्य व्यक्तियो को संक्रमित कर सकता है।

यौन रोग तथा एच.आई.वी./एड्स के बीच अंतः संबंध

जिस प्रकार यौन संक्रमित रोग अथवा गुप्त रोग फैलते है प्रायः उसी तरह एच.आई.वी. संक्रमण भी होता है। यौन संक्रमित रोगो के शिकार लोगो के जननांगो पर घाव या सूजन हो जाती है जिससे प्रभावित अंग की त्वचा अति कोमल हो जाती है।

एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति के रक्त, वीर्य, योनि द्रव में एड्स के विषाणु (एच.आई.वी.) पाए जाते है। जब एच.आई.वी. संक्रमित व्यक्ति किसी यौन संक्रमित रोगी से असुरक्षित यौन संपर्क करता है

तो एड्स का विषाणु एच.आई.वी. रक्त योनि द्रव अथवा जननांगो के अति कोमल भाग में से शरीर में प्रवेश कर जाते है एंव यौन संबंधी एच.आई.वी. संक्रमित हो जाता है।

इस तरह यौन संक्रमित रोग एंव एच.आई.वी. संक्रमण को ज्यादा सरल बना देते है।

इलाज – लगभग सभी गुप्त रोगो का इलाज संभव है बशर्ते इलाज योग्य डॉक्टर से कराया जाय। बहुत से लोग शर्म के कारण सरकारी अस्पताल या अच्छे योग्य डॉक्टर से जॉच और इलाज कराने के बजाय नीम–हकीम अथवा अधकचरे सड़क छाप डॉक्टरो के पास जाते है। बेहतर यही है कि सही डॉक्टर से इलाज करवाएँ। प्रदेश के सभी सरकारी अस्पतालों तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों में गुप्त रोगों की जॉच और इलाज किया जाता है। इस रोग से बचाव के लिये छात्रों को निम्न जानकारी देना चाहिये।

1. इलाज पूरा करायें, आधा अधूरा नही।
2. इलाज अपना भी करावे एंव अपने साथी का भी। अगर एक व्यक्ति का इलाज होता है एंव दूसरे का नही तो दूसरे व्यक्ति को दुबारा भी गुप्त रोग हो सकता है।
3. एक से ज्यादा व्यक्तियो से यौन संपर्क से बचें।
4. कंडोम का इस्तेमाल करें। यह स्त्री तथा पुरूष दोनो को गुप्त रोगो एंव एड्स से बचाता है।
5. जिन गर्भवती औरतो को गुप्त रोग हो वे इलाज से ठीक होने के पश्चात् भी लगातार प्रसव पूर्व की जॉच अस्पताल में कराती रहें।

शिक्षा का योगदान –

शिक्षा व्यक्ति की ज्ञान शक्तियों एंव योग्यताओ के विकास में सहायक होती है। शिक्षा स्कूल तथा समुदाय के मध्य मध्यस्थ की भूमिका निभाती है। इसके कारण समुदाय को दिशा प्राप्त होती है। शिक्षा के द्वारा दृष्टिकोण विस्तृत होता है। जनसंचार के माध्यम जैसे टी.वी., रेडियो, पोस्टर, चार्ट इत्यादि के माध्यम से जन समुदाय को इस रोग की जानकारी देना चाहिए।

आज हमारे समाज में अनेक समस्याऐ विद्यमान है, जिनका समाधान उपयुक्त ढंग से शिक्षित भावी पीढी के द्वारा ही सम्भव है। उदाहरणार्थ संक्रामक रोग फैलने की स्थिति में समुदाय को उनके कारणों की एवं बचाव की जानकारी यदि समय पर दे दी जाये तो समस्या से काफी हद तक बचा जा सकता है।

इसी प्रकार टीकारण के विषय में भी देखा जाता है कि विभिन्न संचार माध्यमो से इसके प्रचार प्रसार होने से समाज में जागरूकता विकसित होती है। इसी कारण आज कुछ विशेष बीमारियॉ जैसे चेचक, खसरा, पोलियो आदि पर नियन्त्रण किया जा सका है।

यौन संक्रमित रोग के सम्बन्ध में भी शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है। जब समाज को संक्रमण के कारण एवं बचने के उपायों की जानकारी दी गई तो शिक्षित समाज ने उन विचारों को अपनाया, फलस्वरूप रोग में कमी देखी गयी।

यौन संक्रमित रोग विशेषकर अशिक्षित महिला–पुरूष अथवा युवा वर्ग में देखने को मिलते हैं। युवावस्था एक ऐसी अवस्था है जहाँ यौन भावनाओं को रोकना मुश्किल हो जाता है किन्तु बीमारी से किस प्रकार बचा जाये, शिक्षा उनमें जागृति, जन चेतना, जागरूकता उत्पन्न करती है तो इस प्रकार के संक्रामक रोगों से बचा जा सकता है।

पाठ्गत प्रश्न :–

प्र. 4 संक्रामक रोग किसे कहते हैं ?

प्र. 5 शिक्षा संक्रामक रोगों को रोकने में किस प्रकार सहायक है ?

इकाई सारांश

सामुदायिक स्वास्थ्य से अभिप्राय व्यक्ति एवं समुदाय में अच्छी आदतों और दृष्टिकोणों का निर्माण किया जाना है। सामुदायिक स्वास्थ्य का क्षेत्र बहुत व्यापक है। इसमें स्वास्थ्य संबंधी ज्ञान, जन स्वास्थ्य सेवाएं, भौतिक, जैविक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण, व्यक्ति एवं समुदाय की स्वास्थ्य संबंधी आदतें, वंशानुक्रम आदि सम्मिलित है।

- नशीले पदार्थ जैसे बीड़ी, सिगरेट, तम्बाखू, शराब, ताड़ी, भांग–गाँजा, चरस, अफीम, स्मैक आदि व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत हानिकारक है।
- टीकाकरण द्वारा शरीर में रोग प्रतिकारक क्षमता बढ़ायी जाती है, ताकि बीमारियों के संक्रमण को रोका जा सके। जैसे टायफाइड, चेचक, खसरा, पोलियो, डिप्थीरिया आदि।
- संक्रामक रोग वह है जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है।
- रोगी व्यक्ति के संसर्ग में आने से अथवा रोग के जीवाणु विभिन्न माध्यमों से संक्रामक रोग फैलाते हैं।

पाठ्गत प्रश्नों के उत्तर :–

1. सामुदायिक स्वास्थ्य का आशय समुदाय के जनस्वास्थ्य से है।
2. बीड़ी, सिगरेट, तम्बाखू, शराब, ताड़ी, भांग–गाँजा, चरस, धतूरा अफीम, स्मैक, ब्राउन शूगर इत्यादि।
3. टीकाकरण द्वारा शरीर में रोग विशेष के प्रति प्रतिकारिता उत्पन्न की जाती है।
4. किसी भी स्वस्थ व्यक्ति के स्वस्थ शरीर में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से रोग के जीवाणु पहुँचना एवं रोग के लक्षण प्रकट होने को संक्रामक रोग कहते हैं।

5. शिक्षा के माध्यम से जन जाग्रति, जनचेतना एवं जागरूकता द्वारा संक्रामक रोगों को रोका जा सकता है।

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल म.प्र., भोपाल

(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)

डिप्लोमा इन एज्युकेशन (प्रथम वर्ष)
प्रश्न पत्र – द्वितीय

विषय : मानव शरीर के विभिन्न इकाई अंग/तंत्र एवं कार्यिकी **ईकाई : 8**

विषयांश

उपइकाई

1. अध्यावर्णीय तंत्र
2. पेशीय तंत्र
3. कंकाल तंत्र
4. पाचन तंत्र
5. परिसंचरण तंत्र
6. श्वसन तंत्र
7. उत्सर्जन तंत्र
8. तंत्रिका तंत्र
9. अन्तः स्त्रावी तंत्र
10. जनन तंत्र

प्रिय छात्राध्यापक,

पिछली इकाई में आपने सामुदायिक शिक्षा एवं स्वास्थ्य के अंतर्गत प्राथमिक उपचार, टीकाकरण, संक्रामक रोग, उनके फैलने के कारण एवं रोकथाम के विषय में अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में मानव शरीर के विभिन्न इकाई अंग/तंत्र एवं कार्यिकी के अन्तर्गत मानव शरीर बहुत से अंगों से मिलकर बना होता है जो अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। पूरी शरीर रचना को संस्थान कहते हैं। इन कार्यों के लिये विभिन्न तंत्र पाये जाते हैं। इनका अध्ययन करेंगे।

उपइकाई–1
अध्यावरर्णी तन्त्र (त्वचा)

शरीर के चारों तरफ एक मोटा आवरण पाया जाता है जो कि अध्यावरण कहलाता है इसके नीचे एक मोटी पेशीय स्तर होती है बाहरी स्तर अथवा त्वचा को इससे जुडी रचनाओं सहित अध्यावरणीय तन्त्र कहते है।

मानव त्वचा की संरचना

मानव त्वचा दो स्तरों की बनी होती है –

अ. उपचर्म या एपिडर्मिस – यह सबसे बाहरी स्तरीय शल्की उपकला ऊतक की बनी स्तर है जो पांच स्तरों की बनी होती है।

1. किरण स्तर – यह सबसे बाहरी पर्त है जो चपटी, केन्द्रक विहीन मृत कोशिकाओं की 8–10 पर्तों की बनी होती है। इसकी कोशिकाएं किरैटिनमुक्त होती हैं।

कशेरूकियों की त्वचा का रंग मुख्यतः मिलेनिन नामक वर्णक के कारण होता है।

ब) डर्मिस या चर्म – यह उपचर्म के नीचे पायी जाने वाली रचना होती हैं स्तनियों की चर्म विकसित होती है तथा तन्तुमय संयोजी ऊतकों की बनी होती है। इसमें कोशिकाएं रोम जड़े, रूधिर कोशिकएं अरेखित पेशीय तन्तु, त्वचा ग्रन्थियां, तन्त्रिका तंतु पायी जाती हैं।

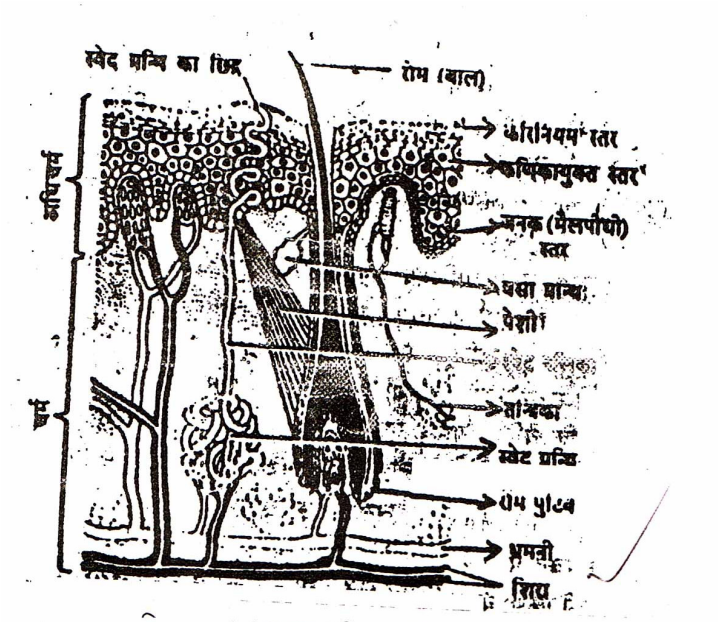

त्वचा की अनुप्रस्थ काट

त्वचा के कार्य

1. ये शरीर की सुरक्षा करता है।
2. शरीर के ताप का नियन्त्रण करती है।
3. त्वचा जल तथा दूसरे हानिकारक पदार्थों के लिए अपारगम्य होती है लेकिन कई उपयोगी पदार्थों को अवशोषित करती है जैसे – दवाओं आदि को।
4. शरीर के आकार को बनाये रखने में मद्द करती है।

पाठ्गत प्रश्न –

प्रश्न–1 मानव त्ववा कितने स्तरों की बनी होती है।

प्रश्न–2 अध्यावर्ण को परिभाषित कीजिए।

उप इकाई – 2
पेशीय तंत्र

मनुष्य की हड्डियों को हिलाने डुलाने और शरीर की गति प्रदान करने के लिए ये पेशियों से जुड़ी होती हैं। मानव में पेशियां तीन प्रकार की होती है।

1. ऐच्छिक या कंकाली पेशियां – ये पेशियां मनुष्य में हाथों और पैरों में उपस्थित होती हैं।
2. अरेखीय पेशी या अनैच्छिक – के पेशियां शरीर के आंतरिक अंगों में उपस्थित होती है।
3. हृदय पेशियां – ये पेशियां मनुष्य के हृदय में पाई जाती है।

शरीर को गतिशील बनाने वाला तंत्र पेशीय तंत्र होता है। ये त्वचा के नीचे व हड्डी के उपर पाई जाती है।

मनुष्य के शरीर में पृष्ठीय सतह पर पाई जाने वाली पेशियां

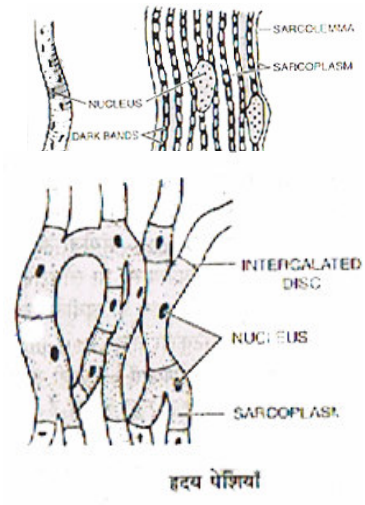

हृदय पेशियां

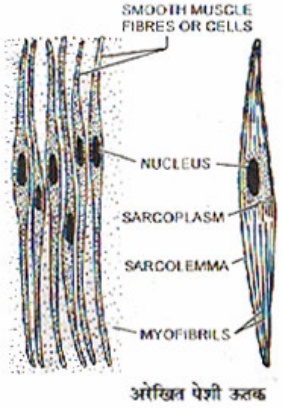

अरेखित पेशी उतक

रेखित, अरेखित एवं हृदय पेशियां

पाठ्गत प्रश्न –

प्रश्न–1 रिक्त स्थान भरिए

1. मानव में ..... प्रकार की पेशियां पाई जाती हैं।
2. वयस्क व्यक्ति में कुल ..... हड्डियां होती हैं।
3. शरीर को आकार प्रदान करने का कार्य ..... करता है।
4. हृदय पेशियां ..... में पाई जाती हैं।

कंकाल तंत्र –

हड्डियों का ढांचा कंकाल तंत्र कहलाता है। वयस्क व्यक्ति में सामान्यतः 206 हड्डियां पाई जाती हैं। शरीर की हड्डियां आपस में जुड़कर शरीर का निश्चित आकार बनाए रखती हैं तथा शरीर के कोमल एवं नाजुक अंगों जैसे फेफड़े, मस्तिष्क आदि की सुरक्षा करती हैं और शरीर को मजबूती प्रदान करती है।

हड्डियां कडी होती हैं और कंकाल तंत्र बनाती हैं कोहनी और घुटनों की हड्डियां आपस में मिल रही हैं ये जोड़ स्थान होता है इसे आप हिला–डुला सकते है।

दो हड्डियां के मिलने के स्थान को जोड़ कहते हैं।

कान और नाक की हड्डियां कुछ नरम हाती हैं यह उपास्थि (ब्तजपसंहम) कहलाता है।

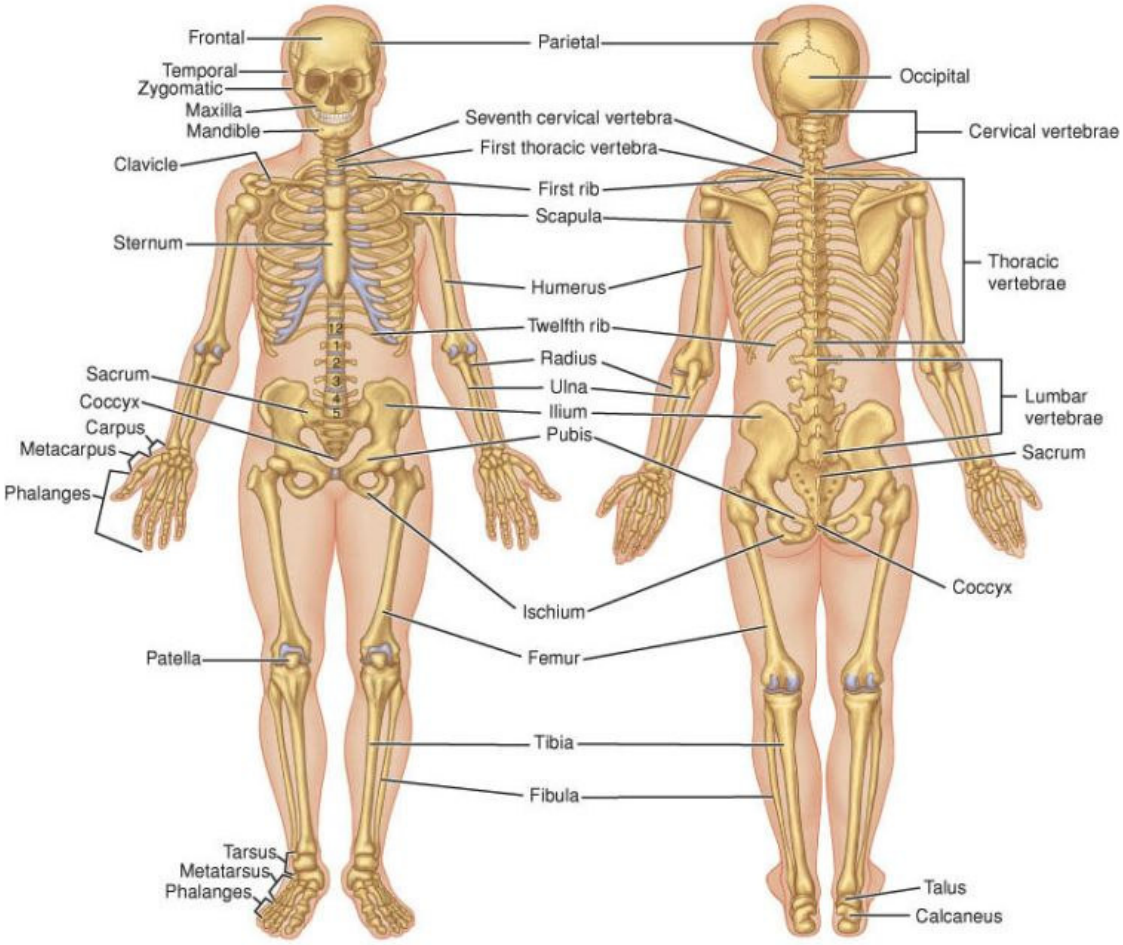

कंकाल तंत्र के कार्य –

1. यह शरीर को एक निश्चित आकार देकर इसका ढ़ांचा बनाता है।
2. यह शरीर के कोमल अंगों की रक्षा करता है।
3. यह सम्पूर्ण शरीर को बांध कर रखता है।
4. यह शरीर में पायी जाने वाली पेशियों के लिये जुड़ने का आधार देता है जिससे मनुष्य में गति एवं प्रचलन होता है।

मनुष्य का कंकाल दो भागों का बना होता है –

अ. अक्षीय कंकाल ब. उपांगीय कंकाल

अ. अक्षीय कंकाल – शरीर का मुख्य अक्ष बनाने वाला कंकाल अक्षीय कंकाल कहलाता है।

निम्न भाग –

1. खोपड़ी 2. कशेरूक दण्ड 3. स्टर्नम एवं पसलियां

ब. उपांगीय कंकाल –

शरीर के मुख्य अक्ष के इधर–उधर दोनों पार्श्वों में पाया जाने वाला कंकाल उपांगीय कंकाल कहलाता है।

1. पाद अस्थियां 2. मेखलाएं

पाठ्गत् प्रश्न –

प्रश्न– 1. मनुष्य का कंकाल कितने भागों का बना होता है।

प्रश्न– 2. ऐच्छिक पेशी शरीर के किन अंगों में पाई जाती है।

पाचन तंत्र –

पाचन तंत्र मनुष्य के शरीर का प्रमुख तंत्र है जिसके द्वारा खाया हुआ भोजन पाचन अंगों से होकर गुजरता है तथा प्रत्येक अंग के कुछ देर ठहरता है, जहां इसके छोटे–2 भागों में तोड़कर आगे बढ़ाया जाता है। आगे जाकर भोजन में, पाचन ग्रंथियों द्वारा निकलने वाले पदार्थ इसका पाचन करते हैं और अन्त में भोजन पाचन के पश्चात् अवशोषित होकर व्यर्थ पदार्थ बाहर निकालने वाले तंत्र को पाचन तंत्र कहते है। इस प्रक्रिया को पूर्ण करने वाले अंग पाचन अंग कहलाते है।

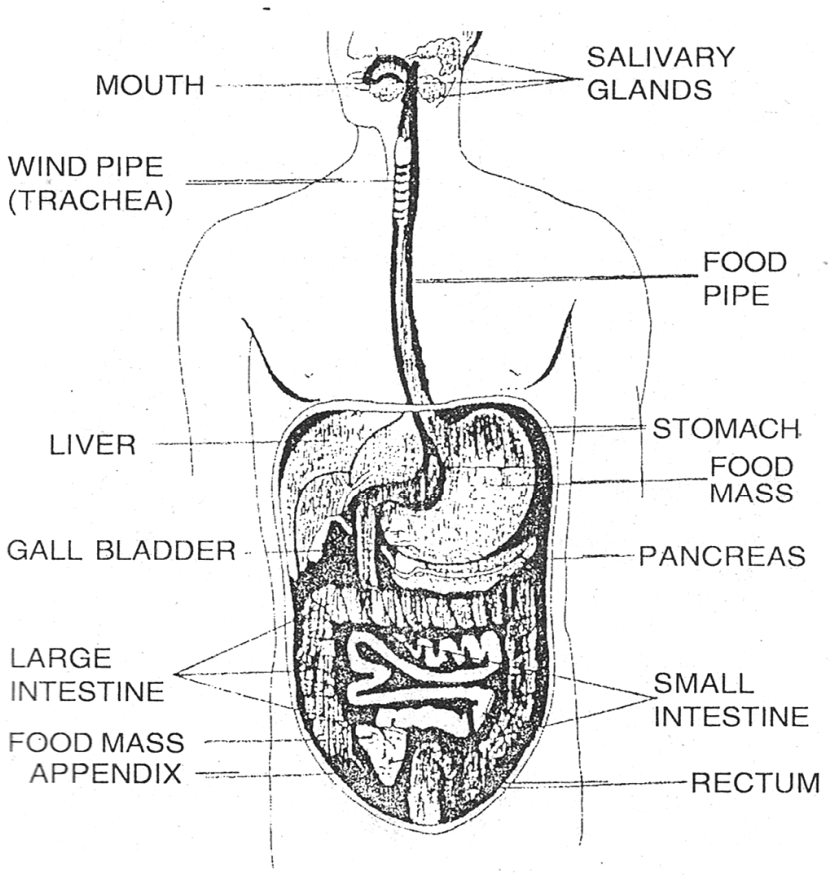

मनुष्य का पाचन तंत्र
(Digestive system of human)

मनुष्य में पाचन तंत्र –

मनुष्य का पाचन तंत्र दो भागों 1. आहारनाल और 2. पाचन ग्रन्थियों का बना होता है। आहार नाल मुख गुहा से प्रारम्भ होता है, जिसमें भोजन विभिन्न अंगों में होकर गुजरता है।

1. मुखगुहा मुख के द्वारा भोजन मुखगुहा में आता है तथा यहॉ लार ग्रन्थियों से लार निकलती हैं लार में उपस्थित एन्जाइम (टायलिन) भोजन के जटिल कणों को सरल और छोटे कणों में तोड़ता है यहां इससे स्टार्च का पाचन होता है।

2. फैरिंग्स – मुखगुहा से भोजन फैरिंग्स में पहुचता है यहां भोजन लार के साथ मिलकर चिकना हो जाता है।

3. ग्रासनली – ग्रास नली भोजन को आगे सरका देती हैं यहां कोई पाचक रस नहीं निकलता, इसलिए पाचन का काम नहीं होता है। ग्रासनली से भोजन अमाशय में आ जाता है।

4. आमाशय – भोजन सबसे अधिक देर आमाशय में ही रूकता है। आमाशय की दीवार में अनेक ग्रंथियां पायी जाती हैं जिन्हें जठर ग्रन्थियां कहते हैं। इसमें से जठर रस और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल निकलता है। इसमें प्रोटीन का पाचन होता है और हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के कारण भोजन का माध्यम अम्लीय हो जाता है।

5. छोटी आंत – इसमें पित्ताशय (यकृत में पाई जाने वाली ग्रंथी) से निकला पित्त रस तथा अग्नाशय से बना अग्नाशयी रस आकर मिलता है। इससे भोजन का बहुत अधिक मंथन हो जाता है।

6. इलियम – छोटी आंत के इस भाग की दीवारों में विलाई पाए जाते हैं। ये अंगुलीनुमा उभार जैसा होता है है यहां भोजन का पाचन पूर्ण हो जाता हैं छोटी आंत द्वारा भोजन अवशोषित हो जाता है।

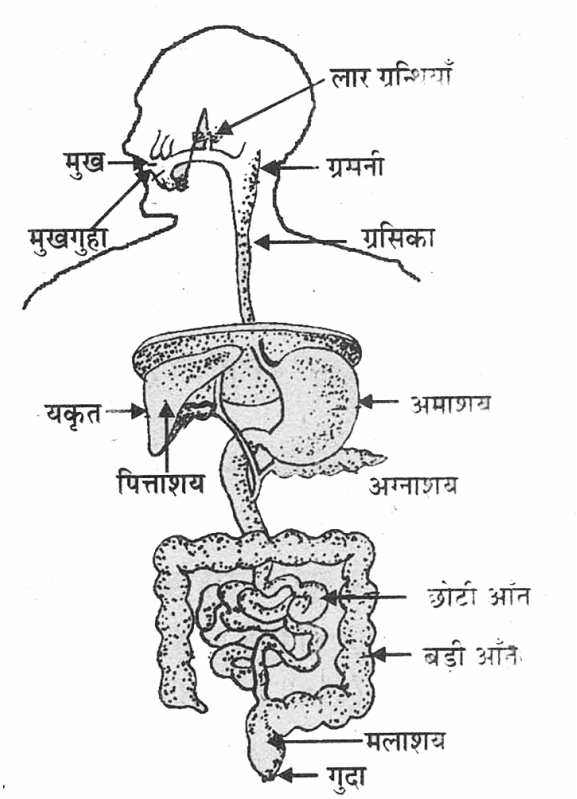

पाचन तंत्र

7. बडी आँत – बडी आँत के अवशोषण के पश्चात् भोजन का अनुपयोगी अपशिष्ट भाग छोटी आंत में पहुंचता है, जिसमें से पानी का अवशोषण कर लिया जाता है। जिससे अनुपयोगी भोजन अर्द्ध ठोस अवस्था में आ जाता है और गुदा द्वार से बाहर कर दिया जाता है।

पाचन – ग्रहण किए गए भोजन के जटिल अणुओं को छोटे–छोटे अणुओं में तोड़ा जाता है। यह क्रिया एक विशेष प्रकार के पदार्थ की उपस्थिति में होती है, जिसे एन्जाइम कहते है।

8. अवशोषण – पचा हुआ भोजन छोटी आंत द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है।
9. स्वांगीकरण – पोषक तत्व अवशोषण के पश्चात् रक्त में मिल जाते हैं, जहां से ये शरीर की विभिन्न कोशिकाओं तक पहुंचा दिया जाता हैं इसे स्वांगीकरण कहते हैं।
10. बहिर्क्षेपण – अनुपयोगी अपशिष्ट को जिसे मल कहा जाता है, शरीर से बाहर निकालने की प्रक्रिया को बहिर्क्षेपण कहते है। अनुपयोगी अपशिष्ट के भाग से पानी का अवशोषण बड़ी आंत द्वारा कर लिया जाता है।

पाठ्गत प्रश्न–

प्रश्न–1 मनुष्य के पाचन तंत्र का नामांकित चित्र बनाइये।

प्रश्न–2 मानव के आमाशय से निकलने वाले रस का नाम बताइए।

प्रश्न–3 पानी का अवशोषण आहार नाल के किस भाग में होता है ?

प्रश्न–4 लार में पाया जाने वाला इन्जाइम कौन सा है ?

प्रश्न–5 मुख से प्रारंभ होकर भोजन जिन अंगों से गुजरता है क्रमशः उनके नाम लिखिए ?

उपइकाई–5

मनुष्य में परिसंचरण तंत्र

मनुष्य में दो तरह के परिसंचरण तंत्र पाया जाता हैं :–

रक्त परिवहन तंत्र

लसिका परिवहन तंत्र

1. रक्त परिवहन तंत्र – मानव में रक्त परिवहन तंत्र, हृदय, रक्त वाहिनियों एवं रक्त का बना होता है।
1. हृदय (भ्मंतज) मानव हृदय पेशीय, शक्वांकार एवं खोखला होता है मनुष्य में हृदय शरीर के वक्षीय भाग में दोनों फेफडों के बीच पेरिकार्डियल गुहिका में स्थित होता है, इस गुहिका के चारों ओर दोहरी हृदयावरणी झिल्ली पायी जाती है, जिसको पेरिकार्डियल द्रव कहते हैं। यह लाल रंग की पेशीय भित्ति का बना होता है।

1. बाहरी स्तर एपिकार्डियम
2. मध्य स्तर मीसोकार्डियम
3. आन्तरिक स्तर एण्डोकार्डियम

आन्तरिक संरचना – मनुष्य का हृदय चार कक्षों का बना होता है। ये भाग दांयें एवं बांये भागों में विभाजित रहता हैं दांये भाग के उपरी कक्ष को दांया आलिन्द एवं नीचे के कक्ष को दांया नियल कहते हैं इसी प्रकार बांये भाग के ऊपरी कक्ष बांया आलिन्द एवं नीचे का कक्ष बांया निलय कहलाता है। दांया आलिन्द एवं बांया आलिन्द एक पेशीय पट द्वारा एक दूसरे से पृथक रहते हैं, इस पेशीय पट को अन्तरा आलिन्दीय पट कहते हैं।

हृदय के दोनों आलिन्द दोनों निलय में एक–एक छिद्र खुलते हैं। यह कपाट आलिन्द से निलय में जाने देते हैं लेकिन निलय से वापस आलिन्द में नहीं जाने देते हैं।

बांये निलय से ग्रीवा दैहिक चाप निकलती है। दांये निलय से फुफफुसीय धमनी निकलती है, जो कि शीघ्र दो शाखाओं – दांयी एवं बांयी फुफफुसीय धमनी में विभाजित होकर क्रमशः दांये एवं बांये फेफडे में रक्त को पहुंचाती है।

दांये आलिन्द में अग्र एवं पश्च महाशिरा पृथक छिद्रों द्वारा खुलती है और शरीर के विभिन्न भागों से अशुद्ध रक्त को लाती है।

हृदय की क्रिया विधि

बांये आलिन्द में फुफफसीय शिरा एक छिद्र के द्वारा खुलती है, इस शिरा के द्वारा शुद्ध रक्त फेफडों से बांये आलिन्द में आता है।

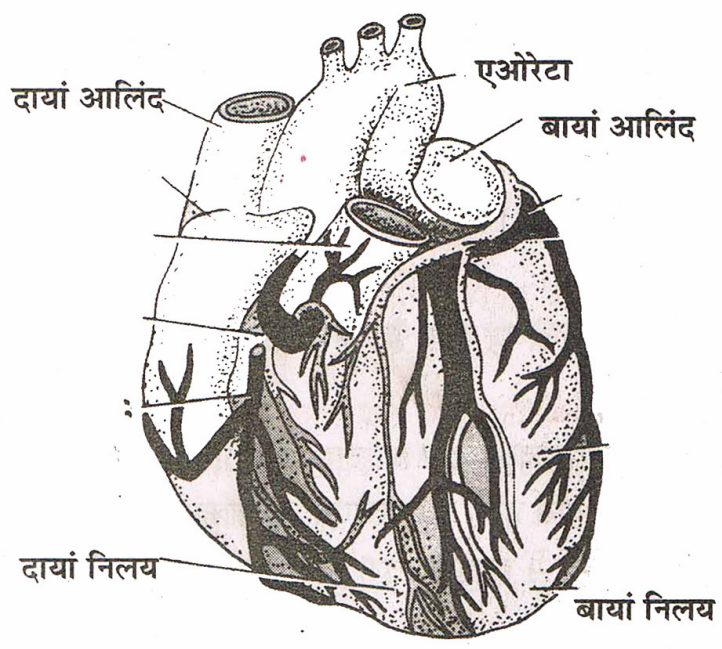

हृदय की रचना

दांया एवं बांया आलिन्द अपने रक्त को क्रमशः दांये एवं बांये निलय में भेजते हैं।

हृदय की कार्य विधि

1. हृदय की पेशियों में संकुचन एवं शिथिलन की क्रिया को हृदय स्पन्दन कहते हैं।
2. संकुचन अवस्था सिस्टोल एवं शिथिलन को डाएस्टोल कहते हैं।

हृदय एक पम्प के समान कार्य करता हैं जो कि पेशीयुक्त भित्तियों के संकुचन पर निर्भर करता हैं इसमें आलिन्द एवं निलय का एकान्तरिक रूप में संकुचन एवं शिथिलन का कार्य निरंतर होता रहता है।

हृदय में संकुचन एवं शिथिलन का कार्य दांये आलिन्द के शिरा आलिन्दीय नोड द्वारा प्रारम्भ होता है। हृदय में संकुचन की क्रिया दोनों आलिन्द के संकुचन से प्रारम्भ होती है, इनका रक्त बांये और दांये दोनों ओर आलिन्दी–निलयी छिद्र द्वारा दांये और बांये निलय में पहुंच जाता हैं जिस समय आलिन्द में रक्त भरता है। वैसे ही शिरा आलिन्दी नोड के संकुचन तरंग प्रारम्भ होती है, इसी कारण दोनों आलिन्द एक साथ संकुचित होते हैं। जैसे ही संकुचन अधिक होता है, वैसे ही शिराओं से रक्त इसमें आ जाता है।

निलय में रक्त के भर जाने के पश्चात् इसमें अधिक तीव्र गति से संकुचन होता है। इससे रक्त पर दबाव पड़ता है। निलय में संकुचन आलिन्द निलयी नोड से प्रारम्भ होता है जिससे दोनों निलय में एक साथ संकुचन होता है जिससे आलिन्द निलय के बीच में छिद्र बन्द हो जाते हैं। दांये निलय में अशुद्ध रक्त पलमोनरी धमनी से होकर फेफडों में शुद्ध होने के लिए पहुंच जाता है। बांये निलय से शुद्ध रक्त सम्पूर्ण शरीर के भागों में जाता है। सम्पूर्ण शरीर से रक्त शिराओं के द्वारा दोनों आलिन्द में वापस आता हैं आलिन्द से रक्त निलय में जाता है यह चक्र निरन्तर चलता रहता है।

रक्त वाहिनियाँ :–

रक्त वाहिनियां निम्न प्रकार की होती है ।

1. धमनियां – वह रक्त वाहिनियां जो शुद्ध रक्त को हृदय से शरीर के विभिन्न भागों को ले जाती है, धमनियां कहलाती है।
2. शिराये :– वह वाहिनियां जो कि अशुद्ध रक्त को शरीर के विभिन्न भागों से हृदय में वापिस लाती है।
3. केशिकाऐं :– शरीर के विभिन्न अंगों में जाकर धमनियां एवं शिरायें अधिक महीन शाखाओं में विभाजित हो जाती हैं। जिन्हें कोशिकाएं कहते हैं। धमनी से निकलने वाली केशिकाऐं धमनिकाएं कहलाती हैं। धमनिकाओं से शिरा कोशिकाऐं बनकर बाद में मिलकर शिरिकाएं बनाती हैं।

पाठ्गत प्रश्न –

प्रश्न–1. हृदय शरीर के वक्षीय भाग में किस गुहिका में स्थित होता है ?

प्रश्न–2. हृदय कितने भागों से मिलकर बना होता है ?

प्रश्न–3. 1. स्तनियों में महाधमनी कहां से निकलती है –

अ. बायां आलिन्द ब. दायां अलिन्द

स. दांया निलय द. बांया निलय

2. निलय के संकुचन में

1. रक्त हृदय में प्रवेश करता है।

2. रक्त हृदय से निकलता है।

3. रक्त निलय से निकलता है।

4. रक्त फुफ्फुसों में प्रवेश करता है।

प्रश्न 4 – धमनी एवं शिरा को परिभाषित कीजिये ?

उपइकाई–6

श्वसन तंत्र

मनुष्य में श्वसन

मनुष्य या स्तनियों में गैसीय आदान प्रदान एक विकसित तन्त्र के द्वारा होता है जिसे श्वसन तन्त्र त्मेपचतंजवतल`लेजमउ कहते हैं। यह कई अंगों का बना होता है। इसका सबसे प्रमुख अंग जहां पर गैसीय आदान प्रदान होता है, फेफडा (फुफ्फुस) कहते हैं। इसी कारण इसे फुफ्फुसीय गैसी आदान प्रदान भी कहते हैं।

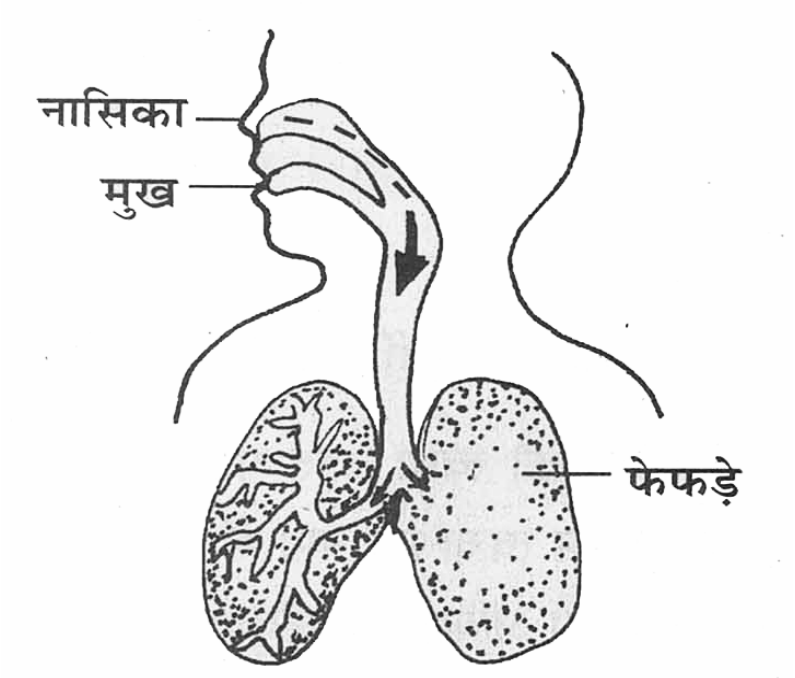

मनुष्य में श्वसन अंग

1. प्रमुख अंग–फेफडे
2. सहायक अंग

1. नासिका छिद्र नासिका एवं नासिका पथ
2. ग्रसनी
3. लेरिक्स
4. ब्रोंकाई

प्रमुख अंग –

1. फेफड़े – ये एक जोड़ी शंकु के समान रचनाएं है, जो हृदय के दोनों तरफ एक एक संख्या में वक्षीय गुहा (जीवतंबपब बंअपजल) के अधिकांश भाग में स्थित होते हैं। इनके चारों तरफ की गुहा को फुफ्फुसीय गुहा कहते हैं। फेफडे रचनात्मक दृष्टि से स्पॉन्जी होते हैं। तथा श्वास नली द्वारा ग्रसनी से जुड़े होते हैं। रचनात्मक दृष्टि से ये ब्रोंकिओल, कूपिका वाहिकाओं, करोड़ों वायु कोषों या कूपिकाओं और रूधिर वाहिकाओं तथा केशिकाओं के जाल में बने होते हैं। ग्रसनी – यह श्वास नली का वह भाग होता है जहां पर पाचन संस्थान एवं वायु मार्ग एक दूसरे को क्रॉस करते हैं। श्वासनली का उपरी सिरा एक छोटे से छिद्र के द्वारा ग्रसनी से जुड़ा होता है। इस छिद्र को ग्लॉटिस कहते हैं। यह छिद्र उपास्थि के एक छिद्र द्वारा ढ़का रहता है। जिसे इपीग्लाटिस कहते हैं।
2. कंठ (संतलदग) श्वासनली का अगला सिरा एक बक्से के समान रचना बनाता है जिसे कण्ठ या स्वरकोष कहते हैं।
3. ब्रोंकाई एवं ब्रोकिओल – (ठतवदबीप ंदक ठतवदबीपवसम) ट्रैकिया या श्वासनली वक्षीय गुहा में जाकर दो भागों में बंट जाती है, इन शाखाओं को ही ब्रोंकाई कहते हैं। ब्रोंकाई की शाखाएं पुनः कई पतली शाखाओं में बंट जाती है जिन्हें ब्रोंकिओल कहते हैं।
4. वक्षीय गुहिका और डायफ्राम – वक्षीय गुहिका एक बड़ी खोखली गुहा के रूप में वक्ष (सीने में) स्थित होती है आन्तरिक रूप से छोटी प्लूरल या फुफफुसीय गुहिकाओं में विभेदित रहती है।

मनुष्य में श्वसन की कार्य विधि

1. श्वासोच्छवास
2. गैसीय परिवहन
3. कोशिकीय श्वसन

श्वासोच्छवास की क्रिया विधि –

इस क्रिया में वायु को फेफड़े के अन्दर लिया जाता है। वहॉ पर गैसीय आदान–प्रदान होता है और CO_2 सहित फेफडे की वायु को शरीर से बाहर कर दिया जाता है।

1. बाह्म अन्तरापर्शुक पेशियां (म्गजमतदंस प्दजमतबवेजंस उनेबसम) – इनका एक जोड़ा प्रत्येक पसली के उपरी भाग से निकलकर अपने पीछे वाली पसली के निचले भाग से जुड़ा होता है।
2. अन्तः अन्तरापर्शुक पेशियां (प्दजमतदंस प्दजमतबवेजंस उनेबसम) – इनका एक जोड़ा प्रत्येक पसली के नीचे भाग से निकलकर अपने पीछे वाली पसली के उपरी भाग से जुड़ा होता है।

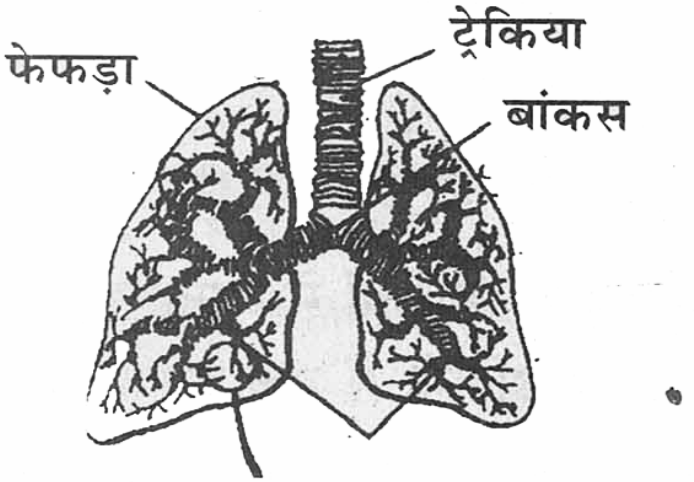

श्वास लेने तथा छोड़ने की क्रिया विधि

1. निश्वसन – निश्वसन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शुद्ध वायु फेफडों में प्रवेश करती हैं जिससे वक्षीय गुहिका का आयतन बढ़ जाता है और वायु नाक से होती हुई फेफडों में पहुंच जाती है। फेफडों में पाए जाने वाले वायुकोषों में गैसीय आदान प्रदान होता है।
2. निः श्वसन – निःश्वसन वह क्रिया है जिसके द्वारा फेफडों की वायु को बाहर किया जाता है। इस क्रिया में वक्षीय गुहा और फेफडों का आयतन कम हो जाता है, फलतः फेफडों की वायु बाहर आ जाती है। यह क्रिया बार–बार होती रहती है।

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न–1 बहुविकल्पीय प्रश्न

1. निश्वसन के समय डायफ्राम की पेशियां

   क. शिथिल हो जाती हैं ख. संकुचित होती हैं

   ग. प्रसारित होती हैं घ. अप्रभावित रहती हैं

2. निम्न में से कौन श्वसनांग नहीं है

   क. इसोफैगस ख. नैसोफैरिक्स

   ग. ट्रैकिया घ. लैरिक्स

प्रश्न–2 रिक्त स्थान –

1. फेफडे ..... में स्थित होते है।
2. फेफडों की संख्या ..... होती है।

प्रश्न–3 श्वसन की परिभाषा दीजिये।

प्रश्न–4 मनुष्य के श्वसन तन्त्र के विभिन्न अंगों के नाम लिखिये।

उपइकाई–7

उत्सर्जन तंत्र

मनुष्य में एक विकसित उत्सर्जन तन्त्र पाया जाता है जिसके द्वारा यह नाइट्रोजन युक्त उत्सर्जी पदार्थों को शरीर से बाहर करता है। इसके अलावा त्वचा, यकृत, प्लीहा, मलाशय और फेफड़े भी शरीर में बने विविध उत्सर्जी पदार्थों को शरीर से बाहर करते हैं।

मनुष्य का उत्सर्जन तन्त्र – 1. एक जोड़ी वृक्क (ज्ञपकदमल)

2. एक जोड़ी मूत्रवाहिनियां (न्तमजमते)
3. मूत्राशय (न्तपदंतल इसंककमत)
4. यूरेथ्रा (न्तमजीतं)

1. एक जोड़ी वृक्क (ज्ञपकदमल) – मनुष्य की उदर गुहा के पृष्ठ भाग में डायफ्राम के नीचे एक जोड़ी गहरे लाल रंग की चिकने सेम के बीज की आकृति के अंग कशेरूक दण्ड के इधर उधर स्थित होते हैं। जिन्हें वृक्क कहते हैं।

दांयी किडनी बॉयी किडनी की अपेक्ष कुछ नीचे की ओर स्थित हेाती है।

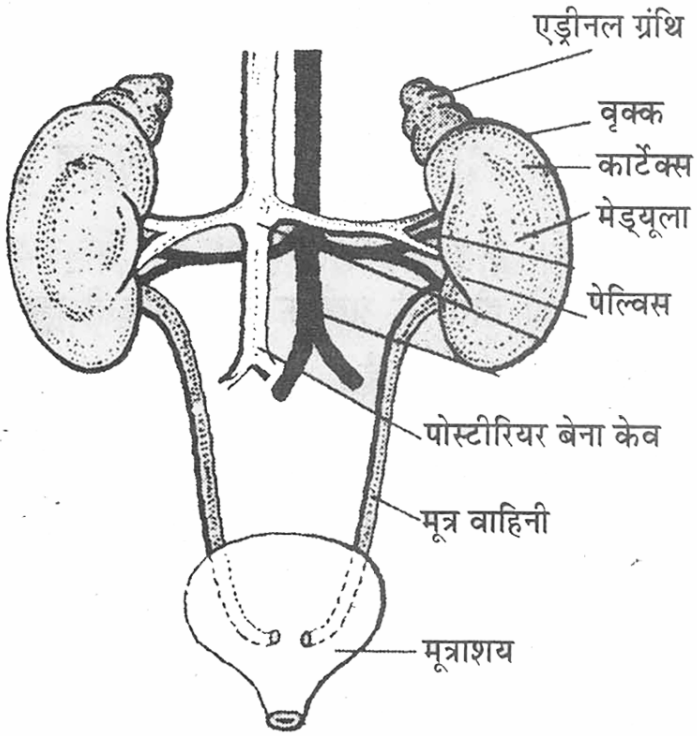

मनुष्य का उत्सर्जन तंत्र

किडनी की बाहरी सतह बवदअमग तथा आन्तरिक सतह बवदबंअम होती है।

किडनी की अवतल सतह पर एक गड्ढ़ा होता है जिसको वृक्क–नाभि दपसनउ कहते हैं।

किडनी से मूत्रवाहिनी एवं रीनल शिरा बाहर निकलती है और रीनल धमनी किडनी के अन्दर प्रवेश करती है। किडनी के चारों ओर एक संयोजी उत्तकों का बना आवरण दिखायी देता है। इसके अन्दर दो भागों में बंटा रहता है। बाहरी भाग को कॉर्टेक्स बवतजमग तथा भीतरी भाग को मेडुला डमकनसं कहते हैं। कॉर्टेक्स भाग थोडी–थोडी दूर पर मेडुला के अन्दर धंसकर कगोर बनाता है जिन्हें बर्टिनी के वृक्कीय स्तम्भ कहते हैं। इन नगार रूपी स्तम्भों के बीच–बीच में मेडुला तिकोने उभारों के रूप में उठी रहती है जिन्हें वृक्कीय शंकु त्मदंस चलतंउपकम कहते हैं। इनके चौडे आधार कॉर्ट्रिक्स की तरफ और शिखर वृक्क के केन्द्र की ओर स्थित होते है। इन शिखरों को वृक्क अंकुर त्मदंस च्वपससंम कहते हैं।

नेफ्रान की रचना :

यह दो भागों का बना होता है :–

1. बोमन सम्पुट (ठवूउंदे बंचेनसम) : नेफ्रान की प्याले समान संरचना होती हैं जिसे वोमन सम्पुट कहते हैं। बोमन सम्पुट की दीवार ग्रन्थिल एपीथीलियम कोशिकाओं की बनी होती हैं इस सम्पुट की गुहा में रूधिर वाहिकाओं का एक जाल पाया जाता हैं जिसे

ग्लोमेरूलस कहते हैं। वास्तव में रीनल धमनी वृक्क में जाकर कई शाखाओं अर्थात् धमनिकाओं (।तजमतपमे) में बंट जाती है।

2. स्त्रावी कुण्डलित भाग (मबतमजवतल ज्नइनसंत चंतज) यह बोमन सम्पुट के पीछे का कुण्डलित भाग होता है इसके तीन भाग होते हैं।

1. समीपस्थ कुण्डलित नलिका
2. ∩ आकार का हेनले का लूप यह मेडूला में स्थित होता है।
3. दूरस्थ कुण्डलित नलिका यह वृक्क की संग्रहक नलिका में खुलती है।

(। चंपत वि नतमजमते) एक जोडी मूत्रवाहिनियां – प्रत्येक वृक्क के पेल्विस से एक मूत्रवाहिनी निकलती है जो मूत्राशय में समाप्त होती है। अतः मनुष्य में दो मूत्रवाहिनियां पायी जाती हैं। ये मूत्र को वृक्क से मूत्राशय में पहुंचा देती है।

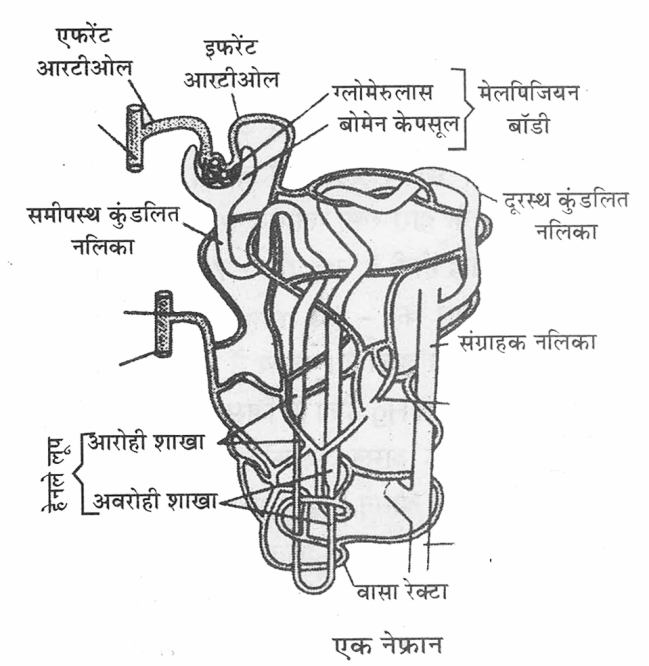

एक नेफ्रान

मूत्राशय (न्तपदंतल इसंककमत) प्रत्येक मनुष्य की उदर गुहा के पिछले भाग में एक छोटी सी थैलीनुमा रचना पायी जाती है जिसे मूत्राशय कहते हैं।

मूत्रमार्ग (न्तमजीतं) : पुरूष तथा स्त्री दोनों में ही मूत्राशय एक पतली नली द्वारा बाहर खुलता है, जिसे मूत्रमार्ग (न्तमजीतं) कहते हैं। स्त्रियों में मूत्रमार्ग एक छोटी नलिका होती है जिससे होकर केवल मूत्र बाहर निकलता है, जबकि पुरूषों में इससे मूत्र के साथ वीर्य भी बाहर निकलता है।

मूत्र निर्माण की क्रिया विधि

1. अतिसूक्ष्म निः स्पंदन (न्सजतंपिसजतंजपवद)
2. पुनः अवशोषण (त्मंइेवतचजपवद)
3. स्त्रावण (मबतमजपवद)

1. अतिसूक्ष्म निः स्पन्दन :–

यह क्रिया किडनी के बोमन सम्पुट में होती है। बोमन सम्पुट और ग्लोमेरूलस की भित्ति आपस में मिलकर अर्ध पारगम्य झिल्ली के रूप में छानने का कार्य करती है। पहले धमनिका के द्वारा ब्लड ग्लोमेरूलस में आता है। मनुष्य में प्रभावी निःस्पन्दन दाब + 20उउ भ्ह होता है जिससे रक्त में उपस्थित यूरिया, यूरिक अम्ल, ग्लुकोज, लवण एवं अन्य पदार्थ बोमन सम्पुट में आते हैं। 24 घण्टे में 1.5 लीटर मूत्र विसर्जित किया जाता है।

2. पुनः अवशोषण : बोमन सम्पुट में रक्त में उत्सर्जी पदार्थों के साथ–साथ कुछ उपयोगी पदार्थ जैसे ग्लुकोज, जल, लवण आदि भी आ जाते हैं। जिससे शरीर में निर्जलीकरण की स्थिति बन सकती है और मृत्यु भी हो सकती है जिससे कि ये पदार्थ मूत्र द्वारा बाहर न आये, नेफ्रान की इपीथीलियल कोशिकायें इन उपयोगी पदार्थों को पुनः अवशोषित कर रक्त कोशिकाओं में डाल देती हैं बाद में शेष बचा द्रव गाढ़ा हो जाता है। इसको मूत्र कहते हैं यह मूत्र पेल्विस और फिर मूत्र वाहिनी से होकर मूत्राशय में पहुंच जाता है। तथा शरीर से बाहर निकाल दिया जाता हैं पुनः अवशोषण की क्रिया नेफ्रान के स्त्रावी भाग में होती है।

3. स्त्रावण (मबतमजपवद) : ग्लोमेरूलस में छनन के बावजूद रूधिर में कुछ उत्सर्जी पदार्थ शेष रह जाते हैं जिन्हें वृक्क नलिका कीदीवार की कोशिकाएं अवशोषित कर लेती है, क्योंकि ग्लोमेरूलम से आने वाली केशिकाएं वृक्क नलिका के चारों तरफ जाल के रूप में स्थित होती है। वृक्क नलिका द्वारा अवशोषित ये वर्ज्य पदार्थ जैसे – यूरिया, यूरिक अम्ल और अमोनिया वृक्क नलिका की कोशिकाओं से विसरित होकर नलिका के मूत्र में शामिल हो जाते हैं।

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न 1. नेफ्रान कितने भागों से मिलकर बना होता है ?

प्रश्न 2. मूत्र निर्माण के चरणों के नाम बताइए।

प्रश्न 3. बहुविकल्पिय प्रश्न

1. मनुष्य के वृक्क में बोमन सम्पुट कहां स्थित होते हैं

क.	मेडुला में	ख.	कॉर्टेक्स
ग.	पेल्विस में	घ.	हाइलम में

2. स्तनियों का मुख्य उत्सर्जी पदार्थ होता है

क.	अमीनो अम्ल	ख.	अमोनिया
ग.	यूरिया	घ.	यूरिक अम्ल

3. हेनले के लूप का कार्य संबंधित है।

क.	उत्सर्जन तन्त्र से	ख.	प्रजनन तन्त्र से
ग.	मूत्र जनन से	घ.	तन्त्रिका तन्त्र से

उपइकाई–8

तंत्रिका तंत्र

''प्राणियों में सोचने, समझने और किसी चीज को याद रखने के साथ साथ शरीर के विभिन्न अंगों के कार्यों में समन्वय और सन्तुलन स्थापित करके नियंत्रण बनाये रखने वाला तंत्र, तंत्रिका तंत्र कहलाता है।

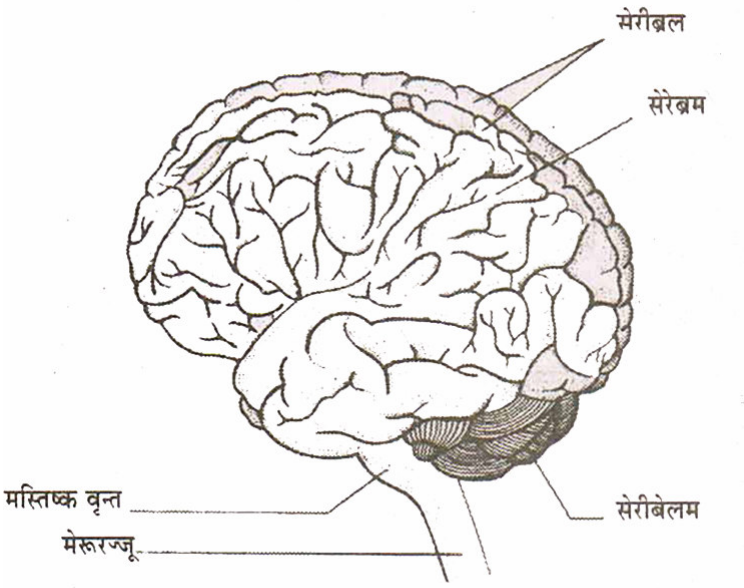

मस्तिष्क की बाह्य संरचना

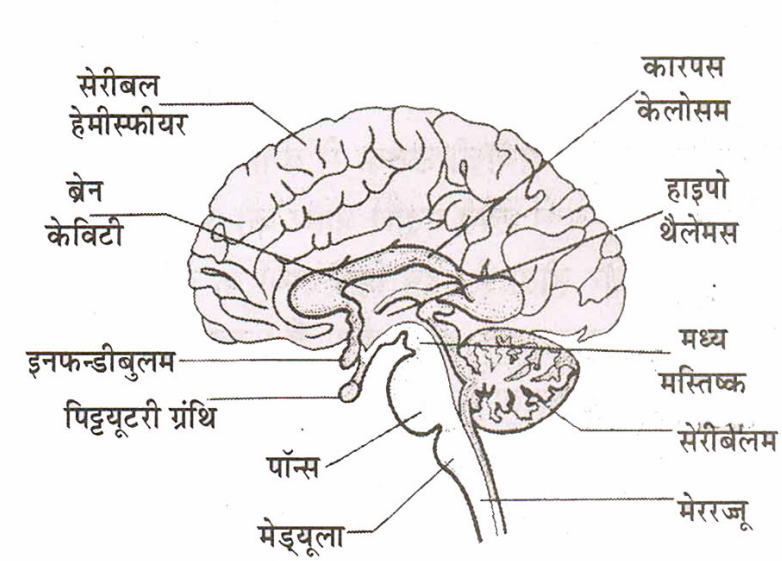

मनुष्य मस्तिष्क का लम्बवत काट

मनुष्य में तंत्रिका तंत्र विशेष प्रकार की कोशिकाओं से बना होता है जिन्हें न्यूरॉन्स कहते हैं। तंत्रिका तंत्र में तंत्रिका कोशिका और तंत्रिका रज्जू होते हैं।

तंत्रिका रज्जु दो प्रकार के होते हैं :–

1. ऐक्सान व
2. डेन्ड्रान

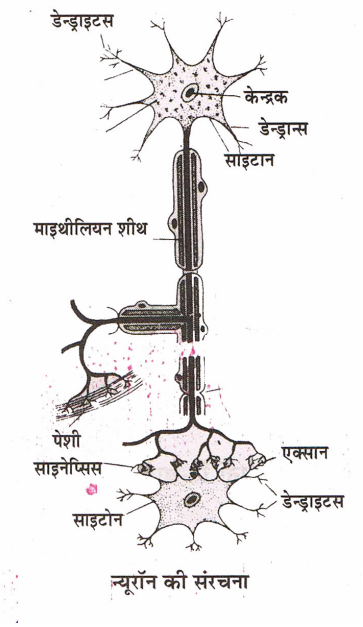

न्यूरॉन की संरचना

1. ऐक्सान – ऐक्सान संख्या में एक लम्बा एवं समान मोटाई वाला प्रवर्ध होता है।
2. डेन्ड्रॉइट – ये संख्या में अधिक साइटान से निकलते हैं इनके आधार भाग मोटे होते हैं और क्रमशः पतले होते जाते हैं।

   तंत्रिका कोशिका (बलजवद) का कोशिका द्रव कणिकामय होता है। इसमें एक गोल बड़ा केन्द्रक अधिक संख्या में माइट्रोकोन्ड्रिया निखिल कण पाए जाते हैं।

मनुष्य का तंत्रिका तंत्र –

मनुष्य का तंत्रिका तंत्र निम्न तीन भागों में विभाजित किया जाता है :–

1. केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र
2. परिधीय तंत्रिका तंत्र
3. स्वायतः तंत्रिका तंत्र

1. केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र : यह तंत्र शरीर के अंगों, तंत्रों एवं तंत्रिका तंत्र को नियंत्रित करता है। इसके दो भाग हैं – मस्तिष्क एवं सुषुम्ना रज्जु (स्पाइनल कार्ड) आते हैं। इनसे निकलने वाली तंत्रिकाएं तीन प्रकार की होती है।

संवेदी– ये तंत्रिकाएं ज्ञानेद्रियो से आवेगा के रूप मे सामाचार ले जाती है और मस्तिष्क को देती हैं

प्रेरक – ये तंत्रिकाएं मांसपेशियो कार्य करने के लिए आवेग के रूप में आदेश ले जाती है।

मिश्रित – ये दोनो प्रकार के कार्य करती है मेरूरज्जू से निकलने वाली सभी तंत्रिकाएं इसी प्रकार की होती है।

मस्तिष्क (ठतंपद) –

मनुष्य का मस्तिष्क खोपडी (ानसस) में सुरक्षित रहता हैं यह तंत्रिका तंत्र का मुख्य केन्द्र बिन्दु होता है, जिसके द्वारा शरीर के विभिन्न क्रियाओं का नियंत्रण होता है मस्तिष्क के चारों ओर संयोजी ऊतक की बनी झिल्लियां पाई जाती हैं इनको मस्तिष्कावरण (डमदपदह) कहते है। तीनों झिल्लियों के बीच स्थान में एक द्रव पाया जाता है जिसको मस्तिष्क सुषुन्ना द्रव कहते है।

मस्तिष्क की संरचना – चित्र

मस्तिष्क को तीन भागों में विभाजित किया जाता है :–

1. अग्र मस्तिष्क (थ्वतम इतंपद)
2. मध्य मस्तिष्क (डपक इतंपद)
3. पश्च मस्तिष्क (भ्पदक इतंपद)

1. अग्र मस्तिष्क (थ्वतम इतंपद) :–

यह मस्तिष्क का आगे का भाग है यह प्रमस्तिष्क (बमतमइतनउ) एवं हायपोथैलेमस (ीलचवजींसंदने) का बना होता है।

प्रमस्तिष्क (बमतमइतनउ) :– मस्तिष्क का यह भाग अधिक विकसित होता है। प्रमस्तिष्क की बाहरी सतह पर उभार (हलतप) एवं खांच (नसबप) के वलन एवं दरारें पायी जाती हैं। प्रमस्तिष्क दो गोलार्धों का बना होता है। ये गोलार्ध आपस में अनुप्रस्थ पट्टिका कार्पस कैलोसम (बवतचने बंससवेनउ) से जुडे होते हैं।

1. मध्य मस्तिष्क (उपक इतंपद) यह भाग मस्तिष्क को पश्च मस्तिष्क से जोड़ता है यह दो भागों कार्पोरा क्वाड्रीजेमिना एंव प्रमस्तिष्क तन्तु का बना होता हैं कार्पोरा क्वाड्रीजेमिना दो जोड़ी गोलाकार ठोस संरचनाओं के रूप में होता है, जोकि दृष्टि एवं श्रवण उद्दीपन को ग्रहण करते है।
2. पश्च मस्तिष्क (भ्पदक इतंपद) यह अनुमस्तिष्क पॉन्स वेरोलाई एवं मेड्यूला आब्लागेंरा का बना होता है।

1. अनुमस्तिष्क – यह मस्तिष्क का ठोस, पीछे का भाग है। यह अंग विन्यास एवं शारीरिक संतुलन को बनाए रखता है।
2. मेडयूला ऑब्लान्गेटा – यह मस्तिष्क का सबसे पीछे का भाग है, यह पीछे की ओर बढ़कर सुषुन्मा रज्जु (चपदंस बवतक) को बनाता है।
3. पोन्स वेरोलाई (च्वदे अमतवसस) यह तंत्रिका तन्तुओं की बनी एक पट्टिका के समान संरचना है, जो कि अनुमस्तिषक के एक भाग से दूसरे भाग में प्रेरणाओं को ले जाते हैं।

मस्तिष्क के कार्य –

1. घ्राण पिण्ड ग्रन्थ को दर्शाता है।
2. प्रमस्तिष्क चेतना, बुद्धि स्मृति, विचार एवं इच्छा शक्ति का केन्द्र है।
3. यह तंत्रिका तंत्र के शेष भागों पर नियंत्रण रखता है।
4. ऐच्छिक गतियों का नियंत्रण।
5. हृदय स्पन्दन, श्वसन दर एवं आहारनाल की क्रमाकुंचन गति पर नियंत्रण।

मस्तिष्क

मेरूरज्जु (चपदंस ब्वतक) मस्तिष्क के समान सुषुम्ना भी संयोजी ऊतक से बनी तीन झिल्लियों से घिरी रहती है। सुषुम्ना में श्वेत पदार्थ बाहर की ओर धूसर पदार्थ अन्दर की ओर होता हैं झिल्लियों के बीच सुषुम्ना द्रव भरा रहता हैं यह सुषुम्ना को बाहरी आघातों से रक्षा करता हैं

मेरूरज्जु की अनुप्रस्थ काट चित्र

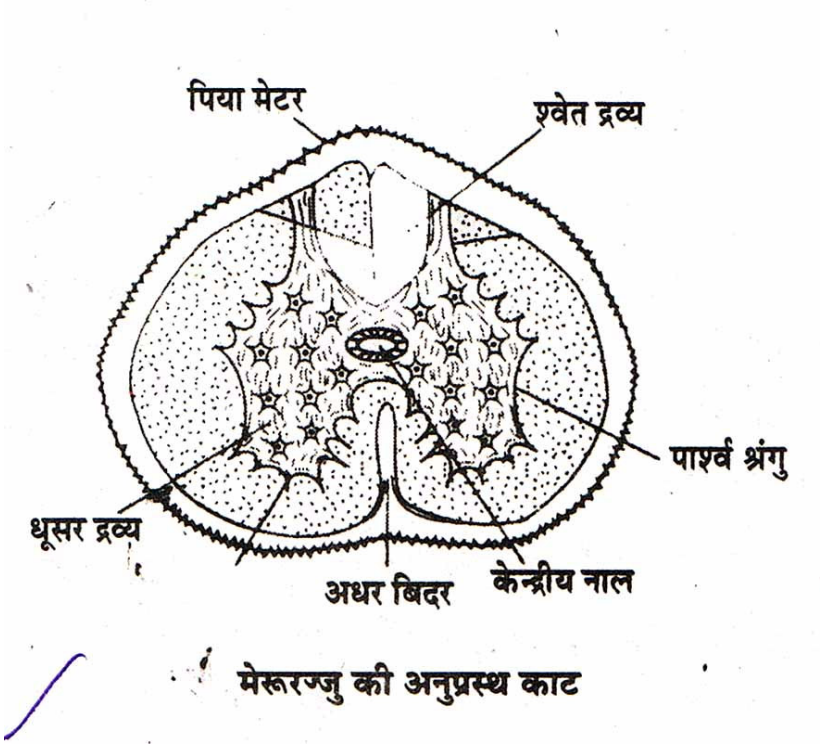

मेरूरज्जु की अनुप्रस्थ काट

मेरूरज्जू की संरचना –

मेरूरज्जु के मध्य में केन्द्रीय नाल स्थित होती हैं इस नाल के चारों ओर धूसर पदार्थ पाया जाता हैं। धूसर पदार्थ के द्वारा पृष्ठीय सतह पर अधर श्रंगु बनाया जाता है इसी प्रकार धूसर पदार्थ वक्षीय एवं लम्बर क्षेत्र में पार्श्व श्रंगु को बनाता है। सुषुम्ना की केन्द्रीय नाल में मस्तिष्क की गुहिका

के समान प्रमस्तिष्कीय सुषुम्ना द्रव पाया जाता है। सुषुम्ना को केन्द्रीय नाल में मस्तिष्क की गुहिका के समान प्रमस्तिष्क सुषुम्ना द्रव पाया जाता है।

मेरूरज्जू से 31 जोडी सुषुम्ना तंत्रिकाऐं निकलती हैं। प्रत्येक सुषुम्ना तंत्रिका सुषुम्ना से दो मूले से जुडे रहती है।

मेरूरज्जू के कार्य :–

1. मस्तिषक से आने वाली प्रेरणाओं या उद्दीपनों का संवहन करती है।
2. मेरूरज्जू प्रतिवर्ती क्रियाओं का समन्वय एवं नियंत्रण करती है।

परिधीय – तंत्रिका तंत्र इसके अन्तर्गत तंत्रिकाएं जो कि मस्तिष्क एवं सुषुम्ना से निकलती है। मस्तिष्क से निकलने वाली तंत्रिकाओं को कपालीय तंत्रिकाएं (बतंदपंस दमतअमे) एवं सुषुम्ना से निकलने वाली तंत्रिकाओं की सुषुम्ना तंत्रिकाएं `चपदंस दमतअमे कहते हैं।

प्रतिवर्ती क्रिया –

मनुष्य के शरीर में वे अनैच्छिक क्रियाऐं जो किसी प्रेरणा या उद्दीपनों या फिर किसी प्रतिक्रिया के रूप में होती है, प्रत्यावर्ती क्रिया कहलाती हैं प्रत्यावर्ती क्रिया प्रारंभ में तंत्रिका तंत्र के द्वारा किया जाने वाला कार्य है।

इन क्रियाओं के द्वारा शरीर की रक्षा होती है, जैसे कि तीव्र प्रकाश में पलकों का झपकना, पैर या हाथ में नुकीली वस्तु चुभने से हाथ या पैर का हटा लेना।

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न–1. न्यूरॉन्स किसे कहते है।

प्रश्न–2. ऐक्सान व डेन्ड्रान से आप क्या समझते है ?

प्रश्न–3. मनुष्य में कितने प्रकार के तंत्रिका तंत्र पाए जाते हैं।

प्रश्न–4. मस्तिष्क के प्रमुख कार्य क्या हैं ?

प्रश्न–5. सुषुम्ना (स्पाइनल कार्ड) के क्या कार्य हैं ?

उपइकाई–9

अंतस्त्रावी तंत्र

मनुष्य में विशिष्ट प्रकार के पदार्थ जो कि शरीर के जैविक उपायचयी क्रियाओं व शरीर की वृद्धि एवं विकासात्मक क्रियाओं का नियंत्रण एवं समन्वय करते हैं। हॉर्मोन कहलाते है मानव में ये हॉर्मोन विशिष्ट नलिका विहीन ग्रन्थियों में बनते हैं जिन्हे अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियॉ म्दकवबतपदम हसंदके कहते हैं। ये ग्रन्थियॉ एक साथ शरीर में होने वाली क्रियाओं का नियंत्रण करती हैं तब इसे अन्तः स्त्रावी तन्त्र ;म्दकवबतपदम`लेजमउद्ध कहते है।

अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियों के प्रकार :–

(1) बहिः स्त्रावी ग्रन्थियॉ – वे ग्रन्थियों जो अपने स्त्राव को नलिकाओं द्वारा सम्बन्धित अंगों तक पहुचाती हैं।

(2) नलिका विहीन ग्रन्थियॉ – इस ग्रन्थियों में नलिकाओं का पूर्णतः अभाव होता है। नलिका विहीन होने के कारण इन्हें नलिका विहीन ग्रन्थियॉ भी कहते हैं।

(3) मिश्रित ग्रन्थियॉ –ये बहि स्त्रावी और अन्तः स्त्रावी दोनों प्रकार की होती हैं, इनका बहिः स्त्रावी भाग प्रमुख होता है, ये मिश्रित ग्रन्थियॉ कहलाती हैं।

हॉर्मोन्स :– अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियों द्वारा स्त्रावित ऐसे कार्बनिक यौगिक हैं जो रूधिर द्वारा शरीर के विभिन्न भागों में पहुंचकर विशिष्ट अंगों एवं ऊतकों के कार्यों का नियंत्रण एवं समन्वय करते हैं।

मनुष्यों में अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियों के अलावा कुछ अन्य अंग भी हॉर्मोनों का स्त्राव करते हैं, इन अंगो को सामान्य रूप से अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियॉ ही माना जाता है।

;।द्ध अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियॉ –

(अ) थायरॉइड ग्रन्थि :– यह ग्रन्थि मनुष्य के गर्दन में श्वासनली व स्वर यन्त्र के जोड़ के अधर–पार्श्व तल पर दोनों तरफ एक–एक की संख्या में स्थित होती है। ये मनुष्य की सबसे बड़ी अन्तः स्त्रावी ग्रन्थि है। इसके द्वारा तीन हॉर्मोन का स्त्राव होता है, थायराक्सिन, ट्राइआयोडो तथा थाइरोनिन

कार्य –

(i) थायरॉक्सिन उपायचयी क्रियाओं पर नियन्त्रण करता है।

(ii) थायरॉक्सिन शरीर की सामान्य वृद्धि को नियन्त्रित करता है

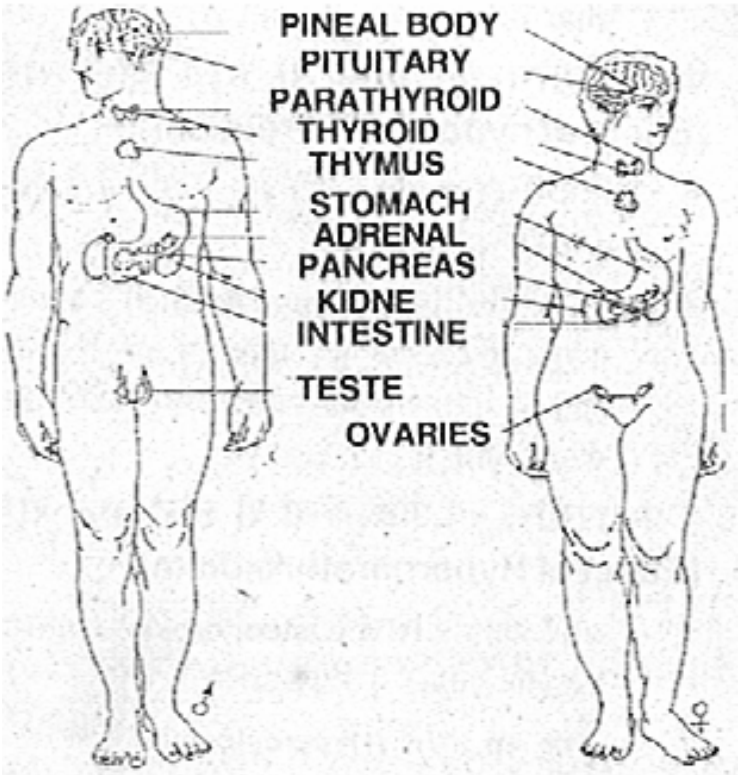

मनुष्य में पाई जाने वाली अन्तः स्त्रावी ग्रन्थियाँ एवं अन्य संरचनाये जिनमें अन्तः स्त्रावी कोशायें पाई जाती है।
ENDCRINE GLANDS IN HUMAN

;ठद्ध पैराथायरॉइड ग्रन्थि – दो जोडी पैराथायरॉइड ग्रन्थियॉ दो–दो की संख्या में थायरॉइड ग्रन्थि की प्रत्येक पालि की पृष्ठ सतह पर धॅसी रहती है ये मटर के दाने के समान लाल रंग की होती है। इसके द्वारा स्त्रावित हॉर्मोन पैराथॉर्मोन और कैल्सीटोनिन हैं।

कार्य –

अ. यह पेशी संकुचन, प्रेरणा संवहन, हृदय स्पंदन रक्त स्कन्दन, अस्थि निर्माण, अण्डाणु निवेचन इत्यादि में सहयोग करता है।

ब. अधिवृक्क ग्रन्थि – दोनों वृक्कों के शीर्ष पर टोपी के समान एक–एक अधिवृक्क ग्रन्थि पायी जाती है, जो गाढ़े–भूरे रंग की होती है,

कार्य –

1. एड्रीनल ग्रन्थि से निकलने वाला लिंग हॉर्मोन मानव में द्वितीय लैंगिक लक्ष्णों को नियंत्रित करता है।
2. एड्रनेलीन रूधिर में धक्काकरण में सहायक होता हैं

स. पीयूष ग्रन्थि – मास्टर ग्रंथी – यह अग्रमस्तिषक में अस्थित होती है। इस ग्रन्थि को हाइपोफाइसिस भी कहते है। यह शरीर की सभी अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों पर नियन्त्रण रखती है, इस कारण इसे पहले मास्टर ग्रन्थि भी कहते हैं यह तीन भागों का बना होता है, क्रमशः अग्रपालि, मध्यपालि, पश्चपालि में विभक्त होती है।

इसके द्वारा स्त्रावित हार्मोन

1. सोमैटोट्रॉफिक हॉर्मोन,
2. गोनैडोट्राफिक हार्मोन,
3. एड्रीनोकॉर्टि कोट्राफिक हार्मोन,
4. थायरो ट्राफिक हार्मोन,
5. लैक्टोजैनिक हार्मोन,
6. डायबेटोजीनिक हार्मोन
7. मिलैनोसाइट प्रेरक हॉर्मोन

कार्य –

1. सोमैटो ट्राफिक बाल्यावस्था में कम स्त्राव होने से शरीर बौना हो जाता है।
2. थायरोट्राफिक हार्मोन यह थायराइड ग्रन्थि की वृद्धि एवं स्त्राव क्रिया को नियन्त्रित करता है।
3. डायबेटोजेनिक हार्मोन, कार्बोहाइड्रेट्स वसाओं एवं उपापचय को प्रभावित करता है।
4. थाइमस ग्रन्थि –

   यह वक्षीय गुहा में हृदय से आगे, ट्रैकिया के इधर–उधर स्थित होती है यह गुलाबी द्विपालिवत् चपटी ग्रन्थि है।

कार्य –

1. ये वृद्धि एवं भिन्नता को नियन्त्रित करते हैं।
2. जनदों की वृद्धि को रोकते हैं।

पिनीयल काय –

यह ग्रन्थि अग्र मस्तिष्क में डायनसेफैलान की मध्य पृष्ठ सतह स्थित होती है। यह सफेद, छोटी, चपटी ग्रन्थी है।

ये दो हार्मोन को स्त्रावित करती है। मिलैटोनिन तथा सिरोटोनिन स्त्रावित होते हैं।

कार्य –

1. यह जनन अंगों की वृद्धि को प्रेरित करता है।
2. यह लैंगिक परिपक्वता लाता है।

क. अग्नाशय – उदर गुहा में आमाशय के पीछे लगीाग 20 सेमी लम्बी हल्की गुलाबी रंग की एक चपटी ग्रन्थि पायी जाती है जो मिश्रित ग्रन्थि अग्नाशय कहलाती है। इसके द्वारा इन्सुलिन, ग्लूकैगॉन तथा सोमैटोस्टैरिन हॉर्मोन स्त्रावित करता हैं

कार्य –

1. इन्सुलिन ग्लुकोज उपापचय का नियन्त्रण करता है।
2. यह ऊतकों में वसा एवं आर.एन.ए. के संश्लेषण को प्रेरित करता है।

ख जनद –

जनद कोशिकाओं का निर्माण करने वाले अंगों को जनद कहते हैं। अतः ये मूलतः प्रजनन अंग है, लेकिन प्रजनन के साथ इनकी कुछ कोशिकाएं अन्तः स्त्रावी कोशिकाओं का कार्य करती है। कुछ हॉर्मोग्नों का स्त्रावण करती है।

ग. वृष्ण – यह नर का जनन अंग है जब यह परिपक्व हो जाता है तब इसमें शुक्रणाओं का बनना प्रारम्भ हो जाता है। वृष्ण एण्ड्रोजन्स हॉर्मोन स्त्रावित करता है।

अण्डाशय – ये स्त्रियों का जनन अंग है इसका मुख्य कार्य अण्डाणुओं को बनाना है, इसके द्वारा एस्ट्रोजन, प्रोजेस्ट्रॉन रीलैक्सीन हॉर्मोन का स्त्रावण होता है।

कार्य –

1. एण्ड्रोजन्स नर के द्वितीयक लैंगिक लक्षणों के निर्माण को प्रेरित करते हैं।
2. एस्ट्रोजेन स्त्रियों में द्वितीयक लैंगिक लक्षणों को नियन्त्रित करता है।
3. प्रोजेस्ट्रॉन गर्भाशय को निषेचित अण्ड को ग्रहण करने के लिए तैयार करता हैं

पाठ्गत प्रश्न –

प्रश्न1. रिक्त स्थान

1. मिलेटोनिन हॉर्मोन ..... द्वारा स्त्रावित होता है।
2. एण्ड्रोजन्स हॉर्मोन ..... द्वारा स्त्रावित होता है।

प्रश्न–2. थायरॉइड ग्रन्थि के दो कार्य लिखिए।

प्रश्न–3. पीयुष ग्रन्थि को मास्टर ग्रंथि क्यों कहते हैं ?

प्रश्न–4. पिनीयलय काय से स्त्रावित होने वाले हॉर्मोन के नाम लिखिए ?

उपइकाई–10

मानव में जनन तंत्र

प्रजनन तथा जनन जीवधारियों का एक प्रमुख लक्षण होता है। इस क्रिया में जीव अपने ही आकार के जीव को उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। मनुष्य स्तनी वर्ग का सबसे अधिक विकसित और प्रमुख जन्तु है। इसकी दोनों जनन कोशिकाएं अलग–अलग जीवों (शरीरों) में बनती है। उन जीवों को जिसमें नर युग्मक या शुक्राणु ैचमतउ) बनते हैं नर (उंसम) तथा जिसमें मादा युग्मक या अण्डाणु बनते हैं मादा (थ्मउंसम) कहलाते हैं।

नर जनन अंग डंसम त्मचतवकनबजपअम व्तहंदे

मनुष्य का नर जनन तन्त्र कई अंगों का बना होता है और युग्मकों के निर्माण के साथ कुछ लिंग हार्मोनों का भी स्त्राव करता है नर तन्त्र का वह अंग जो शुक्राणु ैचमतउ का निर्माण करता है, वृषण (ज्मेजपे) कहलाता है।

1. वृषण एवं वृषण कोष :

   मनुष्य में वृषण शरीर से बाहर त्वचा की एक थैली में दोनों पैरों के बीच में शिश्न ;च्मदपेद्ध के दोनों तरफ लटकता रहता है। त्वचा की इस थैली को वृषणकोष ;बतवजनउद्ध कहते हैं।

2. अधिवृषण ;म्चपकपकलउपेद्ध – वृषण की प्रत्येक शुक्र जनन नलिका से एक एक पतली नली निकलती है जिसे वास इफरेन्शिया कहते हैं। सभी वास इफरेन्शिया वृषण से बाहर आकर एक जाल बनाती है जिसे व्रृषण जालक कहते हैं। इसी वृषण जालक से एक मोटी कुण्डलित नली निकलती है जिसे अधिवृषण कहते हैं। जो कि आगे जाकर शुक्रवाहिका बनाता है।
3. शुक्रवाहिका ;टें कममितमदेद्ध – यह लगभग 30 सेमी लम्बी नली है जो प्रत्येक तरफ से अधिवृषण से शुरू होती है तथा वक्षण नाल से होते हुए उदर गुदा में आती है तथा अपने अपने तरफ के शुक्राशय में खुलती है।
4. शुक्राशय ;मउपदंस टमेपबसमद्ध – मनुष्य में एक जोडी पतली मांसल दीवारों के बने लगभग 4–4 सेमी लम्बे, थैली के समान शुक्राशय प्रोस्टेट ग्रन्थि के उपर स्थित होते है, इनकी दीवार के आन्तरिक स्तर की कोशिकाऐं एक चिपचिपा पदार्थ स्त्रावित करती है जो शुक्राणुओं का पोषण करता है।
5. मूत्रमार्ग ;न्तमजीतंद्ध – यह एक पेशीय नलिका है जो मूत्राशय से मूत्र को बाहर निकालने का कार्य करती है और शिश्न के शीर्ष पर खुलती है, किन्तु राह में इसमें शुक्राशय से स्खलन नलिका भी आकर मिलती है।
6. शिश्न ;च्मदपेद्ध – यह नर का बाह्य जनन अंग है जो विशेष प्रकार के स्पॉन्जी ऊतकों का बना होता है। इसके बीच में यूरेथ्रा स्थित होती है। इसका उपरी फूला सिरा शिश्न मुण्ड ;ळसंदे च्मदपेद्ध कहलाता है।

7. प्रोस्टेट तथा काउपर ग्रन्थियाँ – जहां पर स्खलन नलिका यूरेथ्रा के चारों तरफ एक ग्रन्थि पायी जाती है जिसे पुरस्थ ग्रन्थि कहते हैं। इससे अनेक सूक्ष्म नलिकायें निकलती हैं जिनसे होकर पतला दूध के समान द्रव स्त्राव होता है जो कि यूरेथ्रा में पहुंचता है।

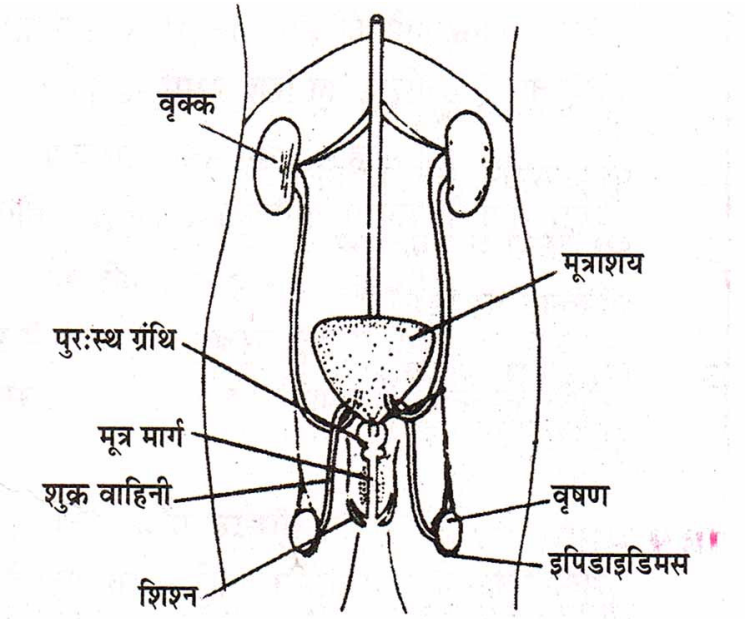

पुरुष के नर जननांग
(सामने से)

वीर्य या शुक्र ैमउमदद्ध –

शुक्राणुओं, शुक्राशय द्रव, पुरःस्थ एवं काउपर्स ग्रन्थियों के स्त्राव को एक साथ वीर्य कहते हैं। इसमें यूरेथ्रा की दीवार में स्थित यूरेथ्रल ग्रन्थियों का स्त्राव भी सम्मिलित होता है। यह मैथुन के अंतिम चरण में एक गाढ़े सफेद द्रव के रूप में निकलता है।

2. स्त्री जननांग –

मनुष्य का मादा जनन तन्त्र भी कई अंगों का बना होता है मादा युग्मक के निर्माण के साथ कुछ हार्मोनों का भी स्त्राव करता है जो द्वितीयक लैंगिक लक्षणों के बनने, गर्भ धारण के लिये गर्भाशय को तैयार करने, गर्भपतन तथा दुग्ध स्त्रावण इत्यादि क्रियाओं का नियंत्रण करते हैं।

1. अण्डाशय ब्अंतल – एक जोडी बादाम के आकार के अण्डाशय उदर गुदा के निचले भाग में गर्भाशय के दोनों तरफ एक एक की संख्या में स्थित होते हैं। अण्डाशय पेरीटोनियम झिल्ली द्वारा उदर से लटके रहते हैं। इनका प्रमुख कार्य अड़ाणुओं का निर्माण एवं एस्ट्राजेन एवं प्रोजेस्ट्रान हार्मोन को स्त्रावित करता है।

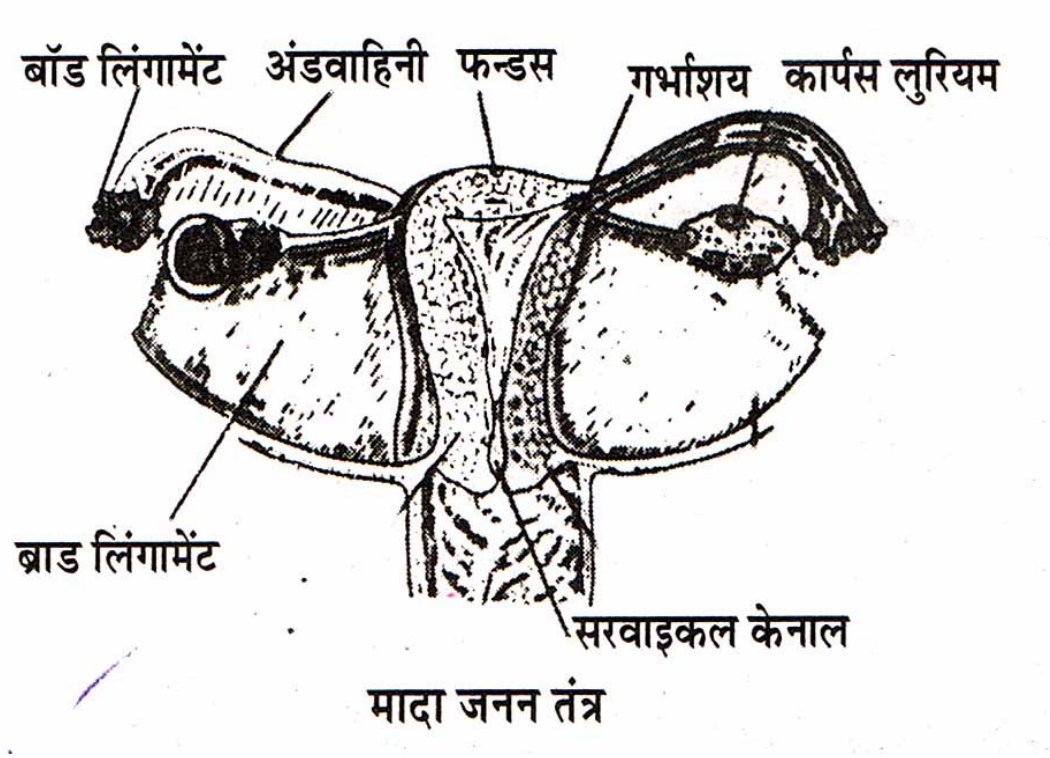

मादा जनन तंत्र

2. अण्डवाहिनी ;थ्ंससवचपंद जनइमद्ध – ये दो नलियां है जो दोनों अण्डाशयों से एक एक मिली होती है तथा दूसरे सिरे पर गर्भाशय से मिली होती है। अण्डवाहिनी की लम्बाई 100 से 120 मिमी होती है इसकी दीवारें भी तन्तुमय ऊतकों एवं अनैच्छिक पेशियों से बनी होती है।
3. गर्भाशय ;न्जमतनेद्ध – यह करीब 70 मिमी. लम्बा तथा 44 मिमी. चौडा होता है जो एक थैले के समान होता है यह मलाशय एवं मूत्राशय के बीच स्थित होता है इसका आकार उपर की तरफ चौडा एवं नीचे की तरफ पतला होता है गर्भाशय का नीचे का पतला भाग योनि से जुडा रहता है।
4. योनि टनसअं – यह एक लम्बी नली है जो 10–12 सेमी तक लम्बी होती है, यह गर्भ से प्रारंभ होकर योनी द्वार तक जाती है। इसकी दीवार भी उन्हीं तन्तुओं से बनी है जिससे गर्भाशय का निर्माण होता है। पुरूष का शुक्ररस इसी योनि भाग से होकर गर्भाशय में आता है।
5. भगश्निका ;ब्सपजवतपेद्ध – मूत्र जनन नलिका के उपर की ओर एक छोटी मांसल संरचना पाई जाती है इसको भगश्निका कहते हैं।
6. सहायक ग्रन्थियाँ –
    1. प्रोस्टेट ग्रंथि दो होती हैं इसका स्त्राव वीर्य या सीमेन बनाने में सहायता देता है।
    2. काउपर ग्रंथि ये एक जोडी होती है इस ग्रंथि से निकला स्त्राव मूत्र मार्ग में डाला जाता है।

पाठ्गत प्रश्न –

प्रश्न –1. मनुष्य में पाए जाने वाले जनन अंगों के नाम लिखिए।

प्रश्न –2. परिभाषित कीजिए

वृषण , अण्डाशय

इकाई सांरांश

- शरीर का बाहरी स्तर अध्यावरण कहलाता है तथा इसे बाहरी त्वचा तथा स्तर को इससे जुडी रचनाओं सहित अध्यवणीय तंत्र कहते हैं।
- कंकाल तंत्र का कार्य शरीर का आकार बनाए रखना शरीर को मजबूती प्रदान करना, कोमल अंगों की सुरक्षा करना है।
- पेशीय तंत्र का कार्य शरीर को गतिशील बनाना है।
- मनुष्य में विकसित पाचन तंत्र पाया जाता है जिसके लिए आहार नाल तथा पाचन ग्रंथियां पाई जाती है।
- श्वसन के दो चरण होते हैं बाह्य श्वसन और आंतरिक श्वसन।
- रक्त परिसंचरण तंत्र, रक्त, हृदय बाहिकाएं एवं कोशिकाओं से मिलकर बनता है।
- शरीर से अपशिष्ट पदार्थों को हटाने के प्रक्रम को उत्सर्जन कहते है।
- सभी तरह के ज्ञान संवेदनाओं को अनुभव कराने एवं सोचने विचारने की क्षमता देने का कार्य तंत्रिका तंत्र का होता है।
- अपने समान संतान उत्पन्न करने वाला अंग जनन तंत्र कहलाता है।
- मनुष्य में स्त्रावी तंत्र तीन प्रकार का होता है – 1. बर्हि स्त्रावी तंत्र 2. अन्तः स्त्रावी तंत्र 3. मिश्रित तंत्र

आत्म परीक्षण हेतु प्रश्न

प्रश्न 1 आमाशय में भोजन के पाचन को समझाइए ?

प्रश्न 2 हृदय की रचना का सचित्र वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 3 उत्सर्जन तंत्र का नामांकित चित्र बनाते हुए समझाइये ?

प्रश्न 4 निश्वसन व निःश्वसन को समझाइये ?

प्रश्न 5 मनुष्य हृदय की कार्य विधि का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 6 तंत्रिका तंत्र से क्या समझते हो, तंत्रिका तंत्र कितने भागों में विभाजित किया जाता है ?

प्रश्न 7 मनुष्य के नर तथा मादा जनन अंगों का वर्णन कीजिए ?

प्रश्न 8 अध्यावर्णी तंत्र को समझाइये ?

प्रश्न 9 अन्तः स्त्रावी तंत्र से आप क्या समझते हैं ? इनके कार्य लिखिये ।

प्रश्न 10 कंकाल तंत्र को समझाइये ?

पाठ्गत प्रश्नों के उत्तर

उपइकाई – 1. अध्यावरणी तंत्र –

उत्तर 1. मानव त्वचा दो स्तरो की होती है

(1) एपीडर्मिस या उपचर्म

(2) डर्मिस या चर्म

उत्तर – शरीर के चारो तरफ मोटा आवरण पाया जाता है जोकि अध्यावरण कहलाता हैं।

उपइकाई – 2. पेंशीय तंत्र –

उत्तर 1. रिक्त स्थान

1. मानव में तीन प्रकार की पेशियां पाई जाती है।

2. व्यस्क व्यक्ति में कुल 206 हड्यिां होती हैं।

3. शरीर को आकार प्रदान करने का कार्य कंकाल तंत्र करता है।

4. ह्रदय पेशियां मनुष्य मे पाई जाती है।

उपइकाई – 3. कंकाल तंत्र –

उत्तर–1 मनुष्य का कंकाल तंत्र दो भागो

अ. अक्षीय कंकाल ब. उपांगीय ककाल का बना होता है।

उत्तर–2. एच्छिक पेशी शरीर के हाथ एवं पैरो में पाई जाती है

उपइकाई – 4. पाचन तंत्र –

उत्तर 1. मनुष्य के पाचन तंत्र का नामांकित चित्र में देखे

उत्तर 2. मानव के अमाशय से निकलने वाले रस को जठर रस कहते है।

उत्तर 3. पानी का अवशोषण बड़ी आतों में होता है।

उत्तर 4. लार में टायलिन एन्जाइम पाया जाता हैं।

उत्तर 5. मुख में प्रारंभ होकर भोजन निम्नलिखित अंगो से गुजरता है।

1. मुख गुहा	2. फैरिग्स	3. ग्रासनली
4. आमाशय	5. छोटी आंत	6. बड़ी आंत

उपइकाई – 5. मनुष्य के परिसंचरण तंत्र –

उत्तर 1. ह्रदय शरीर के वक्षीय भाग में पेशी काडियल गुहिका में स्थित होता हैं

उत्तर 2. मनुष्य का ह्रदय चार कक्षों का बना होता हैं ये दायें एवं बाएं मे विभाजित रहता है।

उत्तर 3. स्तनियो में महाधमनी कहां से निकलती हैं। – दायां निलय

उत्तर–4. **धमनी** – वह रक्त वाहिनियों जो शुद्ध रक्त को हृदय से शरीर के विभिन्न भागों में ले जाती है धमनियां कहलाती हैं।

शिरा – वह वाहिनियां जो कि अशुद्ध रक्त को शरीर के विभिन्न भागों से हृदय में वापिस लाती है।

उपइकाई – 6. श्वसन तंत्र –

उत्तर बहुविकत्पीय प्रश्न –

1. निश्वसन के समय डायफ्राम की पेशियां

क. शिथिल हो जाती हैं।

2 रिक्त स्थान –

1. फेंफड़े वक्षीय गुहा में स्थित होते है।
2. फेफडों की संख्या दो होती हैं।

उत्तर 3. आक्सीजन ग्रहण करना $ब_2$ को छोड़ना श्वसन कहलाता है।

उत्तर 4. मनुष्य में श्वसन अंगों के नाम निम्नलिखित है –

1. प्रमुख अंग फेफड़े
2. सहायक अंग

5. नासिका छिद्र नासिका , नासिका पथ
6. ग्रसनी 3. लेरिंक्स 4. ब्रोंकाई

उपइकाई – 7. उत्सर्जन तंत्र –

उत्तर–1 नेफ्रान दो भागो का बना होता है 1.बोमन सम्पुट, 2. स्त्रावी नलिका

उत्तर 2 (अ) अतिसूक्ष्म नि.स्पंदन 2. पुनः अवशोषण 3. स्त्रावण

उत्तर–3 **बहुविकल्पीय प्रश्न**

1. मनुष्य के वृक्क में बोयम सम्पुट कहां स्थित होते है।

(क) (मेडयूला में)

2. स्तनियों का मुख्य उत्सर्जी पदार्थ होता है

(घ) यूरिक अम्ल

3. हेनले के लूप का कार्य संबंधित है।

(क) उत्सर्जन तंत्र से

उपइकाई – 8. तंत्रिका तंत्र

उत्तर 1. मनुष्य में तंत्रिका तंत्र विशेष प्रकार की कोशिकाओ से बना होता है जिन्हें न्यूरान्स कहते है।

उत्तर 2. ऐक्सान – ऐक्सान संख्या में एक लम्बा एवं समान मोटाई वाला प्रवर्ध होता है।

डेन्ड्रॉइट – ये संख्या में अधिक साइटान से निकलते है इनके आधार भाग मोटे होते है और क्रमशः पतले होते जाते है

उत्तर 3. मनुष्य में तीन प्रकार के तंत्रिका तंत्र पाये जाते है।

1. केन्द्रीय तंत्रिका,
2. परिधीय तंत्रिका
3. स्वतः तंत्रिका

उत्तर 4. मस्तिष्क के प्रमुख कार्य निम्न है

1. चेतना , बुद्धि , स्मृति, विचार एवं इच्छा शक्ति का केन्द्र है
2. यह तंत्रिका तंत्र के शेष भागो पर नियन्त्रण रखता है।
3. एच्छिक गतियों पर नियन्त्रण रखता है।
4. ह्रदय स्पंदन, श्वसन दर एवं आहार नाल की क्रमाकुंचन गति पर नियन्त्रण

उत्तर 5. स्पाइनल कार्ड के कार्य निम्नलिखित है –

1. मस्तिष्क से आने वाली प्रेरणाओं या उद्दीपनो का संवहन करती है।
2. मेरूरज्जू प्रतिवर्ती क्रियाओं का समन्वय एवं नियन्त्रण करती है।

उपइकाई – 9. अंतस्त्रावी तंत्र

उत्तर 1. रिक्त स्थान

(1) मिलेटोनिन हार्मोन **पीनियल काय** द्वारा स्त्रावित होता है।

(2) एड्रोजनन हार्मोन **वृषण** द्वारा होता है।

उत्तर–2.– थायराइड के कार्य निम्नलिखित हैं

(1) थाइराक्सिन उपापचयी क्रियाओं पर नियन्त्रण करता है।

(2) शरीर की सामान्य वुद्धि को नियन्त्रण करता है।

उत्तर–3.–पीयूष ग्रंथि शरीर की सभी ग्रंथियों को नियन्त्रण करती है इस कारण इसे मास्टर ग्रांथि कहते है।

उत्तर–4 पिनीयल काय से (1) मिलैटोनिन, सिरोटोनिन स्त्रावित होते हैं।

उपइकाई – 10. जनन तंत्र –

उत्तर 1. मनुष्य मे नर एवं मादा जनन अंग पाये जाते है।

उत्तर 2. (1) वृषण – मनुष्य में वृषण शरीर से बाहर थैली में दोनो पैरो के बीच स्थित होता है इस थैली को वृषण कोष कहते है।

(2) **अंडाशय–** एक जोड़ी बादाम के आकार के अंडाशय उदर गुहा कें निचले भाग मे गर्भाशय के दोंनो ओर स्थित होते हैं

सूचकांक–डी.एड./1/2/9

पत्राचार पाठ्यक्रम

माध्यमिक शिक्षा मण्डल म.प्र., भोपाल

(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)

डिप्लोमा इन एज्युकेशन (प्रथम वर्ष)

प्रश्न पत्र – द्वितीय

विषय : शारीरिक शिक्षा **ईकाई : 9**

विषयांश	**उप इकाई–1**	9.1	शारीरिक शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य आवश्यकता एवं महत्व
		9.2	शारीरिक कार्यकलापों एवं खेलों का आयु, लिंग व रूचि के अनुसार चयन।
	उप इकाई–2	9.3	शारीरिक कार्यकलापों के प्रकार।
		9.4	विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शारीरिक क्रियाएँ।
		9.5	म.प्र. में शारीरिक शिक्षा के प्रमुख केन्द्रों की जानकारी।

प्रस्तावना

प्रिय छात्र/अध्यापक,

पिछली इकाई में आपने मानव शरीर के विभिन्न अंग/तंत्र एवं कार्यिकी का अध्ययन किया। इस इकाई में आप शारीरिक शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, आवश्यकता, शारीरिक शिक्षा के प्रमुख केन्द्रों की जानकारी हासिल करेंगे।

9.1 शारीरिक शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य आवश्यकता एवं महत्व–

प्रायः शारीरिक शिक्षा का अर्थ मानव शरीर के अंगों के विकास से लिया जाता है जिसमें शारीरिक शिक्षा को शरीर निर्माण तक सीमित रखा जाता है। परन्तु शारीरिक शिक्षा उत्तम नागरिकता या स्वास्थ्य की उन्नति का साधन है। यहाँ स्वास्थ्य का अर्थ शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य से है। शारीरिक शिक्षा, शिक्षा की संपूर्ण प्रक्रिया का पहलू है जो पेशीय क्रियाओं एवं उनसे संबंधित प्रतिक्रियाओं तथा व्यक्ति में इन प्रक्रियाओं के फलस्वरूप होने वाले परिवर्तनों से संबंधित हैं।

शारीरिक शिक्षा उत्तम नागरिकता या उत्तम स्वास्थ्य की उन्नति का एक महत्वपूर्ण साधन है। अतः हम कह सकते हैं कि शारीरिक शिक्षा व्यक्ति को समग्र रूप में विकसित करने वाली प्रक्रिया या योजना का अंग है।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य–

शिक्षा व्यक्ति का चतुर्मुखी विकास करती है। शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य शरीर और मन को स्वस्थ्य रखना है। शारीरिक शिक्षा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास कर उसमें अनेक दक्षताऐं और योग्यताओं का विकास करती है तथा इसके माध्यम से व्यक्ति के स्वस्थ व्यक्तित्व का विकास सम्भव होता है, साथ ही यह उसमें अनेक महत्वपूर्ण मानवीय गुणों का विकास करने में सहायक होती है। व्यक्ति, समाज, राष्ट्र तीनों का ही जीवन एवं विकास स्वस्थ, साहसी, परिश्रमी, निष्ठावान एवं आत्म–विश्वासी नागरिक जीवन से संभव है। शारीरिक शिक्षा इन सभी उद्देश्यों की पूर्ति करती है तथा व्यक्ति में सही वैज्ञानिक एवं व्यापक दृष्टिकोण का निर्माण करती है और अनुशासन की भावना जागृत कर आत्मनिर्भर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करती है।

शारीरिक शिक्षा सामान्य शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है जिसमें व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं मानवीय गुणों का विकास सामान्य एवं विशेष शैक्षिक प्रशिक्षण से होता है। शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत खेलकूद, व्यायाम, मनोरंजन, कर्त्तव्यपालन आदि सभी सम्मिलित है। भारतीय शारीरिक शिक्षा एवं मनोरंजन केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड के अनुसार, शारीरिक शिक्षा, एक प्रकार की शिक्षा ही है जो बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व तथा उसकी शारीरिक प्रक्रियाओं द्वारा शरीर के प्रत्येक अंग एवं आत्मा को पूर्णरूपेण विकास के लिए प्रदान की जाती है। यह व्यक्ति को पूर्ण मानव बनाने के उद्देश्य की पूर्ति करती है।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य राष्ट्र की वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल होना चाहिए। इसका प्रमुख उद्देश्य छात्रों का शारीरिक और संवेगात्मक विकास करना तथा उनके ऐसे व्यक्तिगत गुणों का विकास करना है, जो कि दूसरों के साथ आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने में सहायक हो। शारीरिक शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हो सकते हैं–

1. सुदृढ़ एवं सुडौल शरीर का विकास करना।
2. नेतृत्व अनुकरणता, सहकारिता तथा सामाजिकता की विशेषताओं का विकास करना।
3. चिरकाल तक स्वास्थ्य को बनाए रखना तथा कभी भी होने वाले रोगों से शरीर को मुक्त रखना।
4. उत्साह, सहिष्णुता, आत्म–नियंत्रण, ईमानदारी, न्यास आदि गुणों का विकास करना।
5. सदैव उत्साहित एवं स्फूर्तिदायक जीवन व्यतीत करने की शक्ति को निर्मित करना।
6. व्यक्तित्व को एकत्व के रूप में निर्मित करना।
7. छोटे–छोटे रोगों का प्रतिरोध।

प्रत्येक छात्र को शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक दृष्टियों से स्वस्थ बनाने का उद्देश्य सभी स्वीकार करते है, परन्तु इसके अतिरिक्त छात्रों में ऐसी वैयक्तिक तथा सामाजिक विशेषताओं का निर्माण भी होना चाहिए जो दूसरों के साथ सुख, खुशी, सहयोग से जीने और अच्छे नागरिक बनने में सहायक सिद्ध हो। इस प्रकार शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य अग्रलिखित भी हो सकता है–

1. शारीरिक सुयोग्यता का विकास।
2. नाड़ी–पेशीय कौशल का विकास।
3. व्यक्तित्व एवं चरित्र का विकास।

शारीरिक शिक्षा का महत्व–

आज सभी शिक्षाशास्त्री इस बात को स्वीकार करते हैं कि स्वस्थ मस्तिष्क, स्वस्थ शरीर में ही निवास करता है और वह व्यक्ति जो स्वस्थ, बुद्धि प्रखर है, वह संवेगात्मक दृष्टि से संतुलित और समाज में भली–भांति सुव्यवस्थित होकर अपने आपको समायोजित कर लेता है। हमारे विद्यालय औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करते हैं। यहीं से बालकों में शारीरिक शिक्षा की विभिन्न क्रियाऐं सुव्यवस्थित रूप से चलती हैं। इसलिए विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा से संबंधित क्रियाऐं, खेलकूद और व्यायाम आदि अनिवार्य हैं। खेलकूद और व्यायाम आदि व्यक्ति को मात्र स्वस्थ रखने के साधन ही नहीं हैं वरन् उनके अनेक तात्कालिक एवं दूरगामी लाभ भी हैं। इन्हीं तथ्यों के कारण शारीरिक शिक्षा का निम्नांकित महत्व है–

1. **प्राकृतिक विकास में सहयोग–**

   शरीर के उचित विकास से ही व्यक्ति में निहित संभावनाएँ उजागर होती है। शारीरिक शिक्षा की मूलभूत उपयोगिता मानी जानी चाहिए।

2. **काया सौन्दर्य–**

   जीवन में सफलता प्राप्त करने का प्रथम सूत्र है काया सौन्दर्य। सुन्दर, सुडौल और आकर्षक देह सबको आकर्षित कर लेती है। प्राचीनकाल में काया को सुन्दर सुडौल बनाने के लिए विविध प्रयास किए जाते थे। मांस पेशियों के उभार पर काया सौन्दर्य निर्भर करता है। व्यायाम के माध्यम से देह को ऐसा गठ लेना, जैसे कुशल शिल्पी के द्वारा किसी मूर्ति को निर्मित किया जाता है।

3. **पुष्ठ एवं स्वस्थ काया–**

   शारीरिक शिक्षा के द्वारा काया को पुष्ट और स्वस्थ बनाया जा सकता है। पुष्ट का अर्थ है ऐसा शरीर जो शारीरिक श्रम करने से कष्ट का अनुभव न कर सुख का अनुभव करता है। जीवन–यापन की सारी आवश्यकताऐं श्रम पर आश्रित है। पुष्ट काया स्वस्थ भी होती है तथा रोगों के विरोध की उसमें क्षमता रहती है।

4. **आत्मविश्वास की प्रगाढ़ता–**

शारीरिक शिक्षा के द्वारा शरीर को पुष्ठ और स्वस्थ रखने में जो लाभ होते हैं उनकी विशेषताऐं बड़ी फलबंद होती है। कहावत है कि स्वस्थ काया में स्वस्थ मन निवास करता है और पुष्ट शरीर, मन और आत्मा को पुष्ट बनाकर मनुष्य में आत्मविश्वास को दृढ़ बनाता है।

5. **अनुशासन की वृद्धि–**

शारीरिक शिक्षा से आत्मानुशासन के साथ–साथ बाह्य अनुशासन की वृद्धि होती है। जीवन के लिए अनुशासन वैसे ही महत्वपूर्ण है जैसे भोजन शरीर के लिए महत्वपूर्ण है।

6. **चारित्रिक गरिमा में वृद्धि–**

शारीरिक शिक्षा शक्ति और सौन्दर्य की वृद्धि के साथ–साथ प्रत्यक्ष रूप में मनुष्य में शील एवं चरित्र का भी निर्माण करती है। अनुशासित जीवन से चरित्र का निर्माण होता है। सुन्दर चरित्र से समाज और राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता का आदर्श रूप प्रकट होता है।

7. **नैतिक गुणों का विकास–**

खेलकूद से खिलाड़ियों में नैतिक गुणों का विकास होता है। एक अच्छा खिलाड़ी अनुशासनप्रिय, ईमानदार, सहयोगी एवं मानवीय गुणों से युक्त होता है। वह विवेकशील होता है तथा उसमें गलत और सही निर्णय लेने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है, इसलिए वह कभी भी नियम–विरूद्ध और गलत कार्य नहीं करता।

8. **नागरिक भावना के विकास में सहायक–**

एक अच्छा खिलाड़ी एक आदर्श नागरिक होता है। खेलकूद की विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से वह नियमों, अपने अधिकार और कर्त्तव्यों से भली–भांति परिचित हो जाता है, तथा उनके प्रति सदैव जागरूक बना रहता है। उसमें उन तमाम संस्कारों का निर्माण हो जाता है जो नागरिक जीवन के लिए आवश्यक होते हैं।

9. **समाज बोध जगाने में सहायक–**

शारीरिक शिक्षा के द्वारा मनुष्य में समाज बोध को जागृत करने में बड़ी सहायता मिलती है। शारीरिक शिक्षा टीम स्प्रिट को बड़ा महत्व देती है। एक टीम परिवार का रूप होती है जिसे समाज की एक छोटी इकाई माना जा सकता है। शारीरिक शिक्षा की व्यवस्था जिस समाज में उचित ढंग से प्रस्तुत है, वहां समाज को और विश्व बोध के उपदेश की आवश्यकता नहीं रह जाती। शारीरिक शिक्षा अनजाने में एक आदर्श नागरिक को जन्म दे देती है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शारीरिक शिक्षा मनुष्य को जीवन जीने की कला में पारंगत करती है। वह उनके शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक विकास में सहयोग देकर उसके व्यक्तित्व में पूर्ण तत्व प्रदान करती है। शारीरिक शिक्षा से मनुष्य शील और सौन्दर्य की त्रिवेणी बन जाता है।

शाला के पाठ्यक्रम में शारीरिक शिक्षा का स्थान–

शालेय जीवन में खेलकूद का एक विशिष्ट स्थान है। अस्वस्थता और आलस्य के मध्य विद्या अध्ययन असंभव है। अनवरत अध्ययन से बालकों का मस्तिष्क बोझिल हो उठता है। उनकी मानसिकता रूग्ण हो जाती है और वे अध्ययन में अरूचि रखने लगते हैं। पाठशाला जाते समय और आते समय उनका मन खिन्न रहता है। विद्यालयीन खेलकूद में उनका मस्तिष्क ताजा हो जाता है। शारीरिक स्फूर्ति भी बनी रहती है। अध्ययन और मनोरंजन का सहयोग पाकर छात्र शालेय जीवन को बहुत चाहने लगता है। इससे शाला की हर क्रियाओं को वह सहज ही ह्रदयंगम कर लेता है और उसके अस्तित्व की सर्वांगीण विकास की संभावनाएं बढ़ जाती है। खेलकूद छात्रों के लिए विटामिन है। खेलविहीन शिक्षा, शिक्षा के अर्थ से ही वंचित हो जाती है।

शाला पाठ्यक्रम में खेलकूद का समावेश अनिवार्य रूप से होना चाहिए। यही कारण है कि शिक्षाविदों ने सदा ही पाठ्यक्रम के साथ खेलकूद को महत्व प्रदान किया है। आजकल शासन विद्यालयों में खेलकूद की व्यवस्था का विशेष प्रबंध कर रही है। अध्ययन में रूचि उत्पन्न करने, स्वास्थ्य को ठीक रखने तथा अनुशासन की शिक्षा प्राप्त करने आदि में खेलकूद सहायक होता है। इसके अतिरिक्त देश के भावी कुशल खिलाड़ियों का मूल स्त्रोत इन्ही शालाओं में होता है। अच्छे खिलाड़ी प्राप्त कर देश का नाम उज्जवल करने के लिए यह आवश्यक है कि शालेय जीवन में खेल के प्रति रूचि उत्पन्न की जाए।

शारीरिक कार्यकलाप का अर्थ–

शारीरिक क्रियाकलापों का तात्पर्य है–व्यक्ति, समुदाय और जाति की स्वास्थ्य संबंधी आदतों तथा दृष्टिकोणों को अच्छा बनाने में सहायक। इसका विस्तृत अर्थ हम इस प्रकार दे सकते हैं कि व्यक्ति के स्वास्थ्य से संबंधित सभी बातों की शिक्षा देना। विद्यालयों में वहाँ के सदस्यों के संगठित प्रयत्नों द्वारा स्वास्थ्य शिक्षा से संबंधित विद्यालयी शारीरिक क्रियाकलाप संचालित किए जाते है। अतः शारीरिक क्रियाकलाप का साधारणः अर्थ विद्यालय में सभी छात्रों को विद्यालयी शारीरिक क्रियाकलाप का अध्ययन कराना है जिससे उनमें अच्छी आदतों का निर्माण हो सके और स्वास्थ्य उत्तम बन सके।

9.2 आयु, लिंग व रूचि के अनुसार शारीरिक कार्यकलापों का चुनाव–

आयु तथा लिंग के अनुसार ही बालकों को शारीरिक क्रियाकलाप कराए जाने चाहिए और उनकी शारीरिक क्षमता को भी ध्यान में रखना चाहिए। यदि शारीरिक क्रियाकलाप इसकी विपरीत दिशा में किया जायेगा तो इसके परिणाम में लाभ की जगह हानि की सम्भावना अधिक रहेगी।

कुछ शारीरिक क्रियाएँ बड़े बालकों को उपयोगी सिद्ध होती हैं तो वही क्रियाएँ छोटे बालकों के लिए हानिकारक भी हो सकती है। छोटे बालकों को सामान्यतः ऐसे खेलों एवं क्रियाकलापों में भाग लेना चाहिए, जो उनकी शारीरिक क्षमता के अनुकूल हों, जिसमें शक्ति और ऊर्जा का कम ह्रास हो तथा जो कुशलता के विकास में सहायक हों। अतः विभिन्न आयु के बालकों के लिए शारीरिक क्रियाकलाप भी भिन्न–भिन्न होने चाहिए।

आयु वृद्धि के साथ–साथ बालकों के खेलों में शारीरिक क्रियाओं की कमी आ जाती है। छोटे बच्चों के खेलों में शारीरिक क्रियाऐं अधिक रहती है।

बालकों के खेल का एक निश्चित प्रतिरूप होता है। बालक का संबंध किसी जाति, धर्म या समुदाय से न होकर उसके खेल से होता है। प्रारम्भ में बालकों के खेलों में ज्ञानेन्द्रियों की गतिविधियाँ, हाथ–पैर मारना, इधर–उधर लुढ़कना, हिलना–डुलना आदि हैं।

बालक के खेलों पर ऋतुओं का भी प्रभाव पड़ता है। वह ऋतुओं के अनुकूल खेल पसन्द करता है। वर्षा ऋतु में इनडोर खेल, शरद ऋतु में आउटडोर खेल खेलना पसन्द करता है। गर्मी के दिनों में वह कम से कम आउटडोर खेल खेलना पसन्द करता है। ऋतु और मौसम का बालकों के खेलों पर बहुत प्रभाव पड़ता है। अतः उन्हें उनके अनुरूप ही खेलों का चयन करना पड़ता है। यही कारण है कि शरद ऋतु में बालक धूप में उछल कूद, दौड़–भाग आदि परिश्रम के खेल खेलना पसन्द करते हैं। गर्मी के मौसम में बालकों को जलविहार, नौका विहार तथा तैराकी के खेल और क्रियाऐं अच्छी लगती हैं। पर्वतीय क्षेत्र के बालक शरद ऋतु में बर्फ से खेला करते हैं। आमतौर पर गर्मियों में कम परिश्रम के खेल एवं शरद ऋतु में अधिक परिश्रम के खेल खेले जाते हैं।

खेल में लिंग के अलावा बौद्धिक क्षमता के कारण भी अन्तर आता है। एक वर्ष की आयु के बाद बालक के खेल पर उसकी बौद्धिक क्षमता का भी प्रभाव पड़ता है। तीव्र बुद्धि वाले बालकों में क्रियाशीलता अधिक होती है। वे मंद बुद्धि वाले बालकों की अपेक्षा अधिक खेलते हैं और खेल को भी शीघ्र सीख लेते हैं। तीव्र बुद्धि वाले बालक का खेल पहले इन्द्रियजनित होता है, फिर वह अनुकरणात्मक होता है और अंत में उनमें कल्पना का अंश भी आ जाता है। मंद बुद्धि वाले बालकों में सामाजिकता कम होती है। तीव्र बुद्धि वाले बालक बच्छे खिलाड़ी भी हो सकते हैं।

बालक–बालिकाओं के खेल पर अवकाश की मात्रा और सामाजिक–आर्थिक स्तर का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। वंशानुक्रम का भी बालक–बालिकाओं के खेल पर प्रभाव पड़ता है।

कक्षा 1 से 5 तक के लिए

इस स्तर के बालकों की आयु कम होती है। उनमें शारीरिक विकास पूर्ण रूप से नहीं हो पाता और न ही उनमें शारीरिक क्षमता अधिक होती है। इस स्तर के बालकों को हल्के–फुल्के व्यायाम ही कराना ठीक रहता है। अधिक थकान वाले और लम्बे व्यायाम इस आयु के बालकों के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं। योगासन कराना इस स्तर पर अनुचित है।

इसमें सामूहिक व्यायाम लाभदायक सिद्ध होंगे, लेकिन यदि व्यायाम की अपेक्षा सामूहिक खेलकूद का आयोजन किया जाये तो अधिक उत्तम रहेगा क्योंकि छोटे बालक खेलकूदों में अधिक रूचि लेते हैं।

कक्षा 6 से 8 तक के लिए

यह अवस्था बाल्यावस्था है। बाल्यावस्था की प्रमुख विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही अध्यापक को उनके शारीरिक क्रियाकलापों का आयोजन करना चाहिए। कहा जाता है कि ''बाल्यकाल

एक अनोखा काल है।'' इस अवस्था में बालक में कुछ ऐसे परिवर्तन आते हैं जिनको समझना अध्यापक व अभिभावकों के लिए कठिन होता है। इस अवस्था में बालक के जीवन में स्थायित्व आता है। वह रचनात्मक कार्यों में रूचि लेने लगता है। हस्तकार्यों में रूचि पैदा होती है, जैसे–लकड़ी और मिट्टी की वस्तुएँ बनाना, उद्यान में कार्य करना और लड़कियाँ सीना पिरोना, कढ़ाई–बुनाई में विशेष रूचि लेने लगती है।

बाल्यकाल की विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही अध्यापक को उनके शारीरिक क्रियाकलापों का आयोजन करना चाहिए। निम्नलिखित बातों पर विशेष रूप से ध्यान देकर हम उनके क्रियाकलापों का आयोजन कर सकते हैं–

1. शारीरिक क्रियाकलाप, चाहें व्यायाम हो या खेलकूद, अधिक थकाने वाले नहीं होने चाहिए।
2. उन शारीरिक क्रियाकलापों का चयन करना चाहिए जिन्हें छात्र भली–भांति समझ सकें।
3. नृत्य बालिकाओं के लिए शारीरिक व्यायाम का उत्तम साधन हैं जिसमें उन्हें प्रशिक्षित करना चाहिए।
4. इस अवस्था में बालक व बालिकाओं के व्यायामों में भिन्नता होनी चाहिए।
5. इस अवस्था में सामूहिक प्रवृत्ति होने के कारण सामूहिक खेल, सामूहिक क्रियाकलाप एवं सामूहिक क्रियाओं का आयोजन करना बालक के लिए रूचिकर होता है।
6. कक्षा 6 के बालकों को योगासनों की जानकारी देकर अगली कक्षा के लिए तैयार करना चाहिए।
7. कक्षा 7 के बालकों को योगासन कराया जा सकता है और कक्षा 8 में पूर्व अभ्यास कराना चाहिए।
8. शारीरिक क्रियाकलापों को करने में 'सरल से कठिन की ओर' सूत्र का प्रयोग करना चाहिए।

पाठगत प्रश्न–

प्रश्न. 1 शारीरिक शिक्षा का क्या अर्थ है?

प्रश्न. 2 शारीरिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य लिखिए।

प्रश्न. 3 शारीरिक कार्यकलाप से क्या तात्पर्य है?

उपइकाई–2

9.2 शारीरिक कार्यकलापों के प्रकार–

शारीरिक शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जिन शारीरिक कार्यकलापों का प्रचलन है उनका उल्लेख निम्नानुसार किया जा रहा है–

1. **नैसर्गिक क्रियाऐं–** जैसे–चलना, घूमना, दौड़ना, उछलना, कूदना, पकड़ना आदि।
2. **व्यक्तिगत जिमनास्टिक–**जैसे–दण्ड बैठक, आसन, भारत्तोलन आदि।
3. **जलीय क्रियाऐं–**जैसे–तैरना, डुबकी लगाना, जल पोलो आदि।
4. **भिड़ने वाली क्रियाऐं–**जैसे–कुश्ती, मुक्केबाजी, जूडो, फैसिंग आदि।
5. **जिमनास्टिक–**जैसे– पैरेलल वार्स पर की जाने वाली क्रियाऐं।
6. **संगठित खेलों में भाग लेना–**जैसे फुटबॉल, हॉकी, क्रिकेट, बैडमिंटन आदि।
7. **एथलेटिक्स–**जैसे दौड़े, बाधा दौड़े, कूदें, नेजा या हैमर फेंकना।
8. **लयपूर्ण क्रियाऐं–**जैसे–नृत्य, ड्रिल, डम्बल्ज आदि।
9. **खुले वातावरणीय खेल–**कैम्पिंग, हाइकिंग, स्काइंग, फिशिंग।
10. **सौन्दर्यात्मक क्रियाऐं–**फैंसी ड्रेस, नाटक में भाग लेना।

व्यायाम की आवश्यकता तथा महत्व–

शारीरिक वृद्धि हेतु व्यायाम तथा आसनों का विशेष महत्व है। इनके अभाव में बालक का सन्तुलित तथा उचित विकास संभव नहीं है। शरीर को स्वस्थ तथा निरोग रखने के लिए प्रतिदिन किसी न किसी प्रकार का व्यायाम करना सुखद जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। व्यायाम भी अनेक प्रकार के हैं, जैसे–कुश्ती लड़ना, दौड़ना, दण्ड–बैठक, तैरना तथा खेलना आदि। अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति हेतु किसी भी व्यायाम को आयु, लिंग की सुविधानुसार किया जा सकता है।

आज के युग में स्वास्थ्य का महत्व बहुत अधिक है। मानव स्वस्थ रहकर ही अपने जीवन को सफल बनाता है तथा समाज तथा देश की सच्ची सेवा कर सकता है। जीवन में सफलता प्राप्त करने तथा जीवन की कठिन परिस्थितियों से जूझने के लिए उत्तम स्वास्थ्य का होना आवश्यक है।

व्यायाम का महत्व निम्नलिखित प्रकार से है–व्यायाम से पेशियाँ सक्रिय हो जाती हैं। पेशियों के सक्रिय होने के कारण धमनी की ओर से रक्त का बहाव तीव्र हो जाता है, जिससे रक्त वाहिनी नलिकाएँ फैल जाती है, हृदय तेजी से रक्त फैलाने लगता है तथा फुक्फुस, त्वचा, यकृत आदि भी उद्दीप्त होकर अधिक कार्य करने लगते हैं। भूख तेज हो जाती है और ग्रन्थियों से पाचक रसों का स्राव अधिक होने लगता है, जिससे अच्छे आहार की उपयोगिता बढ़ जाती है तथा शरीर हृष्ट–पुष्ट हो जाता है।

व्यायाम शारीरिक अक्षमता और रोगों का निवारण करने का प्राकृतिक उपाय माना जाता है। यदि नियमित रूप से व्यायाम किया जाए तो वह शारीरिक दोषों को दूर करने में पूर्ण सफल रहता है। मनुष्य के स्वास्थ्य सुधार की जो भी योजना बनायी जाती है, उसमें व्यायाम को प्रमुख स्थान दिया जाता है। व्यायाम से शरीर स्वस्थ हो जाने पर मनुष्य की कार्य करने की शक्ति बढ़ जाती है, मन प्रसन्न रहता है, साहस बढ़ जाता है तथा आशावादी दृष्टिकोण बन जाता है।

शरीर के विभिन्न अंगों पर व्यायाम का प्रभाव–

व्यायाम का शरीर के विभिन्न अंगों पर प्रभाव पड़ता है, क्योंकि प्रत्येक की क्रिया भी अलग–अलग होती है, इसलिए इसके निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं–

1. **रक्त संचार पर प्रभाव–**रक्त संचार अधिक होने से हृदय की गति बढ़ती है। वह भी अपनी शक्ति तथा स्पन्दन को बढ़ाना शुरू कर देता है, किन्तु कुछ समय बाद वह मन्द पड़ जाती है।
2. **त्वचा पर प्रभाव–**व्यायाम त्वचा को भी बढ़ावा देता है। इसका रंग लाल हो जाता है क्योंकि शरीर में रक्त संचार की मात्रा अधिक हो जाती है और मनुष्य के शरीर से रक्त स्पष्ट झलकता है। नियमित व्यायाम से व्यक्ति को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं–
   - व्यायाम से शरीर में स्फूर्ति बढ़ती है।
   - शरीर की कार्यक्षमता बढ़ती है।
   - शरीर स्वस्थ तथा बलिष्ठ बनता है।
   - रक्त का शुद्धीकरण होता रहता है।

खेलों की आवश्यकता तथा उद्देश्य–

प्रारंभ में खेलकूद को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था परन्तु धीरे–धीरे शिक्षाशास्त्रियों ने यह अनुभव किया कि बिना शारीरिक विकास के बालकों का मानसिक विकास सम्भव नहीं है, अतः विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा में खेलकूद तथा शारीरिक व्यायाम की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। अतः अब प्रायः समस्त विद्यालयों में शारीरिक व्यायाम तथा खेलकूद आदि को किसी न किसी रूप में महत्व दिया जाता है। **ड्यूक्स ने लिखा है कि** 'हमारे राष्ट्र की उन्नति का प्रमुख कारण हमारी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति है, जिसे हमने बाल अवस्था में खेलों द्वारा प्राप्त किया है।'

खेलकूद के उद्देश्य के विषय में विभिन्न विद्वानों के मत निम्नलिखित प्रकार हैं–

1. **शिलर तथा स्पेन्सर के अनुसार–**''खेलकूद का उद्देश्य बालक का शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास करना है।''
2. **स्टेनले हाल के अनुसार–**''बालक की बुरी भावनाओं और नैसर्गिक प्रवृत्तियों का परिष्कार करना खेलकूद का उद्देश्य है।''
3. **फ्रॉबेल के अनुसार–**''बालक के खेलने की प्रवृत्ति को संतुष्ट करना खेलकूद का उद्देश्य है।''
4. **ऑगबर्न के अनुसार–**''बालक को दूसरे बालकों से सामाजिक संबंध स्थापित करने में सहायता देना खेल का उद्देश्य है।''
5. **कार्लग्रूस के अनुसार–**''बालक को अपनी शक्ति और ध्यान को कार्य पर केन्द्रित करने का प्रशिक्षण देना खेल का उद्देश्य है।''

शारीरिक शिक्षा में खेलों का महत्व–

खेल के महत्व पर प्रकाश डालते हुए एक विद्वान लिखते हैं, खेल प्राणी के जीवन की कदाचित सबसे सुखद अनुभूति है। शारीरिक अंगों में स्मृति और चंचलता, हृदय में आनन्द और प्रसन्नता तथा मन में उत्साह और स्वतन्त्रता के भाव भरकर यह हमारी जीवन शक्ति को बढ़ा देता है। इसलिए तो पशु–पक्षी और मानव सभी खेल के आनन्दमयी क्रियाकलापों में लगे दिखायी पड़ते हैं।'' यथार्थ में खेलकूद द्वारा ही बालकों के सर्वांगीण व्यक्तित्व का विकास होता है। इनका केवल शारीरिक महत्व ही नहीं वरन् शैक्षिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक ओर बौद्धिक महत्व भी है। खेलकूद के निम्नलिखित लाभ है–

1. **शारीरिक विकास में सहायक–**खेलकूद बालकों के शरीर को हृष्ट–पुष्ट बनाते है। इनमें भाग लेकर उनकी माँसपेशियाँ दृढ़ होती हैं तथा सम्पूर्ण शरीर में रक्त का परिभ्रमण होता है, जिससे उसमें ताजगी आती है।
2. **मानसिक विकास में सहायक–**यह कहना पूर्णतया सत्य है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है। इस प्रकार मस्तिष्क की स्वस्थता के लिए खेलकूद आवश्यक है। यदि बालकों को खेलकूद के पर्याप्त अवसर प्रदान किए जाते हैं तो उनका शरीर स्वस्थ रहेगा और वे पढ़ने–लिखने में अधिक श्रम भी कर सकेंगे।
3. **मनोवैज्ञानिक विकास में सहा**यक–खेलकूद का मनोवैज्ञानिक महत्व भी है। किशोरावस्था में बालक में अतिरिक्त शक्ति होती है, जो खेलकूद द्वारा उचित स्रोतों में प्रवाहित होकर शुभ मार्ग ग्रहण करती है। इन क्रीड़ाओं द्वारा उचित स्रोत उपलब्ध न होने पर छात्रों में अनैतिकता, असामाजिक तथा यौन संबंधी विकार जाग्रत होते हैं। इस प्रकार खेलकूद द्वारा बालक अपने स्वास्थ्य की वृद्धि के साथ–साथ इस अतिरिक्त शक्ति का सदुपयोग करते हैं। खेलों के माध्यम से बालकों को कामवासना, सामूहिकता, युयुत्सा तथा विधायिकता जैसी मूल प्रवृत्तियों का भी शोधन हो जाता है।
4. **नैतिक विकास में सहायक–**खेलकूद छात्रों के चारित्रिक विकास में भी योग प्रदान करते हैं। माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार, ''सामूहिक खेलों का इस कारण विशेष महत्व है कि इनके द्वारा शारीरिक विकास तथा मनोरंजन प्रदान करने के साथ–साथ छात्रों के चरित्र का निर्माण भी होता है।''
5. **सामाजिकता के विकास में सहायक–** खेलकूद बालकों में सामाजिकता की भावना विकसित करने के अनुपम साधन हैं। खेलकूद के बहाने बालक परस्पर मिलते–जुलते हैं। इस प्रकार उनमें सहयोग, सहकारिता तथा परस्पर निर्भरता की भावना का विकास होता है।
6. **नागरिकता के विकास में सहायक–**खेलकूद बालकों में नागरिकता का प्रशिक्षण प्रदान करते है। खेलकूद में वे अधिकारों के साथ–साथ कर्त्तव्यों का पालन करना भी सीखते हैं। खेल के मैदान में प्रत्येक बालक अन्य बालकों के अधिकारों को आदर की दृष्टि से देखता है। इस

प्रकार वे अधिकार और कर्त्तव्यों दोनों का महत्व समझते हैं। इसके अतिरिक्त बालक नैतिक भावना के अन्तर्गत काम करना सीखते हैं।

7. **अनुशासनात्मक विकास में सहायक–**उचित ढंग से नियम–पालन तथा आज्ञाकारिता की भावना ही अनुशासन के प्रमुख तत्व हैं। खेलकूद बालकों में इन गुणों का विकास करने में सहायक होते हैं। प्रत्येक बालक अपनी टीम के नेता की आज्ञा का पालन हृदय से करता है तथा खेलों के नियमों का उल्लंघन करने का उसमें साहस नहीं होता। वह खेल के नियमों का विनयपूर्वक पालन करता है।
8. **अवकाश के सदुपयोग में सहायक–**खाली मस्तिष्क शैतान का घर होता है। खेलकूद में भाग लेना बालकों के खाली समय का सुन्दरतम् उपयोग है। खेलकूद की सुलभताओं के अभाव में बालकों को सिनेमा देखने का व्यसन लग जाता है तथा वे अपना समय गुजारने के लिए रेस्तरां, होटल या किसी बुरी संगत के शिकार हो जाते हैं। इस प्रकार खेलकूद बालकों के अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करते हैं और उन्हें अनुचित गतिविधियों में पड़ने से बचाते हैं।
9. **भावी जीवन की तैयारी में सहायक–**खेलकूदों से छात्रों को भविष्य में जीवनयापन करने का प्रशिक्षण मिलता है। श्रेष्ठ खिलाड़ियों में नेतृत्व की योग्यता का विकास होता है तथा वे योग्य बनकर अपना जीवन सार्थक करते हैं।

खेलों के प्रकार–हमारे देश में प्रायः निम्नलिखित प्रकार के खेल खेले जाते हैं–

1. बॉलीबाल, कबड्डी, खो–खो, बैडमिण्टन, क्रिकेट, बॉस्केट बाल, हॉकी, फुटबॉल, तैरने की क्रिया, टेबिल टेनिस, जूड़ो–कराटे, ताइक्वाण्डो।
2. एथिलेटिक्स–दौड़े, कूदें आदि।
3. जिम्नास्टिक–बैलेन्स बैच, बालबार, पैरेलल बार और डाइविंग।
4. छोटे–छोटे खेल निम्नलिखित हैं–माल का डिब्बा, दोस्त नमस्कार, चीता चीतल, ऊँच–नीच (अप–डाउन), अन्दर–बाहर, शेर, चीता, चूहा, बिल्ली, पूसी, बिल्ली, नेता की खोज, कुर्सी दौड़, अमरूद दौड़, सुई तागा, चम्मच दौड़, बाधा दौड़, बोरा दौड़, दूर पहाड़ी, आगी–लागी, मूर्ति बनाना, संतुलन रेस, भेड़िया, भैया तथा अन्य स्थानीय रोचक खेल आदि।

विभिन्न स्तरों पर खेल के नियम–शारीरिक शिक्षा के अध्यापक को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है–

1. प्राथमिक स्तर पर अध्यापक को स्वयं बालकों के साथ खेलने में पहल करनी चाहिए। यदि अध्यापक छोटे बालकों के साथ खेलेगा तो छात्र खेलने में विशेष रूचि लेंगे।
2. कभी–कभी बालकों की रूचि के अनुसार भी खेल खिलाए जाए।
3. खेलों को खिलाते समय अध्यापक को प्रसन्न मुखमुद्रा में रहना चाहिए तथा बालकों को भी प्रसन्न मुखमुद्रा में रहने के लिए उत्साहित किया जाए।

4. कक्षा 6 से 8 तक के बालकों में खेलों के प्रति रूचि जाग्रत करने के लिए यथासम्भव सामूहिक खेलों का आयोजन किया जाए।
5. अध्यापक को खेल खिलाते समय निष्पक्षता का व्यवहार करना चाहिए। खेलते समय तथा टीम का चयन करने में यदि अध्यापक पक्षपात करता है तो छात्रों में खेल के प्रति अरूचि उत्पन्न हो जाती है।
6. छात्रों को विभिन्न प्रकार के खेल खिलाए जाए। एक या दो प्रकार के खेल बार–बार खिलाने से बालक नीरसता का अनुभव करने लग जाते हैं।
7. विद्यालय में खेलकूद का विवरण देने वाली पत्रिकाएँ मंगायी जाए तथा छात्रों को उन्हें पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाए।
8. जिला अथवा प्रान्तीय खेलकूद प्रतियोगिताओं में विद्यालय की चुनी टीम तथा छात्रों को भाग लेने के लिए अवश्य भेजा जाए।
9. विद्यालय में प्रतिवर्ष ''खेल दिवस'' मनाया जाए। यह दिवस बड़े उत्साह से आयोजित किया जाए तथा इसके मनाने का उत्तरदायित्व छात्रों पर रहे।

9.4 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शारीरिक क्रियाएँ–

शारीरिक शिक्षा 3 से 21 वर्ष के ऐसे बच्चों और युवाओं के लिए आवश्यक है जिनका विकास कम हुआ हो अथवा जो शारीरिक अथवा मानसिक रूप से अशक्त हों। विशेष शिक्षा से तात्पर्य उन निर्देशों से हैं जो अशक्त बच्चों की विशेष आवश्यकताओं को पूरा कर सकें। ये निर्देश कक्षाओं के लिए भी हो सकते है तथा खेल के मैदान में शारीरिक शिक्षा के दौरान भी हो सकते हैं। ऐसे विशेष बच्चों के लिए विशेष रूप के क्रियाकलाप तैयार कराए जाते हैं।

विशेष आवश्यकता वाले बच्चों में शारीरिक शिक्षा, शारीरिक योग्यता, मूलभूत कौशल, जलीय खेल, नृत्य, खेलकूद आदि कौशल विकसित करेगी।

बच्चों के समूह में से विशेष आवश्यकता वाले बालकों को पहचानकर उनके लिए विशेष निर्देश और क्रियाकलापों की रणनीति बनाई जाना चाहिए।

विशेष बच्चों की आवश्यकता के आधार पर कुछ शारीरिक क्रियाकलाप दूसरों की अपेक्षा ज्यादा प्रतिबंधित होने चाहिए तथा कुछ दूसरों की अपेक्षा कम विकसित होने चाहिए। शिक्षक अपने अन्य साथी शिक्षकों के साथ मिलकर यह निश्चित करेगा कि शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम में विशेष बच्चे की सहभागिता कम होनी चाहिए या अधिक। विशेष आवश्यकता वाले बच्चों की आवश्यकता को देखते हुए क्रियाकलापों या खेल सामग्री को बदला जा सकता है जैसे– बड़ी गेंद, बल्ला, सहयोगी, विभिन्न अंगों का उपयोग या अधिक विश्राम देना। इन सबके पीछे हमारा एक ही लक्ष्य होना चाहिए अशक्त बालकों की उन्नति एवं किसी न किसी रूप में उसकी सफलता।

महत्वपूर्ण सुझाव–

1. अभिभावक एवं विशेष स्टॉफ (शिक्षक) से सलाह लें।

2. छात्र जो क्रियाकलाप करने में असमर्थ हों, वे छात्र से करने को न कहें।
3. जहाँ तक संभव हो अशक्त छात्रों के योग्य खेलकूद करवाऐं जिससे उनमें आत्मसम्मान की भावना आयेगी।
4. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का चयन टीम में न किया जाए।
5. विशेष आवश्यकता वाले बच्चों से संबंधित अनेक स्रोतों के भण्डार उपलब्ध हैं, इन्हें खोजकर बच्चों तक पहुँचाए।

9.5 म.प्र. में शारीरिक शिक्षा के प्रमुख केन्द्रों की जानकारी–

साईं–ैचवतज ।नजीवतपजल वप्दकपं ैंइ।प्द्ध.

25 जनवरी सन् 1984 को भारत सरकार के खेल विभाग द्वारा ैंइ।प की स्थापना की गई। इस संस्थान की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य खेलकूद को बढ़ावा देकर इस क्षेत्र में क्रांति लाना है।

प्रोग्राम एवं पॉलिसी–

ैंइ।प की स्थापना दो उद्देश्यों को लेकर की गई थी–खेलकूद का विस्तार एवं राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्धियाँ। पिछले कुछ वर्षों में ैंइ।प खेलकूद एवं युवा कल्याण मंत्रालय का एक अभिन्न अंग बन गया है।

उद्देश्य–

- पूरे देश में खेलकूद का विस्तार करना एवं बढ़ावा देना।
- अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेल में उत्कृष्ट उपलब्धियों के लिए संचालित योजनाओं और कार्यक्रमों पर अमल करना जिससे भारत एक मुख्य खेल शक्ति के रूप में स्थापित हो सके।
- सन् 1982 में 9वीं एशियन गेम्स के लिए बनाए गए स्टेडियम का उपयोग एवं रखरखाव करना।
- देश में खेल के विकास से संबंधित विभिन्न एजेन्सियों और खेल और युवा कल्याण मंत्रालय के मध्य कार्य करना।
- उच्च गुणवत्ता वाले कोच, खेल वैज्ञानिक व शारीरिक शिक्षक तैयार करने वाले संस्थान को स्थापित करना।
- देश में खेल की सुविधाओं को अर्जित करना, विकसित करना व व्यवस्थित करना।
- विभिन्न खेल विज्ञानों से संबंधित रिसर्च प्रोजेक्ट को शुरू करके उसे आगे बढ़ाना।
- खेलों में उत्कृष्टता और विकास से संबंधित अन्य मामलों की जानकारी रखना।

स्टेडियम का उपयोग व रखरखाव–

भारत सरकार की ओर से ।प विभिन्न स्टेडियम का उपयोग व रखरखाव करता है जिनकी स्थापना 1982 में 9वीं एशियन गेम्स के समय हुई थी। इन्हीं स्टेडियम में कॉमनवेल्थ गेम्स 2010 भी आयोजित किए गए। ये स्टेडियम निम्न है–

1. जवाहरलाल नेहरू स्टेडियम।
2. इन्दिरा गाँधी स्टेडियम।
3. मेजर ध्यानचन्द राष्ट्रीय स्टेडियम।
4. डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी स्वीमिंगपूल काम्प्लेक्स।
5. डॉ. कर्नी सिंह शूटिंग रेन्ज।

साईं की खेलों को बढ़ावा देने वाली योजनाएँ–

प्रतिभावान बच्चों को खेलकूद से संबंधित सुविधाएँ प्रदान करने के लिए ।प निम्न योजनाएँ भी चला रहा है–

1. उत्कृष्ट योजनाओं के केन्द्र।
2. साईं ट्रेनिंग सेन्टर योजना।
3. विशेष क्षेत्र खेलकूद योजना।
4. राष्ट्रीय खेल प्रतिभा प्रतियोगिता योजना।
5. सैनिकों के छात्रों के लिए खेल कम्पनी योजना।

लक्ष्मीबाई खेल महाविद्यालय, ग्वालियर–

लक्ष्मीबाई खेल महाविद्यालय, शक्तिनगर, ग्वालियर की स्थापना भारत सरकार के द्वारा 17 अगस्त 1957 में की गई थी। यू.जी.सी. एक्ट के तहत वर्ष 1995 में इसे स्वशासी विश्वविद्यालय का दर्जा प्राप्त हुआ है। संस्थान ग्वालियर शहर के मध्य में लगभग 150 एकड़ के हरे कैम्पस में स्थित है। इस विश्वविद्यालय के कुलपति मेजर जनरल शिवनाथ मुखर्जी है।

लक्ष्मीबाई खेल महाविद्यालय के प्रमुख विभाग–

- शिक्षक शिक्षा का विभाग– इस विभाग का उद्देश्य शारीरिक शिक्षा के ऐसे शिक्षकों को तैयार करना है जो भारत एवं विदेशों के महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सके।
- कोचिंग, नृत्य एवं योग्यता विभाग–यह विभाग मुख्य रूप से खेल की तकनीकों से संबंधित है।
- युवाओं के कार्य और खेल विभाग–यह विभाग शारीरिक शिक्षा और खेल के अखाड़े में युवाओं के योगदान का लेखा जोखा रखता है।

पाठ्यक्रम–

- ठंबीमसवत वि चिलेपबंस म्कनबंजपवदण ;ठच्द्ध

- डेंजमत वि चेलेपबंस म्कनबंजपवदण ;डच्म्द्ध
- च्वेज ळतंकनंजम क्पचसवउं पद`चवतज डंदंहमउमदजण ;1 लमंतद्ध

सुविधाएँ–

लक्ष्मीबाई खेल महाविद्यालय की सेन्ट्रल लाइब्रेरी में शारीरिक शिक्षा और उससे संबंधित लगभग 4300 किताबे तथा एनसाइक्लोपीडिया के 58 संकलन उपलब्ध है। इस पुस्तकालय में खेलों से संबंधित लगभग 80 राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जर्नल भी मौजूद हैं। इस संस्थान में सुसज्जित प्रयोगशाला तथा छात्रावास भी है।

खेलों का संभावनाशील 'हब'–शासकीय आवासीय खेलकूद संस्था सीहोर (म.प्र.)
(लोक शिक्षण संचालनालय म.प्र. द्वारा एकमेव संचालित)

संस्था का उद्देश्य–

व्यक्तित्व विकास के लिए बेहतर शिक्षा, पौष्टिक आहार और समृद्ध पर्यावरण तो जरूरी है ही साथ–साथ खेल भी अत्यंत आवश्यक है। इसी मूल भावना को लेकर म.प्र. शासन स्कूल शिक्षा विभाग द्वारा वर्ष 1987 में छात्रों के चहुँमुखी विकास हेतु राज्य में एक मात्र खेल संस्था शासकीय आवासीय खेलकूद संस्था सीहोर की स्थापना की गई है जिसमें छात्रों को अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ खेलकूद एवं अन्य शारीरिक शिक्षा संबंधी प्रशिक्षण भी दिया जाता है। संस्था में हॉकी, फुटबॉल, जुडो, ताईक्वाडो, एथलेटिक्स कब्ड्डी, खो–खो, टी.टी. एवं कुश्ती आदि का प्रशिक्षण मुख्य रूप से दिया जाता है। इस संस्था में कक्षा 9वीं से 12वीं तक छात्रों को शासन द्वारा आवास, भोजन, गणवेश एवं खेलकूद की समस्त सुविधाएँ निःशुल्क प्रदान की जाती है।

प्रवेश प्रक्रिया–

संस्था में कक्षा 9–12 तक कुल 200 छात्रों को प्रदेश स्तर पर प्रवेश दिया जाता है जिसमें आयु सीमा वजन एवं हाईट निम्नानुसार है–

कक्षा	आयु	ऊँचाई	वजन
9वीं	13 से 14 वर्ष	4 फिट से 8'' से अधिक	35 से 45 कि.ग्रा.
10वीं	14 से 15 वर्ष	4 फिट से 10'' से अधिक	35 से 45 कि.ग्रा.
11वीं	15 से 16 वर्ष	5 फिट से 2'' से अधिक	45 से से अधिक
12वीं	16 से 18 वर्ष	5 फिट से 2'' से अधिक	45 से से अधिक

प्रवेश प्रक्रिया के अन्तर्गत छात्रों को शारीरिक मापदण्ड, स्वास्थ्य फेक, लांग जम्प, हाईजम्प, टेस्ट सम्मिलित है। प्रवेश के लिए यह अनिवार्य है कि पिछली कक्षा 50 प्रतिशत अंकों के साथ उत्तीर्ण की हो। प्रवेश चयन प्रक्रिया में शासन द्वारा निर्धारित राज्य स्तर पर आरक्षण का पालन किया जाता है।

संचालित संकाय–

संस्था में खेलकूद की विभिन्न गतिविधियों के साथ कक्षा–9वीं, 10वीं में सभी अनिवार्य विषयों का अध्यापन कार्य किया जाता है एवं कक्षा–11वीं, 12वीं में गणित एवं जीवविज्ञान संकाय संचालित है।

प्रबंधन समिति–

संस्था के विकास कार्य हेतु अभिभावकों को अधिकाधिक रूचि लेने के लिए पालक शिक्षक संघ का गठन किया गया है जो संस्था प्रमुख को व्यवस्थित शाला संचालन में सहायता प्रदान करता है। संस्था की सभी विकास संबंधी, अकादमिक, प्रशासनिक तथा वित्तीय गतिविधियों का पर्यवेक्षण एवं समीक्षा तथा समुदाय आधारित गतिविधियों को प्रोत्साहित करने हेतु प्रबंधन समिति की महत्ती भूमिका होती है जिसके अध्यक्ष जिले के कलेक्टर होते है।

संस्था की उपलब्धियाँ–

राज्य स्तर की यह खेलकूद संस्था खिलाड़ियों को तराशने वाला अभिनव केन्द्र बन गया है। प्रदेश के अलग–अलग हिस्सों से आए खिलाड़ी छात्रों को यहाँ राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धाओं के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। बहुत कम समय में इस संस्था ने राष्ट्रीय क्षितिज पर अपना कीर्तिमान स्थापित किया है। संस्था में छात्रों को देशभक्ति की भावना से ओत–प्रोत कर भारतीय सेना व पुलिस भर्ती हेतु विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाता है। फलस्वरूप प्रतिवर्ष कई छात्र भारतीय सेना एवं पुलिस में भर्ती होते हैं।

विगत वर्षों में संस्था का हायर सेकेण्डरी परीक्षा का परिणाम शत प्रतिशत् रहा है जो संस्था के कर्मठ व कर्त्तव्यनिष्ठ शिक्षकों के अथक परिश्रम का मूल्यांकन करता है। इस संस्था के छात्रों का भविष्य अत्यंत उज्जवल बना रहे इस हेतु लोक शिक्षण संचालनालय म.प्र. भोपाल द्वारा हर संभव प्रयास किया जाता है।

पाठगत प्रश्न–

प्रश्न. 1 शारीरिक कार्यकलाप कितने प्रकार के होते हैं?

प्रश्न. 2 ैप्क कहाँ पर स्थित है।

प्रश्न. 3 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शारीरिक क्रियाऐं कैसी होनी चाहिए।

इकाई सारांश–

- शारीरिक शिक्षा उत्तम नागरिकता या उत्तम स्वास्थ्य की उन्नति का एक महत्वपूर्ण साधन है।
- खेलकूद व्यक्ति को अनुशासनबद्ध बनाते हैं।
- खेलकूद का शैक्षणिक महत्व है इसलिए इसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया जाता है।

- शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य शरीर और मन को स्वस्थ रखना है।
- शारीरिक कार्यकलाप कई प्रकार के होते है जैसे जलीय क्रियाएँ, नैसर्गिक क्रियाएँ, जिमनास्टिक, एथलेटिक्स आदि।
- बालक अपनी आयु, लिंग व रूचि के अनुसार शारीरिक कार्यकलापों का चुनाव करते हैं।
- विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शारीरिक शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो उनकी विशेष आवश्यकताओं को पूरा कर सके।
- शारीरिक शिक्षा में व्यायाम का भी विशेष महत्व है।
- म.प्र. में शारीरिक शिक्षा के तीन प्रमुख केन्द्र है–एस.ए.आई. भोपाल, लक्ष्मीबाई खेल महाविद्यालय ग्वालियर तथा आवासीय खेल विद्यालय सीहोर।

आत्म परीक्षण के प्रश्न–

प्रश्न. 1 शारीरिक शिक्षा का महत्व लिखिए।

प्रश्न. 2 शाला के पाठ्यक्रम में शारीरिक शिक्षा का क्या स्थान है?

प्रश्न. 3 आयु, लिंग व रूचि के अनुसार शारीरिक कार्यकलाप कैसे होने चाहिए।

प्रश्न. 4 लक्ष्मीबाई खेल महाविद्यालय में उपलब्ध सुविधाएँ व पाठ्यक्रम लिखिए।

प्रश्न. 5 शारीरिक शिक्षा में खेलों का क्या महत्व है?

प्रश्न. 6 शासकीय आवासीय खेलकूद संस्था सीहोर पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर तालिका

उपइकाई–1

उत्तर 1 शारीरिक शिक्षा का अर्थ मानव शरीर के अंगों के विकास से है।

उत्तर 2 शारीरिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य छात्रों का शारीरिक और संवेगात्मक विकास करना है।

उत्तर 3 शारीरिक कार्यकलाप से तात्पर्य–व्यक्ति, समुदाय और जाति की स्वास्थ्य संबंधी आदतों और दृष्किोण को अच्छा बनाने में सहायता करना है।

उपइकाई–2

उत्तर 1 शारीरिक कार्यकलाप कई प्रकार के होते हैं– जैसे जलीय क्रियाएँ, नैसर्गिक क्रियाएँ, जिमनास्टिक, एथलेटिक्स आदि।

उत्तर 2 ै।प भोपाल में स्थित है।

उत्तर 3 विशेष आवश्यकता वाले बच्चों के लिए शारीरिक क्रियाऐं विशेष रूप के क्रियाकलापों द्वारा कराई जाती है।

,,,,,,

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल म.प्र., भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)

डिप्लोमा इन एज्युकेशन (प्रथम वर्ष)

प्रश्न पत्र – द्वितीय

विषय : योग शिक्षा **इकाई : 10**

विषयांश

10.1 योग शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य आवश्यकता एंव महत्व

10.2 भारतीय संस्कृति में थोग की परम्परा

10.3 योग और व्यायाम में अंतर

10.4 योग में सूक्ष्म व्यायाम

10.5 योग में बहिरंग–यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार

10.6 योग के अंतरंग ध्यान, धारणा, समाधि

10.7 सूर्य नमस्कार

10.8 योग के समय आवश्यक सावधानियां

(व्यावहारिक परीक्षा योजना के अन्तर्गत नियमित योग अभ्यास प्रदर्शन के आधार पर मूल्यांकन किया जायेगा।)

प्रिय छात्र अध्यापक,

पिछली इकाई में आप ने शारीरिक शिक्षा का अध्ययन किया। इस इकाई में आप योग शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, आवश्यकता एंव महत्व तथा प्रमुख योगासन सूर्य नमस्कार प्राणायाम, योग के समय आवश्यक सावधानियॉ इत्यादि के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

योग शिक्षा का अर्थ, उद्देश्य, आवश्यकता एंव महत्व :–

योग शिक्षा – योग शिक्षा को पूर्ण रूप से समझने के लिये हमें योग शब्द के अर्थ को समझना होगा योग शब्द 'युज' धातु से बना है, जिसका अर्थ है जोड़ना।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण के अनुसार ''योगः कर्मसु कौशलम्'' अर्थात् कुशलता से कार्य करने का नाम ही योग है। योग कार्य की कुशलता को बढ़ाता है। योग वशिष्ठ के अनुसार – ''संसार सागर से पार होने की मुक्ति की युक्ति का नाम ही योग है। किसी वस्तु को अपने में जोड़ना अर्थात् किसी अच्छे कार्य में अपने को लगाना। कार्य शारीरिक मानसिक धार्मिक तथा आध्यात्मिक आदि

विभिन्न प्रकार के हो सकते है। मन एंव शरीर से जो कार्य किया जायेगा उसे ही योग कहते है। ''योग आज की आवश्यकता भविष्य की संस्कृति है।''

शारीरिक, मानसिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हमें योग की कोई न कोई क्रिया कम से कम 15–20 मिनट आवश्यक रूप से करना चाहिये, जिससे हम अपने उद्देश्य को प्राप्त कर सके।

छात्रों को यौगिक क्रियाओ की जानकारी देकर उन्हे इसमें प्रशिक्षण दे सके।

उद्देंश्य – 1. शरीर के महत्वपूर्ण अव्यवों–नाड़ी संस्थान, ज्ञान तन्तु संस्थान, सांस संस्थान, रूधिर संस्थान इत्यादि को शक्तिशाली बनाना।

2. आसन तथा क्रियाओ द्वारा फेफड़ों, ह्रदय, यकृत, तिल्ली, उदर, अन्तड़ियो एंव मेंरूदण्ड को विभिन्न तरह से आराम देकर उन्हे शक्तिशाली बनाना है।

3. शरीर की रोग प्रतिकार, क्षमता को बढ़ाना।

4. शरीर को सुडौल बलशाली एंव स्वस्थ बनाना।

5. मनुष्य मात्र की बुद्धि का विकास करना, उसे मानसिक रूप से सशक्त करना।

6. चरित्र निर्माण करना, चिन्ता परेशानियॉ, व्याकुलता तथा अनेक तरह के मनोविकारो को समाप्त करना।

7. विद्यार्थीयो के शारीरिक मानसिक, चारित्रिक इत्यादि सभी पक्षो का समग्र विकास करना।

आवश्यकता एंव महत्व :–

स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है और स्वस्थ व्यक्ति ही स्वस्थ समाज एंव देश के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में नैतिक एंव सामाजिक मूल्यों का पतन, आचरण की अराजकता, अनियमित दिनचर्या, अति भौतिकवादिता के कारण मनुष्य शारीरिक एंव मानसिक रूप से रूग्ण होता जा रहा है। चारों ओर अनैतिकता एंव मानसिक विकृतियॉ मनुष्य को नैतिक पतन की ओर ले जा रही हैं। ऐसे समय में योग आज की महती आवश्यकता है।

योग के द्वारा छात्रों का शारीरिक, भावनात्मक, बौद्धिक एंव नैतिक विकास किया जा सकता है। योग हमारी कार्यकुशलता एंव कार्यक्षमता में अभूतपूर्व वृद्धि करता है जिसका अनुभव स्वयं अभ्यास के द्वारा किया जा सकता है।

योग के अंतर्गत आसन एंव प्राणायाम का अभ्यास हमें शारीरिक एंव मानसिक रूप से सशक्त बनाते हैं। योगाभ्यास द्वारा विभिन्न रोगों से बचा जा सकता है।

3. वर्तमान युग में बच्चो में स्थूलता, पेट संबंधी विकार, एकाग्रता का अभाव, अनुचित आसन के कारण कंधे झुकाकर चलना, झुककर बैठना, टी.वी. अधिक देखना तथा लेटकर पढ़ना तथा खान–पान की तरफ ध्यान न देने से नेत्र ज्योति का कमजोर होना आदि विकार प्रमुख रूप से देखने में आ रहे है। इन विकारों को दूर करने के लिये कुछ आसन प्रमुख हैं जैसे – पद्मासन, वज्रासन, कूर्मासन, तड़ासन, भुजंगासन आदि के नियमित अभ्यास से इन्हे दूर किया जा सकता है तथा संपूर्ण स्वास्थ्य

प्राप्त किया जा सकता है। अध्यापकों को स्वयं इनका ज्ञान प्राप्त कर छात्रों को इनका महत्व समझाते हुए, इनका अभ्यास कराना चाहिये।

पाठगत प्रश्न

प्र.1 रिक्त स्थान की पूर्ति करो –

1. ''योगः कर्मसु कौशलम'' यह वाक्य ———————————— का है। –

अ. मुनि वशिष्ठ का ब. गीता स. महिर्षि पातंज्जति का द. इनमें से कोई नही

प्र.2 योग वशिष्ठ के अनुसार योग का क्या अर्थ है ?

प्र.3 योग शिक्षा के कोई दो उद्देश्य लिखो।

भारतीय संस्कृति में योग की परम्परा

योग भारतीय प्राचीन संस्कृति की अमूल्य निधि है। भारतीय योग विद्या के आधार पर आज का दुःखित मानव जरा, व्याधि एंव अकाल मृत्यृ पर विजय प्राप्त कर सकता है। भारतीय ऋषियो तथा मुनियो ने अनुसन्धानों, प्रयोगों एवं अनेक आविष्कारों द्वारा इसको विकसित किया है। इन योगासनों का उपयोग हर व्यक्ति सुगमता से कर सकता है, चाहे वह साधारण ग्रहस्थ हो, सन्यासी हो या विद्यार्थी। प्राचीन समय में बच्चे का प्रायः 7–8 वर्ष की उम्र में उपनयन संस्कार होता था। बच्चे को पिता के द्वारा गायत्री मंत्र का जाप, प्राणायाम एवं सूर्य नमस्कार सिखाया जाता था। तत्पश्चात गुरूकुल पद्धति में भी इसकी शिक्षा प्रदान की जाती थी। आज भी उस प्राचीन परंपरा की आवश्यकता है। योग के द्वारा बच्चे के मन में नैतिकता के गुणों का विकास कर उसे अनुशासन प्रिय बनाकर समाज में मानवीय मूल्यों को स्थापित किया जा सकेगा तथा किशोरावस्था की समस्या का निदानात्मक उपचार हो सकेगा।

प्राथमिक कक्षाओ से ही योग शिक्षा का प्रारंभ करने से छात्रों में इसके प्रति रूचि जागृत की जा सकती है। योगासनों द्वारा बालक बालिकाओ के मन तथा बुद्धि संवेदनशील हो जाती है। शरीर सुडौल एंव लचीला हो जाता है। मनुष्य निरोग तथा दीर्घजीवी होता है। इसका प्रयोग बिना किसी व्यय के आसानी से किया जा सकता है, अतः विद्यालयो हेतु ये बहुत उपयोगी है।

<u>योगासन का तात्पर्य, कुछ महत्वपूर्ण आसन उनसे होने वाले लाभ –</u>

योगासन का तात्पर्य :–

योगासन शब्द दो शब्दो से बना है। योग + आसन त्र योगासन। योग शब्द का अर्थ हम भलीभॉति जानते है। आसन का तात्पर्य मनुष्य का अपने शरीर को विशेष रूप से साधना है। आसन वही है, जिसके नित्य अभास से शरीर दृढ़ तथा मन स्थिर हो।

आसनों को स्थिति के अनुसार चार वर्गों में बॉटा गया है।

1. बैठकर किये जाने वाले आसन
2. खड़े होकर किये जाने वाले आसन
3. पीठ के बल किये जाने वाले आसन
4. पेट के बल किये जाने वाले आसन।

इनमें से प्रत्येक वर्ग से बच्चो के लिये कुछ लाभप्रद आसन बताये जा रहे है।

1. बैठकर किये जाने वाले आसन :–

अ. पद्मासन :–

इस आसन को ध्यान के लिये अच्छा माना जाता है। इस आसन की मुद्रा कमल के समान होती है इसलिये इसे पद्मासन कहा जाता है। दोनो पैर सामने फैलाकर स्वच्छ कम्बल या दरी पर बैठें। दोनों हाथो से बायें पैर की एड़ी उठाकर नाभि से स्पर्श करते हुए दाहिने जंघा पर टिकायें। इसी प्रकार दोनो हाथों से दाहिने पैर की एड़ी को उठाकर नाभि से स्पर्श करते हुए बायी जंघा पर टिकायें। दोनो हाथ को जंघा पर स्थापित कर रीढ़ को सीधा करें। तर्जनी व अंगूठा सिरों से मिलायें सामने देखे या ऑख बंद करके यह अभ्यास 1 से 10 मिनिट तक करें।

पद्मासन

लाभ :– 1. एकाग्रता बढ़ती है

2. ध्यान के लिये उत्तम साधन है।

ब. वज्रासन :–

वज्र शब्द का अर्थ है कठोर। इस आसन का प्रभाव बज्रनाड़ी पर पड़ता है इसलिये इसे वज्रासन के नाम से जाना जाता है। कंबल पर दोनो पैर फैलाकर बैठें। बायें पैर कों घुटने से मोड़कर पीछे ले जायें इसी प्रकार दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर पीछे ले जायें। दोनो पैरों के अंगूठे मिलायें। एड़ियों पर बैठ जायें। रीढ़ को सीधा करें। हाथ को जंघा पर रखें। दृष्टि सामने रखे।

वज्रासन

लाभ :– 1. एक मात्र यही आसन है जो भोजन के पश्चात किया जाता है। 5–10 मिनिट तक इस आसन में बैठने से

वायु विकार व पाचन सम्बंधी विकार दूर होते है।

2. पाचन संस्थान सम्बंधी विकार दूर होते है।

3. मलाशय एंव मलद्वार के रोग ठीक होते है।

4. अतिनिद्रा और अनिद्रा रोग दूर होता है।

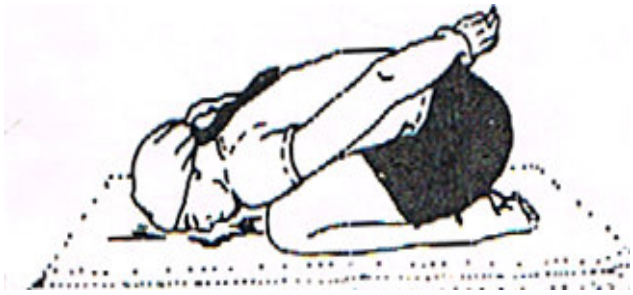

स. कूर्मासन :–

कछुए की समान आकृति होने के कारण इस आसन को कूर्मासन कहा जाता है। इसके तीन भाग हैं :–

भाग–1 : कंबल पर वज्रासन में बैठ जायें। दोनो हाथों को पीठ के पीछे ले जायें अंगूठा छिपाकर दाहिने हाथ की मुठ्ठी बंद करें बायें हाथ से दाहिनी कलाई पकड़ें श्वास छोड़कर आगे की ओर झुककर सिर जमीन से टिकाने का प्रयत्न करे नितम्ब को ऊपर न उठाये। श्वास भरकर पूर्व स्थिति में आ जायें। इस क्रिया को 3 बार करें।

भाग–2 : भाग 1 के समान क्रिया करनी है अंतर इतना रहेगा कि इसमें बायी हथेली का करतल भाग नाभि पर रखें तथा उसके ऊपर दायी हथेली का करतल भाग रखकर शेष विधि भाग 1 के समान इस क्रिया को भी 3 बार दोहरायें।

भाग–3 : भाग 1 के समान अंगूठा छिपाकर मुठ्ठी बंद करें। कोहनियों को मिलायें तथा मुटिठ्यो को गले के नीचे रखे तथा कोहनियों को नाभि के ऊपर रखते हुए सॉस छोड़कर आगे झुकें। शेष विधि भाग 1 के समान करें।

लाभ :– 1. मन एकाग्र होता है।

2. पेट का मोटापा कम होता हैं।

3. पाचन क्रिया तीव्र होती है। वायु विकार नष्ट होते है।

4. घुटने, कोहनी, कलाई पुष्ट बनते है।

विशेष :– जिन्हे गर्दन एंव पीठ में दर्द हो वह इस आसन को न करें।

2. खड़े होकर किये जाने वाले आसन :–

अ. उर्ध्वहस्तोतानासन एंव तिर्यक ताड़ासन : कंबल अथवा दरी पर समावस्था में (दोनो पैर मिले हुए हाथ दोनों बाजू में सटे हुए) में खड़े हो जायें। दोनो हाथों की अंगुलियों को आपस में फँसाकर हथेली को उल्टा कर सिर पर तानें तथा एड़ी उठाकर पंजों पर श्वास भरते हुए खड़े हो जायें तथा श्वास रोके रहें यथासंभव रूके एंव धीरे–2 श्वास सामान्य करते हुए सामान्य स्थिति में आ जायें। इस क्रिया को चार बार करें।

तिर्यक ताड़ासन में हाथ को पहले क्रिया की भॉति ऊपर ले जायें श्वास भर कर हाथ सिर एंव कमर तीनों को यथाशक्ति बायीं ओर झुकायें श्वास छोड़कर पूर्व स्थिति में आ जायें। श्वास भरकर

पुनः हाथ, सिर एंव कमर को दायीं ओर झुकायें फिर श्वास छोड़ते हुए पूर्व स्थिति में आ जायें। इस क्रिया को चार बार दोहरायें।

लाभ :– 1. लम्बाई बढ़ाने में सहायक।

2. पेट की स्थूलता कम होती है। कब्ज दूर होती है।

3. कमर पतली व लचीली बनती है।

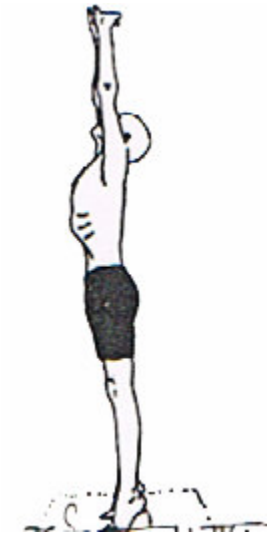

ब. कटिवक्रासन – समावस्था में खड़े होते हुए दोनो पैरो में कंधे बराबर अंतर रखें दोनो हाथो को सामने तानते हुए हथेली एक दूसरे के सामानान्तर रखे। श्वास को भरकर दोनो हाथों को (पैरो को स्थिर रखते हुए) बायी ओर इस प्रकार मोडें कि बाँयां हाथ पीठ की तरफ सीधा हो एंव दाहिने का पंजा बाँये हाथ के कंधे के पास हो। बाँयी कोहनी को कंधे की सीध में रखते है थोड़ा रूकने के पश्चात दोनो हाथों को श्वास छोड़ते हुए सामने लाते है इसी क्रिया को दाहिनी ओर मुड़कर भी पूरा करें। यह आवृति चार बार दोहरायें।

लाभ :– 1. रीढ़ लचीली बनती है।

2. कमर पतली होती है।

3. कब्जियत दूर होती है।

4. उदर विकार दूर होते हैं।

5. फेफड़े पुष्ट बनते हैं।

6. नृत्य साधकों के लिये लाभकारी।

3. पेट के बल लेटकर किये जाने वाले आसन :–

अ. भुजंगासन :– यह आसन सर्प के समान फन उठाये जैसा प्रतीत होता है। इसलिये इसे भुजंगासन नाम दिया गया है। कंबल या दरी पर पेट के बल लेट जायें। दोनो हथेलियों को सीने के पास जमीन पर स्थापित करें। कमर के नीचे का हिस्सा जमीन पर टिकाते हुए शरीर के शेष भाग को श्वास भर कर हथेलियों के बल ऊपर उठायें

तथा सिर को जितना पीछे ले जाते बने ले जाइये तथा यथाशक्ति श्वास रोककर रखें, फिर श्वास छोड़ते हुए पूर्व स्थिति में आ जायें।

लाभ :– 1. पेट का मोटापा कम होता है।

2. कमर पतली एवं लचीली बनती है।
3. सीना चौड़ा व पुष्ट बनता है।
4. स्वप्न दोष व धातु दौर्बल्य दूर होता है।
5. कब्ज एवं वायु विकार दूर होता है।

निषेध : हार्निया पीड़िता व्यक्ति इसे न करें।

ब) धनुरासन :– इस आसन की मुद्रा धनुष के समान दिखाई देती है इसलिये इसे धुनरासन नाम दिया जाता है। पेट के बल लेट जायें। दोनों घुटनों को मोड़ते हुए पैरों की ओर लायें। दोनों हाथों को पीछे ले जायें। हाथों से टखनों को पकड़ें। पेट का हिस्सा जमीन पर टिकाते हुए हाथ पैर एवं सिर पर छाती वाले भाग को जमीन से अधिक से अधिक ऊपर उठाने का प्रयास करें श्वास भर कर रोके रखें। (समय 30 सैकेण्ड से 10 मिनिट तक)

लाभ : 1. यह सभी अंतस्रावी ग्रंथियों को प्रभावित करता है।

2. यह यकृत, प्लीहा, वृक्क एवं प्रजनन ग्रथियों को प्रभावित करता है।
3. पाचन शक्ति बढ़ती है।
4. मधुमेंह रोग के लिये लाभकारी
5. लड़कियों एवं महिलाओं के गर्भाशय एवं मासिक धर्म सम्बंधित विकार दूर होते हैं।
6. मोटापा दूर होता है।
7. संपूर्ण नाड़ी एवं स्नायु केन्द्र शक्तिशाली एवं पुष्ट बनते हैं।
8. यह आसान स्त्री पुरूष, बालक, वृद्ध सभी के लिये लाभकारी है।

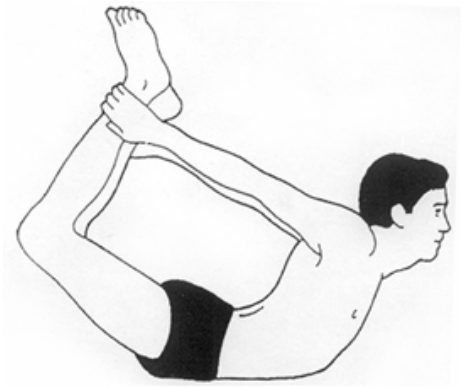

Dhanurasana

(स) शवासन :– शव अर्थात मुर्दा। इस आसन में अपने शरीर को शव की भांति निश्चेष्ट करते हैं इसलिये इसे शवासन कहते है। कंबल पर सीधे लेट जायें शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। हथेली आकाश की ओर तथा एडियाँ फैलायें। श्वास सामान्य रखें तथा सारा ध्यान प्रारंभ में श्वास लेने एवं छोड़ने की क्रिया पर केन्द्रित करें शरीर पर किसी तरह तनाव न रखें। आसन को आधा मिनिट से 10 मिनिट तक करें

लाभः 1. शारीरिक एवं मानसिक थकान दूर होती है।

2. शरीर में ताजगी एवं स्फूर्ति आती है।

विशेष : (सभी प्रकार के आसन के बाद शवासन अवश्य करें)

4. पीठ के बल लेटकर किये जाने वाले आसन

(अ) नौकासन :– पीठ के बल पर लेट जायें दोनों पैरों को मिलाकर रखे तथा दोनों हथेली को जंघा से सटाकर रखें। श्वास भरते हुए दोनों हाथों एवं पैर को अधिक से अधिक ऊपर उठायें व यथासंभव इस स्थिति में रूकिये घुटनों से पैर सीधे रखिये फिर श्वास छोड़ते हुए पूर्व की स्थिति में आकर शरीर को ढीला छोड़ दीजिये।

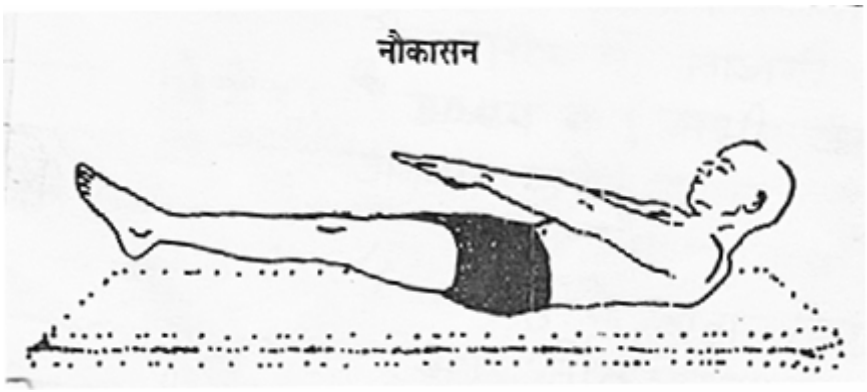

लाभ : 1. यह मधुमेंह के लिये लाभकारी है।

2. इस आसान से उदर का मोटापा कम होता है।

(ब) सुप्त पवनमुक्त आसन :– यह आसन पेट की दूषित एवं सुप्त वायु को मुक्त करता है इसलिये इसे सुप्तपवन मुक्तआसन कहा जाता है। पीठ के बल कंबल पर सीधे लेट जाये बायें घुटने को मोड़कर श्वास भर कर सीने के पास लायें दोनों हाथों से बायीं पिण्डली को दबायें व नाक को घुटने से लगाने का प्रयास करें श्वास लेने की इच्छा होने पर पूर्व स्थिति में आयें यही क्रिया दायें पैर से भी करें। इसके बाद दोनों घुटनों को एक साथ मोड़कर सीने के पास लाये दोनों हाथों से पिण्डलियों को दबायें तथा नाक को दोनों घुटनों से लगाने का प्रयास करें श्वास छोड़कर सामान्य श्वास से दोनों पिण्डलियों को पकड़े हुए आठ दस बार दायें–बायें एवं आगे–पीछे लुढ़कने का प्रयास करें। सामान्य स्थिति में आकर शवासन लगायें।

लाभ : 1. शरीर के वायु विकार दूर होते हैं।

2. पेट तथा घुटने का दर्द दूर होता है।

3. पेट का मोटापा कम होता है।

4. कमर व पीठ लचीली होती है।

5. जोड़ों का दर्द ठीक होता है।

6. मधुमेंह, हार्निया रोग निवारण में यह आसन बहुत लाभकारी है।

सर्वांगासन –

इस आसन में पीठ के बल लेट जाइए। दोनो पैर सीधे रखिए। पैर आपस में मिले रहें। दोनों हाथ अपनी अपनी बगल में रहें। बायें पैर को सीधा लाते हुए जमीन से पैंतालीस डिग्री का कोण बनाते हुए एक फुट ऊपर उठाइए, फिर वापस ले आइए। अब दायें पैर को ऊपर उठाइए एवं वापस ले आइए। फिर दोनों पैर एक साथ ऊपर उठाइए तथा नीचे वापस ले आइए। अब बायें पैर को समकोण बनाते हुए ऊपर उठाइए। बायें पैर का तलुआ आकाश की तरफ रहे। धीरे–धीरे पैर को वापस जमीन पर ले आइए। अब दायें पैर को समकोण बनाते हुए ऊपर उठाइए। दायें पैर का तलुआ आकाश की तरफ रहे। धीरे धरे पैर को वापस जमीन पर ले आइए।

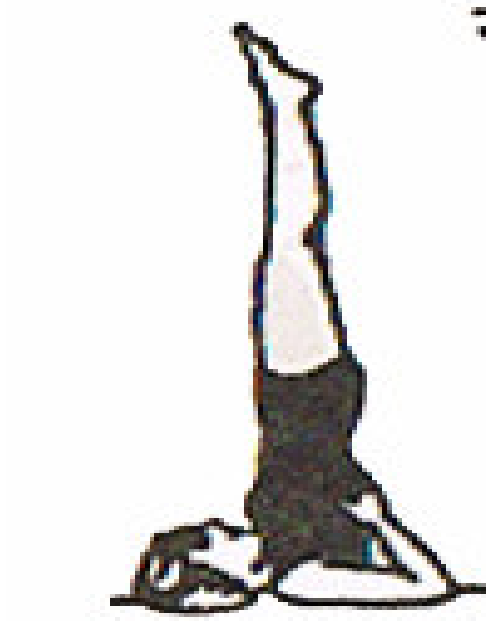

सर्वांगासन

इसके बाद पैर को समकोण बनाते हुए ऊपर उठाइए। बायें पैर का तलुआ आकाश की तरफ रहे। धीरे–धीरे पैर को वापस जमीन पर ले आइए। अब दायें पैर को समकोण बनाते हुए ऊपर उठाइए। दायें पैर का तलुआ आकाश की तरफ रहे। धीरे–धीरे पैर को वापस जमीन पर ले आइए।

इसके बाद दोनो पैरों को एक साथ उठाकर ऊपर की तरफ लाइए। तलुए आकाश की ओर रहें। इसके साथ झटके से कमर एंव पीठ को भी ऊपर उठाइए। पीठ को दोनो हाथों का सहारा दीजिए। कुहनियॉ जमीन पर टिकी रहें। बाँहें शरीर के साथ सटी रहें। सिर, गर्दन एंव दोनो कन्धों पर सारे शरीर का भार आ जावे। टाँगें बिल्कुल सीधी रहें, घुटनों से मोड़िए नही। दोनों पैरो को मिलाइए। पैरों के अंगूठों को नाक की सीध में रखिए।

लाभ – इस आसन से शरीर का रक्त शुद्ध होता है। दिल तथा फेफड़े मजबूत होते हैं। फेफड़ो के रोग दूर होते है। आँखो की ज्योति बढ़ती है। सिर दर्द दूर होता है। इससे पाण्डु रोग अर्थात पीलिया जाता रहता है। पाचन शक्ति बढ़ती है। पेट की गैस खत्म होती है। गले में स्थित थायरॉइड एंव पिट्टयुटरी नलिका विहीन ग्रन्थियों को पोषण और उत्तेजना मिलती है।

इस आसन को दस सेकण्ड से एक मिनट तक कीजिए।

शीर्षासन –

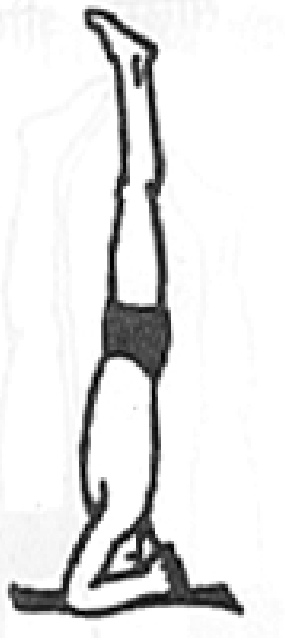

शीर्षासन सबसे श्रेष्ठ लेकिन सबसे कठिन आसन है। शीर्षासन प्रतिदिन दस मिनट से अधिक कभी नही करना चाहिए।

आठ तह करके कम्बल बिछा लीजिए अथवा तकिया लगा लीजिए। घुटनो के बल बैठ जाइए। दोनो हाथों की ऊँगलियाँ दृढ़ता से आपस में फॅसा लीजिए। दोनो हाथों को त्रिकोणाकार गद्दे पर रखिए। दोनो हाथों के बीच अपना मस्तक इस तरह भूमि पर रखिये कि दोनो अंगूठे सिर के पिछले हिस्से को दबायें। अब पंजो, बाँहो एंव सिर के बल उल्टे खड़े होने का प्रयास कीजिए। सिर्फ इतना पर्याप्त है कि आपकी कमर बिल्कुल ऊपर उठ जाए। धीरे–धीरे दोनो पैरों को सीधे आकाश की तरफ उठाइए। अगर गिरने का डर हो तो पहले दीवार का सहारा भी लिया जा सकता है।

अंत में कुछ अन्य आसन है 1. वक्रासन, 2. योग मुद्रासन, 3. चक्रासन, 4. उत्कृट आसन, 5. वृक्षासन, 6. वक्रासन, 7. कुक्कुटासन, 8. तोलांगुलासन, 9. अर्धमत्सयेन्द्रासन

अध्यापकों को इन आसनों के बारे में स्वयं प्रयोग करना चाहिये एंव छात्रों को इनका महत्व बताना चाहिये। छात्रों की उम्र को ध्यान में रखते हुये तथा अन्य परिस्थितियों तथा सुविधाओं के अनुसार छात्रों को कुछ आसन अवश्य कराये जाना चहिये।

उचित आसन :–

''उचित आसन वह है जिसमें मनुष्य अपने शरीर को साधने में किसी तरह के प्रयत्न का अनुभव नही करता एंव उसके शरीर का भार दोनो पैरो पर सन्तुलित रूप में सधा रहता है। इससे कम अशान्ति अनुभव होती है। धड़ की धुरी, सिर तथा ग्रीवा एक लम्ब रेख के समान्तर होती है। शरीर के अंग सुचारू, सम तथा एंव सहयोग से एकलय होकर बगैर किसी प्रयास के शान्ति से संचालित होते हैं''

अनुचित आसनों के कारण :–

1. घर का दूषित वातावरण,
2. छात्रों से घर पर शारीरिक क्षमता से ज्यादा काम लेना,
3. पौष्टिक भोजन न लेना,
4. कक्षाओं में प्रकाश की उचित व्यवस्था का न होना।

अच्छे आसनों के लिए उचित आसन निम्न रूप में करने पड़ते हैं –

उचित आसनों के प्रयोग के लिए अध्यापक सतत् जागरूक रहेंगें एवं इन्हें प्रयोग में लाते रहेंगें।

1. खड़े रहने का उचित आसन – खड़े रहने का उत्तम आसन यह है कि शरीर का भार समान रूप से दोनो पैरों पर डाला जायें तथा एड़ियॉ एक–दूसरे से घनिष्ठ रूप से मिली रहें। दोनो पन्जों के बीच 3–4 इन्च का अन्तर रखना जरूरी है। वक्ष सामने की तरफ उभरा होना चाहिए एंव गर्दन तथा सिर को सीधा रखना चाहिए। कमर को अत्यधिक झुकाना नहीं चाहिए। दोनों कन्धे एक सीध में होने चाहिऍं। पर ज्यादा देर तक खड़ा होना भी हानिप्रद है।

2. बैठने का उचित आसन – बैठने के आसन पर विशेष रूप से ध्यान देने की जरूरत है। जिस समय बालक बैठे उस समय मेरूदण्ड अथवा रीढ़ को सीधा एंव वात प्रदेश कुर्सी की सीट पर सन्तुलित रूप में स्थित होना चाहिए। कमर कुर्सी की पीठ में मिली होनी चाहिए। सिर, कन्धे एंव नितम्ब एक सीधी रेखा में होने चाहिऍं। टॉगे पैरों पर शीर्षात्मक रूप से टिकी रहनी चाहिए।

इन आसनों को अनुचित ढंग से करने पर निम्न दोष आ जाते है –

1. रीढ़ की हड्डी का टेढ़ापन।
2. कूबड़ का निकलना।
3. कटि प्रदेश में रीढ़ की हड्डी का आगे निकल जाना।
4. रीढ़ की हड्डी एक तरफ झुक जाती है एंव इसमें स्थायी टेढ़ापन आ जाता है।

3. पढ़ने का उचित आसन – पढ़ते समय कुर्सी पर इस ढंग से बैठा जाये कि आँख पुस्तक से 45 डिग्री के कोण पर एंव 1 फुट की दूरी पर रहे। डेस्क–कुर्सी को धन दूरी पर रखा जाये। इस तरह पढ़ने पर बालकों के नेत्रों पर कम जोर पड़ेगा।

4. लिखते समय का उचित आसन – लिखने में ऋण दूरी के डेस्क का प्रयोग किया जाये अर्थात् कुर्सी का किनारा डेस्क के अन्दर रहना चाहिए। लिखते समय शरीर को आगे की तरफ झुका कर सीधा एवं सन्तुलित रखा जाना चाहिए। कापी आँखों से एक फुट दूरी पर रखी जाये। जाँघों को अनुप्रस्थीय रूप में रखा जाये एंव टाँगें लम्बीय रूप में एंव पैर फर्श पर टिके रहने चाहिए।

5. सोते समय का उचित आसन – प्रायः बालको को इस बात की कोई जानकारी नही होती कि सोने का उचित ढंग क्या है ? अतः उन्हे इस बात से परिचित कर दिया जाए कि उन्हें चित सोना चाहिए। शयन–स्थल पूर्णतः हवादार होना चाहिए तथा सीलन एंव दुर्गन्धरहित होना चाहिए।

पाठगत प्रश्न

प्र.4 सही उत्तर चुनकर लिखे –

क. किस आसन में शरीर की आकृति कमल जैसी होती है ?

अ. शवासन, ब. शलभासन, स. पद्मासन, द. भुजंगासन

ख. पेट के बल लेटकर किया जाने वाला आसन है –

अ. भुजंगसान ब. वृश्विकासब, स. उर्ध्व पद्मासन द. उपरोक्त सभी

ग. पीठ के बल लेटकर कौन सा आसन किया जाता है –

अ. भुजंगसान ब. शवासन, स. हवासन, द. पद्मासन

घ. बालको को निम्न में से किस आसन का अभ्यास प्रारंभ से कराया जाना चाहिये –

अ. पद्मासन, ब. धनुरासन, स. सर्वांगासन, द. सूर्यनमस्कार

प्र.5 वज्रासन से हाने वाले लाभो का वर्णन करें। (कोई दो)

प्र.6 पढ़ने का उचित आसन क्या है? सक्षिप्त में वर्णन करो।

योग और व्यायाम में अंतर :

शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक व्यक्तित्व के विकास में भी योगाभ्यास का विशेष महत्व है। आसनों का अभ्यास स्वास्थ्य–लाभ एंव उपचार के लिये भी किया जा सकता है। माँसपेशियों में साधारण खिंचाव, आंतरिक अंगो की मालिश एंव सम्पूर्ण स्नायुओं में सुव्यवस्था आने से अभ्यासकर्ता के स्वास्थ्य में अद्भुत सुधार होता है। असाध्य रोगो में लाभ एवं उनका पूर्णरूपेण निराकरण भी योगाभ्यासों के माध्यम से किया जा सकता है।

व्यायामों का प्रभाव केवल शरीर की मॉसपेशियो एंव हड्डियों पर ही होता है। शारीरिक व्यायाम शीघ्रतापूर्वक एंव अधिक श्वास–प्रश्वास की क्रिया के साथ किया जाता है। नट के प्रदर्शन, शरीर को पुष्ट करने वाले व्यायाम, भार उठाने वाली प्रणालियॉ स्वस्थ व्यक्यिों में माँसपेशियों के विकास हेतु उपयुक्त है। विकसित मांसपेशियों के लिये अधिक भोजन और रक्त–आपूर्ति की आवश्यकता पड़ती है। परिणामतः ह्रदय को अधिक कार्य करना पड़ता है तथा श्वास–प्रश्वास प्रणाली का कार्य भी अपेक्षाकृत बढ़ जाता है। इस प्रकार प्राण शक्ति का ह्रास होता है। इन व्यायामो के अभ्यासोपरांत एक युवक अपने को पूर्ण स्वस्थ एंव शक्तिशाली अनुभव कर सकता है, परन्तु बढ़ती उम्र के साथ उसके विभिन्न अंगो की कार्य प्रणाली मंद पड़ जाती है। हड्डियों के संधि–स्थल में स्थित कोमल अस्थियों के अधिक प्रयोग के कारण शरीर के विभिन्न अंगो की लोच समाप्त होने लगती है ओर गठिया आदि की समस्यायें उत्पन्न होने लगती हैं। असामान्य रूप से विकसित माँसपेशियाँ अपना सुदृढ़ आकार खोकर ढ़ीली पड़ने लगती हैं, उनमें स्थित तंतु चर्बी के रूप में परिवर्तित हो जाते है। शरीर–गठन के अभ्यासों का त्याग कर देने पर युवावस्था में बढ़ी हुई माँसपेशियाँ के स्थान पर तेजी से चर्बी बढ़ने लगती है।

श्रम साध्य व्यायाम तथा वजन उठाने वाले अभ्यास और शरीर गठन की अन्य विधियाँ प्रत्येक व्यक्ति के लिये उपयोगी नही होती। बीमार या दुर्बल व्यक्ति इनका अभ्यास नही कर सकते। वृद्ध या बच्चे निश्चित रूप से इसका अभ्यास नही कर सकते। योगासन इनसे पूर्णतः भिन्न है तथा अधिक लाभप्रद भी है। आसनो का अभ्यास आराम से, धीरे–धीरे व एकाग्रता के साथ किया जाता है। इनका प्रभाव बाहय एंव आंतरिक दोनो ही संस्थानो पर पड़ता है। अतः स्नायुमंडल अंतः स्त्रावी ग्रंथियॉ और आंतरिक अंग तथा मांसपेशिया सुचारू रूप से कार्य करने लगती है। इन आसनो का प्रभाव शरीर और मन दोनो पर पड़ता है, जिससे अनेक दुर्बलताओ से मुक्ति मिलती है। इनका अभ्यास स्वस्थ, अस्वस्थ बालक युवा, वृद्ध सभी कर सकते हैं। एकाग्रता एंव ध्यान के लिये ये बहुत उपयोगी है।

वास्तव में व्यायाम की अन्य विधियाँ शरीर में विषैले पदार्थो की वृद्धि करती है, जबकि योगासनो का अभ्यास इनकी मात्रा को न्यून करता है। योगासनो के द्वारा मनुष्य मात्र की शरीरिक मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति संभव है।

पाठगत प्रश्न –

प्र.7 खाली स्थान की पूर्ति करो।

अ. व्यायाम से मांस पेशियॉ ————————— हो जाती है।

प्र.8 योगासन और व्यायाम में दो प्रमुख अंतर बताये।

योग में सूक्ष्म व्यायाम

शरीर, मन और चेतना को शुद्ध करने के लिये योग विद्या में अनेक प्रकार के आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्धों का अभ्यास किया जाता है। साधारण तथा व्यस्त व्यक्ति के लिये सभी आसनों को करना आवश्यक नही है, तथा यह संभव भी नही है। अतः आसनों को तीन समूहो में विभक्त कर दिया गया है। पहला प्रारंभिक, दूसरा मध्यम तथा तीसरा उन्नत श्रेणी के आसन। प्रारंभिक आसन समूह के अंतर्गत पवनमुक्तासन ऐसे अभ्यासो का समूह है, जो शरीर से वात निकालने में मदद करते है। अभ्यास के इस क्रम को प्रतिदिन आसन कार्यक्रम के प्रारम्भ में जोड़ों को ढीला एंव मांसपेशियों को लचीला करने के लिये किया जाना चाहिये। ये नये अभ्यासियों, दुर्बल बीमार, हृदय के रोगियों, उच्च रक्त चाप वालों एंव उन व्यक्तियों के लिये है, जिनका शरीर अन्य आसनो के लिये कड़ा और बेलोचदार है। पवनमुत्तासन के क्रम को दो प्रमुख समूहो में विभाजित किया गया है।

''गठियां निरोधक समूह'' और वायु (वात) निरोधक समूह। गठिया निरोधक अभ्यासो का शरीर के विभिन्न जोड़ों एंव अंगों पर लाभकारी प्रभाव पड़ता है। यद्यपि ये बड़े सरल लगते है, परन्तु अभ्यासी पर इनका बड़ा सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है। अभ्यास के इस समूह को ''सूक्ष्म व्यायाम'' भी कहते है। पवनमुक्तासन प्रारम्भ करने से पूर्व अपने आपको शारीरिक मानसिक रूप से तनाव रहित स्थिति में लाने के लिये शवासन करना चाहिये। शवासन के द्वारा शिथलीकरण अर्थात् शरीर और मन को ढ़ीला छोड़ कर कुछ समय के लिये अपनी समस्त चिन्ताओं, आशंकाओं एंव समस्याओं को भूल जाना चाहिये। कुछ क्षणो के बाद अपने शरीर का अनुभव करते हुए हाथों और पैरो को धीरे–धीरे हिलाते हुये उठ कर बैठ जाना चाहिये। इस क्रिया से शरीर शारीरिक और मानसिक रूप से पवनमुक्तासन प्रारम्भ करने के लिये तैयार हो जाता है।

इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के अभ्यास हैं :–

''पैरो की अंगुलियॉ और टखने मोड़ना'' – घुटने को मोड़ना एवं उसकी धुरी पर वृत्ताकार घुमाना, मेंरूदण्ड को दायें, बायें मोड़ना, अर्ध तितली और घुटने को घुमाना, कोहनीयॉ मोड़ना तथा कन्धो को घुमाना, गर्दन झुकाना, मोड़ना एंव घुमाना।

पैरों की अंगुलियाँ और टखने मोड़ना

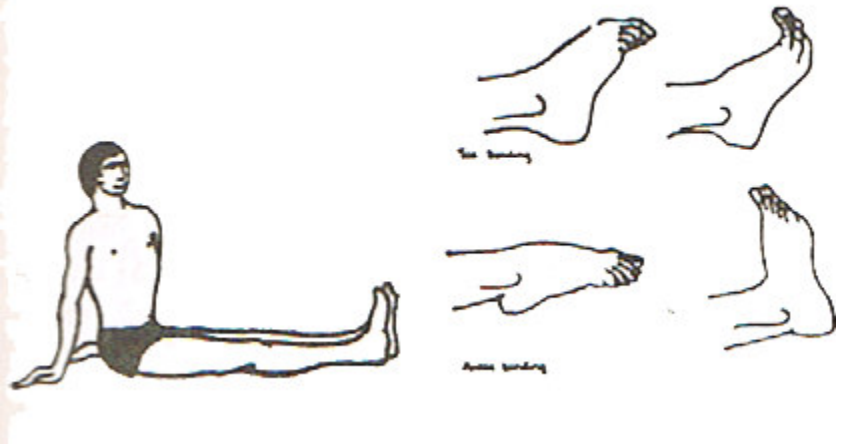

सूक्ष्म व्यायाम के लाभ :–

1. शरीर को मस्तिष्क से जोड़ने वाली सभी नसें एंव शिरायें गर्दन से ही गुजरती है। अतः यह शरीर का एक महत्वपूर्ण केंन्द्र है, इन आसनों को नियमित रूप से करने पर शरीर स्वस्थ एंव सुडौल हो जाता है।

2. शरीर के कफ, पित्त और वात को नियमित करने में अत्यंत प्रभावशाली है।

3. पवनमुक्तासन के अभ्यास से शरीर के जोड़ों से वायु एवं अम्ल निकालने में सहायता मिलती है।

4. दुर्बल तथा बीमारी के बाद स्वास्थ्य लाभ हेतु अत्यंत उपयोगी है।

5. मांसपेशियों के सभी प्रकार के रोगो से छुटकारा दिलाने में अत्यंत सहायक है।

वात निरोधक अभ्यास समूह :– यह अभ्यास पेट में रूकी हुई वायु निकालने में अत्यंत उपयोगी है। वे लोग जो कब्ज और अपचन से पीड़ित हैं, इन अभ्यासों के द्वारा स्वास्थ्य लाभ कर सकते है। इनके अंतर्गत पैर घुमाना, साइकिल चलाना, पैर मोड़ना हिलना–डुलना और लुढ़कना, नौकायन इत्यादि इन अभ्यासो के कई लाभ है।

लाभ :– 1. इन आसनों से शरीर अन्य कठिन आसनों के लिये तैयार हो जाता है।

2. स्नायु व मांसपेशी की गड़बड़ी अथवा टूटी हुई हड्डियों से पीड़ित व्यक्ति के स्वास्थ्य में शीघ्र सुधार होता है।

3. इसके अभ्यास से पेट और आँतों में स्थित कृमि (कीडे) आसानी से निकल आते है।

4. यह पाचन क्रिया को सुधारता है और आँतों में गतिशीलता एंव क्रियाशीलता लाता है।

अध्यापको को इन व्यायामों का महत्व समझकर तथा अस्वस्थ छात्रों को उनके रोग के अनुसार, मंद बुद्धि बालक, मानसिक रूप से कमजोर बालकों की आवश्यकतानुसार सूक्ष्म व्यायाम करवाना चाहिए।

पाठ्गत प्रश्न :–

प्र. 9 निम्न में से सही उत्तर चुनकर लिखो

अ. सूक्ष्म व्यायाम ..... को नियिमित करता है।

ब. ..... के बाद स्वास्थ्य हेतु सूक्ष्म व्यायाम अत्यंत उपयोगी है।

स. वात निरोधक अभ्यास से पेट और आँतों में स्थित ..... आसानी से निकल जाते हैं।

योग के बहिरंग :–

सभी योनियों में मानव शरीर श्रेष्ठतम है। संसार के सभी जीवो में श्रेष्ठ मनुष्य ही है। देवताओं को भी ज्ञान–लाभ के लिये मनुष्य देह धारण करनी पड़ती है। एक मात्र मनुष्य ही ज्ञान लाभ का अधिकारी है, यहॉ तक कि देवता भी नही। हमारे सारे शरीर यन्त्र को प्राण चलाता है। इस शरीर रूपी यन्त्र को ठीक से चलाने के लिये पतंजलि मुनि ने योगशास्त्र का निर्माण किया। योग के आठ अंग / सोपान हैं – यम नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि प्रथम पांच सोपान अर्थात् यम नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार योग के बहिरंग कहलाते है –

यम – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य और अपरिग्रह। इनके पालन से चिन्त की शुद्धि होती है। शरीर मन और वचन के द्वारा कभी किसी प्राणी की हिंसा न करना या उन्हें कष्ट न देना अहिंसा कहलाता है। हमेंशा यथार्थ कथन को सत्य कहते है। चोरी से या बलपूर्वक दूसरे की वस्तु न लेने का नाम अस्तेय है। तन मन वचन से हमेंशा सब अवस्थाओ में मेंथुन का त्याग ही ब्रम्हचर्य है। अत्यंत कष्ट के समय में भी किसी मनुष्य से कोई उपहार ग्रहण न करने को अपरिग्रह कहतें है। उपहार लेने से ह्रदय अपवित्र होता है तथा हीनता की भावना आती है।

नियम :– नियम का अर्थ है, नियमित अभ्यास और व्रत परिपालन। तप, स्वाध्याय, सन्तोष, शौच और ईश्वर प्राणिघात इन्हें नियम कहा जाता है। व्रत उपवास या अन्य उपाय से देह संयम करना ''शरीरिक तपस्या'' है। वेद–पाठ या किसी मन्त्रोच्चारण को सत्त्व शुद्धि कर स्वाध्याय कहते है। मिट्टी जल या दूसरी वस्तुओं से शरीर को शुद्ध करना बाह्य शौच कहलाता है। सत्य या अन्यान्य धर्मों के पालन से मन की शुद्धि को अभ्यंतर शौच कहते हैं।

आसन – वक्षस्थल, ग्रीवा और शरीर को सीधे रखकर शरीर को स्वच्छन्द भाव से रखना आसन है।

प्राणायाम :– प्राण का अर्थ है, अपने शरीर के भीतर रहने वाली जीवन शक्ति और आयाम का अर्थ है, उसका संयम। अतः प्राणायाम प्रक्रियाओं की वह श्रृंखला है, जिसका उद्देश्य शरीर की प्राण–शक्ति को उल्प्रेरणा देना, बढ़ावा देना तथा उसे विशेष अभिप्राय से विशेष क्षेत्रो में संचारित करना है। प्राणायाम का अन्तिम उद्देश्य सम्पूर्ण शरीर का लाभ है, परन्तु इसे शरीर को अतिरिक्त आक्सीजन प्रदान करने वाला मात्र व्यायाम ही नही समझना चाहिये। सूक्ष्म रूप से प्राणायाम श्वसन के माध्यम से प्राणमय कोष की नाड़ियो, प्राण नलिकाओं एंव प्राण के प्रवाह पर प्रभाव डालता है परिणामतः नाड़ियों का शुद्धिकरण होता है तथा भौतिक और मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है।

प्रत्याहार :– अनुभव शक्ति युक्त इन्द्रियॉ लगातार बहिर्मुखी रहकर काम करती है तथा सतत् बाहर की वस्तुओ के सम्पर्क में आती रहती है। इनको अपने वश में लाने की विधि को प्रत्याहार कहते है। प्रत्याहार अर्थात् अपनी ओर खीचना या आहरण करना यही प्रत्याहार शब्द का प्रकृत अर्थ है।

पाठगत प्रश्न

प्र.10 योग शास्त्र के कितने सोपान है, इनके नाम लिखें।

प्र.11 प्राणायाम शब्द का क्या अर्थ है। ?

प्र.12 प्राणायामसे मनुष्य को क्या लाभ होते है ? (कोई दो लाभ लिखें)

योग के अन्तरंग

योग के अन्तरंग सोपान है – ध्यान धारणा तथा समाधि :–

ध्यान – मन को एक स्थान में संलग्न करें, फिर उस एक मात्र स्थान को अवलम्बन स्वरूप मानकर एक विशिष्ट प्रकार के वृत्ति–प्रवाह उठाये जाते हें, दूसरे प्रकार के वृत्ति प्रवाहों से उनको बचाने का प्रयत्न करने में प्रथमोक्त वृत्ति प्रवाह क्रमशः प्रबल आकार धारण कर लेते हैं और ये दूसरे वृत्ति प्रवाह कम होते अनत में बिल्कुल चले जाते हैं। फिर बाद में उन प्रथमोक्त वृत्तियों का भी नाश हो जाता है और केवल एक वृत्ति वर्तमान रह जाती है, इसे ध्यान कहते हैं।

धारणा – सिर के ठीक मध्य स्थान में या शरीर के किसी अन्य स्थान में मन को धारण करने का नाम है – धारणा।

समाधि – जब ध्यान शक्ति इतनी तीव्र हो जाती है कि मन अनुभूति के बाहरी भाग को छोड़कर उसके अन्तर्भाग या अर्थ की ही ओर एकाग्र हो जाता है, तब उस अवस्था को ''समाधि'' कहते है। जब सम्पूर्ण मन एक तरंग के रूप में परिणत हो जाता है, तब मन की इस एकरूपता का नाम है – ''समाधि''।

पाठ्गत प्रश्न

प्र.13 समाधि की स्थिति को संक्षेप में समझाइयें।

सूर्य नमस्कार का अर्थ, परम्परा एवं महत्व

सूर्य नमस्कार शब्द का अर्थ स्पष्ट है सूर्य को नमस्कार करने की विधि।

सूर्य जीवन व सृष्टि का प्राण हे, बिना सूर्य के जीवन नहीं चल सकता। सूर्य ही प्रकाश और जीवन का दाता है, सभी जानते हैं कि यदि सूर्य नहीं रहेगा तो सृष्टि का रूप ही दूसरा हो जायेगा किसी भी वस्तु में प्राण नहीं रह जायेंगे, जीवन उसी प्रकार रह जावेगा जौते ज्योति के बिना दीपक रहता है।

सूर्योदय होता है तो सृष्टि में नवजीवन आ जाता है, ताजगी और प्रकाश फैलने लगता है। सूर्य अमरत्व का प्रतीक है। भारत में प्राचीन समय में विभिन्न प्रकार से लोग सूर्य की अराधना करते आ

रहे हें। ऋग्वेद और यजुर्वेद में भी सूर्य नमस्कार के कई तरीके बतलाये गये है। प्राचीन समय में लोग विशेष विधियाँ से आसनों के साथ सूर्य को प्रणाम किया करते थे। आज जिस प्रकार नियम व गति से आसनों को करते है, प्राचीन समय में इनका रूप इससे भिन्न था।

आज भी हम सूर्य की किसी न किसी रूप में पूजा करते ही है। ठंडे देशों में जहाँ सूर्य बहुत थोड़ी देर रहता है या कभी कभी उदय होता है ऐसे देशों में वे लोग सूर्य निकलते ही सूर्य स्नान के लिये समुद्र किनारे चले जाते है और घंटो वहाँ सोये रहते हैं। स्वास्थ्य लाभ की हेतु प्राकृतिक चिकित्सा में भी सूर्य की किरणों से अनेक रोगों की चिकित्सा की जाती है।

स्थिति – 1 **प्रजाभासन –** दोनो पैर एक साथ मिलाकर खड़े हो जाएं दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार की स्थिति में छाती के पास रखें। आंखे बंदकर श्रीर को तनाव रहित बनाये पूर्व दिशा में मुंहकर खड़े रहें।

स्थिति – 2 **हस्त उत्थानासन** – दोनों हाथों को कंधो के सीध में ऊपर उठाइये। पीछे की ओर शरीर को झुकायें।

स्थिति – 3 **पादहस्तासन –** सामने की ओर झुकते हुए दोनों हथलियों को पैरों के बाजू में जमीन पर टिकाइये और माथे को घुटने से लगाने का प्रयास करें घुटने सीधे रखेंगे। पैर सीधे रहेंगे।

स्थिति – 4 **अश्वसंचालनालसन** – हाथों को उसी स्थान पर जमीन पर जमावे रखें। दाहिने पैर को पीछे जीतना ले जा सकते हैं ले जाए। बायें पैर के घुटने को मोडे पर पैर का तलवा जहां था वही रहे। दाहिने पैर का घुटना जमीन से सटा रहे। सिर और पैर को पीछे की ओर झुकाना है। फिर पैर पीछे करना है।

स्थिति – 5 **पर्वतासन** – दाहिना घुटना जमीन से उठायें। बायें पैर को दाहिने पैर के पास ले जाकर कमर को ऊपर उठाइये सिर नीचे झुकायें। दोनों पैर सीधे रहें। शरीर का आकार पर्वत की तरह हो जाना चाहिये। दोनों तलवे जमीन पर सटाने का प्रयास करें।

स्थिति – 6 **अष्टांग नमस्कार** – शरीर के आठ अंग जमीन को स्पर्श करते हैं अतः इसे अष्टांग नमस्कार कहा जाता है। दोनों पैर सीधे रखते हुए हाथों को झुकाकर सिर व छाती को जमीन पर लाइये। नीचे झुकते समय ठुड्डी से जमीन को छुए। दोनों पैर, दोनों घुटनों का स्पर्श भी जमीन को होगा। अंतिम अवस्था में दो हाथ, दो पैर, दो घुटने, छाती व ठुड्डी इस (इस प्रकार आठ अंग) जमीन से लगे रहते हैं। केवल पेट जमीन से ऊपर उठा रहेगा।

स्थिति – 7 **भुजंगासन –** दोनों हाथों को सीधा करते हुए सिर व पीठ को पीछे की ओर झुकाइये छाती को ऊपर उठाना है। नाभी तक का भाग जमीन से सटा रहे। सिर व पीठ पीछे की ओर जितना झुका सकते हैं झुकाइये। हाथ पैर अपनी जगह स्थिर रहेंगे।

स्थिति – 8 **पर्वतासन –** पांचवी स्थिति को दोहराना है।

स्थिति – 9 **अश्वसंचालनासन –** यह चौथी स्थिति के समान है बायां पैर मोड़कर दोनो हाथों के बीच में लाना है। साथ ही पीठ की और सिर को पीछे जितना झुका सकते हैं झुकाना है। दाहिने पैर के घुटने को जमीन पर रखना है।

स्थिति 10 **पादहस्तासन –** यह दूसरी स्थिति की पुनरावृत्ति है। धीरे धीरे हाथों को ऊपर उठाना है। कंधो से ऊपर कानों के पास हाथ सटे रहेंगे और उन्हें ऊपर उठाना है। हथेलिया आसमान की ओर रहे है।

स्थिति – 12 **प्रजामासन** – यह प्रथम स्थिति के समान है। दोनों हाथ नमस्कार की मुद्रा में छाती के पास रखियें। उपर्युक्त स्थितियां मिलकर आधा राउंड होता है। पैर बदलकर पुनः करने से एक राउंड माना जाता है।

1. अश्वसंचालन की चौथी स्थिति में दाहिने पैर के बदले बायां पैर पीछे ले जाइये।
2. अश्वसंचालन की नवीं स्थिति में बांये पैर को सामने हाथों के बीच ले आइये।

इस प्रकार दोनों पैर बदलकर चौबीस स्थितियाँ करने से एक राउंड पूरा होता है।

बाल्यकाल से ही सूर्य नमस्कार कर सकते है। शरीर और मन के स्वास्थय के लिये सूर्य नमस्कार सर्वोत्तम साधन हे, सूर्य नमस्कार प्रतिदिन प्रातः अवश्य करना चाहिये जिससे शरीर व मन स्वस्थ व तरोताजा रह सके। अपनी चेतना का विकास कर शांति व आनंद का अनुभव कर सकें। आध्यापकों को इस अभ्यास को सीखना चाहिये तथा छात्रों को सूर्य नमस्कार का अभ्यास करवाना चाहिये।

प्रमुख महत्वपूर्ण बातें :–

1. शारीरिक अवस्थाएँ – बारह राशि के अनुसार सूर्य नमस्कार में 12 आसन है।
2. श्वसन – सूर्य नमस्कार करते समय श्वसन प्रश्वास नाक से करें और मुंह बंद रखे।
3. मंत्र – सूर्य नमस्कार की तेरह अवस्थाओं के साथ विशेष मंत्र का संबंध होता है।
4. विश्राम – सूर्य नमस्कार के अभ्यास के बाद विश्राम लेना बहुत आवश्यक है। विश्राम के लिये शवासन सबसे सरल व उत्तम विधि है – शवासन से शरीर और मन को विश्राम मिलता है।
5. कितनी बार करना – व्यायामी के स्वास्थ्य व समय के अनुसार निश्चित करना होगा कि किस व्यायामी को कितनी बार सूर्य नमस्कार करना चाहिये।

सूर्य नमस्कार के लाभ : सूर्य नमस्कार से आलस दूर होता है। स्फूर्ति आती है। शरीर के अंगों में लचीलापन आता है जिससे अन्य आसन करने में सुविधा होता है। सूर्य नमस्कार से संपूर्ण शरीर को व्यायाम मिलता है। 3. रक्त सुचारू रूप से चलता है। 4. शरीर के आंतरिक अंगों की अच्छी मालिश होती है। 5. सूर्य नमस्कार संपूर्ण अंगों पर प्रभाव डालता है। जिससे सभी प्रणालियाँ सुचारू रूप से अच्छा काम करती हैं और स्वस्थ बने रह सकते है। क्योंकि सूर्य नमस्कार पूर्ण यौगिक व्यायाम है इसमें कई आसनों का समूह है।

सूर्य नमस्कार हेतु उचित स्थान एवं समय –

क. प्रातःकाल सूर्योदय के समय अधिक लाभप्रद है। क्योंकि उस समय सूर्य से जो किरणें निकलती है वे मनुष्य के लिये लाभप्रद है। सूर्य नमस्कार पूर्व की ओर मुंह करके किया जाता है।

ख. भोजन के तुंरत बाद सूर्य नमस्कार नहीं करना चाहिये। भोजन के तीन घंटे बाद कर सकते है। भोजन के पूर्व का समय अभ्यास के लिये बहुत अच्छा होता है।

ग. खुले हवादार स्थान का चुनाव करें। खुला मेंदान या छत सबसे उत्तम है। हवादार व स्वच्छ कमरे में करने का प्रयत्न करें।

घ. कंबल या दरी का उपयोग करें।

सावधानीयाँ – 1. बुखार आने पर सूर्य नमस्कार न करें। 2. बीमारी की अवस्था में आसन न करें।

पाठगत प्रश्न

प्र. 14 सही उत्तर चुनकर लिखें –

सूर्य नमस्कार का प्रमुख लाभ है –

अ. उदर विकास ठीक होगा। ब. पाचन संस्था व सुदृढ़ होना। स. मांसपेशियों का सुदृढ़ होना। द. मेंरूदण्ड सबल होना।

प्र. 15 सूर्य नमस्कार हेतु कौन सा समय उपयुक्त है तथा इसे किस स्थान पर करना चाहिये? स्पष्ट करें।

योग के समय आवश्यक सावधानियाँ :

योगासन करते समय यम, नियम का पालन करना चाहिये, क्योंकि, यम, नियम तथा आसन तीनों ही एक दूसरे के पूरक है। बगैर यम नियम के योगासन का कोई महत्व नहीं है। यदि यम नियम के पालन के बिना आसन करा लिया जाये तो उससे लाभ होने के बजाय हानि ही होगी। आसन के पूर्व निम्नलिखित बातों का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिये –

1. योगासन करने के पूर्व शौच तथा स्नान अवश्य किया जाना चाहिए। बगैर इसके अभ्यास आरम्भ नहीं करना चाहिए। अगर आसन की क्रियाओं को सम्पन्न करने के बाद भी स्नान करना पड़े तो एक घण्टे बाद स्नान कर लेना चाहिए।
2. योगासन करते समय साधक का पेट खाली होना चाहिए अन्यथा भरे पेट अभ्यास करने से हानि हो सकती है।
3. व्यायाम, आसन के लिए कम से कम दस मिनट और ज्यादा से ज्यादा तीस मिनट का समय दिया जाना चाहिए। प्रारम्भ में कम समय में ही आसन किया जाना चाहिए और धीरे–धीरे समय में वृद्धि करनी चाहिए।
4. किसी भी आसन का अभ्यास करते समय शीघ्रता नहीं करनी चाहिए, शीघ्रता करने से हानि होती है।
5. साधक को ताजा भोजन करना चाहिए, भोजन सात्विक होना चाहिए, गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिए।
6. आसनाभ्यास शुद्ध वायु, स्वच्छ वातावरण, खुले पर एकान्त स्थान पर करना चाहिए।
7. आसनाभ्यास समतल, स्वच्छ भूमि पर ही किया जाना चाहिए। आवश्यकतानुसार उस स्थान पर चटाई, दरी, आसनी, टाट आदि भी बिछा लेना चाहिए।
8. बीमारी अथवा तीव्र ज्वार आदि की अवस्था में आसन नहीं करना चाहिए।
9. योग आसनाभ्यास सदैव एक योग्य गुरू के निर्देशन में ही करना चाहिए।

इन सावधानियों का अध्यापक अध्ययन करें तथा छात्रों से योगासन करवाने के पूर्व इनका पालन अवश्य करें तभी योगसनों से पूर्ण लाभ लिया जा सकता है।

पाठ्गत प्रश्न :–

प्र.16 निम्न में खाली स्थान की पूर्ति करों –

क. योगासन करते समय साधक का पेट ———————— होना चाहिये।

ख. व्यायाम आसन करने हेतु कम से कम ———————— मिनट का समय और अधिक से अधिक ———————— मिनट का समय देना चाहिये।

ग. आसनाभ्यास के पूर्व भूमि पर ———————— बिछा लेना चाहिये।

घ. योगाभ्यास सदैव एक योग्य ———————— के निर्देशन में ही करना चाहिये।

प्र.17 निम्न में से सही उत्तर चुनकर लिखों –

अ. योगासन निम्न स्थान पर करना चाहिये –

क) बन्द कमरा ख) खुला स्थान ग) इनमें से कोई नहीं

ब. बीमारी अथवा तीव्र ज्वर की अवस्था में योगासन ——————————

क) करना चाहिये ब) व्यायाम करना चाहिये

स) सूक्ष्म व्यायाम करना चाहिये। द) नहीं करना चाहिये।

इकाई सारांश

- कुशलता से कार्य करने का नाम ही योग है। योग का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों के शारीरिक, भावनात्मक, मानसिक, बौद्धिक, चारित्रिक, नैतिक इत्यादि सभी पक्षों का समग्र विकास करना है।
- आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में नैतिक व सामाजिक मूल्यों का पतन अति भौतिकवादिता, तनाव इत्यादि के कारण मनुष्य शारीरिक एवं मानसिक रूप से अस्वस्थ होता जा रहा है। ऐसे समय में योग की अत्यंत आवश्यकता है।
- भारतीय संस्कृति में योग की परम्परा प्राचीन काल से रही है। भारतीय ऋषियों–मुनियों ने अनेक प्रयोगों के द्वारा इसे विकसित किया है। योगासनों के द्वारा मनुष्य निरोग तथा दीर्घजीवी होता है। अतः विद्यालयों में विद्यार्थियों को इनका नियमित अभ्यास करवाना चाहिए।
- योगासनों का अभ्यास स्वास्थ्य लाभ एवं उपचार हेतु किया जा सकता है। जबकि व्यायामों का प्रभाव केवल शरीर की माँसपेशियों एवं हड्डियों पर ही होता है। बीमार या दुर्बल व्यक्ति इनका अभ्यास नहीं कर सकते।
- पवनमुक्तासन के अंतर्गत कुछ सरल अभ्यास करवाये जाते हैं, इनका अभ्यासकर्ता पर बड़ा सूक्ष्म और अच्छा लाभदायक प्रभाव पड़ता है। अभ्यास के इस समूह को सूक्ष्म व्यायाम कहते हैं।
- यम, नियम, आसन, प्राणयाम तथा प्रत्याहार योग के बहिरंग कहलाते हैं।
- ध्यान, धारणा तथा समाधि योग के अंतरंग सोपान कहलाते हैं।
- सूर्य को नमस्कार करने की विधि को सूर्य नमस्कार कहते हैं। सूर्य नमस्कार से शरीर लचीला होता है, आलस दूर होता है। स्फूर्ति आती है।
- योगासन हमेशा योग्य गुरू के मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।

आत्म परीक्षण के प्रश्न :–

प्र. 1 वर्त्तमान परिप्रेक्ष्य में योग के महत्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखो।

प्र. 2 वज्रासन से होने वाले प्रमुख लाभों का वर्णन करो।

प्र. 3 वृद्ध, दुर्बल अथवा बीमार व्यक्ति हेतु कौन सा व्यायाम उपयुक्त है?

प्र. 4 वात निरोधक अभ्यास समूह के मुख्य लाभ बतायें।

प्र. 5 संक्षिप्त टिप्पणी लिखें :–

1. प्रत्याहार 2. नियम

प्र. 6 'धारणा' से आप क्या समझते हैं? स्पष्ट करें।

प्र. 7 सूर्य नमस्कार करने से क्या लाभ होते हैं?

प्र. 8 योगासन करते समय कौन सी सावधानी लेना चाहिये। कोई दो प्रमुख सावधानियों का वर्णन करों।

पाठ्गत प्रश्नों के उत्तर :–

उ. 1 गीता का है ।

उ. 2 योग वशिष्ठ के अनुसार संसार सागर से पार होने की मुक्ति की युक्ति का नाम ही योग है।

उ. 3 1. शरीर की रोग प्रतिकार क्षमता को बढ़ाना।

2. शरीर को सुडोल बलशली एवं स्वस्थ बनाना।

उ. 4 क. पद्मासन् ख. भुजंगासन

ग. शवासन घ. सूर्य नमस्कार

उ. 5 1. पाचन संस्थान स्वस्थ रहता है।

2. अतिनिद्रा एवं अनिद्रा रोग ठीक हो जाता है।

उ. 6 पढ़ते समय कुर्सी पर इस ढंग से बैठना चाहिये कि आँख पुस्तक से 45 डिग्री के कोण पर एवं एक फुट की दूरी पर रहे। डेस्क–कुर्सी को धन दूरी पर रखा जाना चाहिए।

उ. 7 लचीली हो जाती है।

उ. 8 1. व्यायाम युवकों के लिए अधिक उपयुक्त है, जबकि योगासन प्रत्येक व्यक्ति (वृद्ध, अस्वस्थ सभी के लिये) उपयुक्त है।

2. व्यायाम की कुछ विधियॉ शरीर में विषैले पदार्थों की वृद्धि करती हैं, जबकि योगासानों का अभ्यास इनकी मात्रा को कम करता है।

उ. 9 अ. कफ, पित्त और वात ब. दुर्बलता तथा बीमारी स. कृमि (कीड़े)

उ. 10 योगशास्त्र के आठ सोपान हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

उ. 11 प्रणायाम प्रक्रियाओं की वह श्रृंखला है जिसका उद्देश्य शरीर की प्राण शक्ति को उत्प्रेरणा देना है।

उ. 12 1) नाड़ियों का शुद्धिकरण

2) भौतिक और मानसिक स्थिरता प्राप्त करना।

उ. 13 जब ध्यान शक्ति इतनी तीव्र हो जाती है कि मन अनुभूति के बाहरी भाग को छोड़कर उसके अर्न्तभाग या अर्थ की ही ओर एकाग्र हो जाता है तब उस अवस्था को समाधि कहते हैं।

उ. 14 स) माँसपेशियों का सृदृढ़ होना।

उ. 15 सूर्य नमस्कार हेतु प्रातः काल सूर्योदय का समय अधिक उपयुक्त हैं इसे खुले हवादार स्थान पर करना चाहिए।

उ. 16 1. खाली

2. दस, तीस

3. कंबल, दरी, चटाई, आसनी, टाट (इनमें से कोई एक)

4. गुरू

उ.17 (अ) ख – खुला स्थान (ब) द – नहीं करना चाहिए।